संस्कृत नाटिकाओं का शास्त्रीय अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

पर्यवेक्षक

प्रोफेसर डा० आद्या प्रसाद मिश्र

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग

डीन कला संकाय

प्रो[illegible]कुलपति

प्रस्तोत्री

अम्बुजा पाण्डेय

एम०ए०

संस्कृत विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

प्राक्कथन

पूर्वजन्म के पुण्यों के फलस्वरूप मुझे विद्यानुरागी प्रसिद्ध लेखक पूज्य श्री श्रीनेत्र पाण्डेय जी की आत्मजा होने का सौभाग्य मिला । बाल्यकाल से ही संस्कृत के प्रति अनुराग रहा और संस्कृत में मेरी मेधा एवं हृदय दोनों की समान प्रवृत्ति रही । फलतः हाईस्कूल से एम०ए० तक की परीक्षा में मुझे संस्कृत-भारती के आशीष प्राप्त होते रहे । प्रथम स्थान एवं गुरुजनों का साधुवाद संस्कृत अध्ययन का फल मिला । एम०ए० की परीक्षा संस्कृत-साहित्य में प्रथम श्रेणी एवं कक्षा में प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण किया । संस्कृत में शोध-कार्य के लिये प्रबल समीहा जगी । दर्शन एवं साहित्य के उद्भट विद्वान् प्रो० डा० आद्याप्रसाद मिश्र जी ने मेरी रुचि एवं योग्यता के अनुसार संस्कृत नाटिकाओं का नाट्यशास्त्रीय विवेचन पर डी०फिल्० करने का आदेश दिया । मैंने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की और पूर्ण उत्साह से कार्य प्रारम्भ किया ।

कन्या बहुल पिता की सन्तान होने के कारण मेरे विवाह आदि की चिन्ता पिता को स्वाभाविक ही करनी पड़ी और वैवाहिक जीवन आ जाने पर शोध-कार्य में विलम्ब भी स्वाभाविक था, तथापि पूज्य गुरुवर्य्य की कृपा से कार्य निर्विघ्न और द्रुतगति से चलता रहा और परिणामस्वरूप यह प्रबन्ध विद्वान् - मनीषियों के सम्मुख प्रस्तुत हुआ ।

इसके प्रथम अध्याय में आचार्यों का नाटिका विषयक विवेचन है । द्वितीय अध्याय में नाटिका-साहित्य एवं उनके स्रष्टा, तृतीय अध्याय में कथानक-विवेचन, चतुर्थ-अध्याय में सन्धिसन्ध्यङ्गादि का विवेचन, पंचम अध्याय में पात्र-विवेचन, षष्ठ अध्याय में नाटिकाओं में चित्रित लोक तथा प्रकृति, सप्तम अध्याय में रस-विवेचन और अष्टम अध्याय में नाटिका-साहित्य में नाटिका के विकसित रूप का विवेचन है ।

इस प्रबन्ध को लिखने में मुझे जिन गुरुजनों का सहयोग एवं आशीर्वाद मिला, मैं उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ ।

पण्डित मेवालाल मिश्र जी के प्रति भी मैं आभारी हूँ क्योंकि उन्होंने मेरे इस शोध प्रबन्ध के टङ्कण कार्य को सम्पन्न करने का कष्ट किया । इसमें जो त्रुटियाँ रह गई हैं, वे टङ्कण की यन्त्रगत विवशतामूलक हैं । उनके लिये मैं गुरु-जनों से क्षमाप्रार्थिनी हूँ ।

बुद्धपूर्णिमा
२०३७ विक्रम ।

विनीता
अम्बुजा शुक्ला

अनुक्रमणिका

विषय पृष्ठ संख्या

विषय | पृष्ठ संख्या

अध्याय – १

आचार्यों का नाटिका-विषयक विवेचन (भरतकाल से लेकर अब तक)

नाट्य-शास्त्र का लोक-धर्म से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यद्यपि नाट्य-शास्त्र नाट्य-धर्म की रूढ़ियों का विशाल ग्रन्थ है, फिर भी उसे यह मानना पड़ता है कि नाटक की वास्तविक प्रेरणा और कसौटी लोकरुचि ही है। यद्यपि परवर्ती अलङ्कारशास्त्रियों ने इस तथ्य को भुला दिया है। आचार्य भरत ने नाट्य-शास्त्र के छब्बीसवें अध्याय में अभिनय विधियों का वर्णन किया है, किन्तु उनका कहना है कि इस चराचर सृष्टि का कोई हिसाब नहीं बताया जा सकता। लोक में अनेक प्रकृतियाँ होती हैं। नाटक चाहे वेद से उत्पन्न हों और चाहे अध्यात्म से उत्पन्न हों, उनका लोकसिद्ध होना आवश्यक है, क्योंकि नाट्य लोक-स्वभाव से ही उत्पन्न होते हैं, अतः लोक ही नाट्य-प्रयोग में सबसे बड़ा प्रमाण है[१]।

आचार्य भरत का यह भी मत है कि जो शास्त्र लोकप्रसिद्ध अर्थात् लोकधर्मप्रवृत्त होते हैं उन्हें ही नाट्य कहते हैं[२]।

इस प्रकार लोकप्रवृत्ति ही नाटक की सफलता की मुख्य कसौटी है। फिर भी अभिनेता को उन समस्त विधियों का ज्ञान होना चाहिये जिससे

---

१. वेदाध्यात्मोपपन्नं तु शब्दच्छंदः समन्वितम्।
   लोकसिद्धं भवेत् सिद्धं नाट्यं लोकस्वभावजम्।
   तस्मात् नाट्यप्रयोगे तु प्रमाणं लोक उच्यते। (नाट्यशास्त्र २७।११३)

२. यानि शास्त्राणि ये धर्मा यानि शिल्पानि याः क्रिया।
   लोकधर्मप्रवृत्तानि तानि नाट्यं प्रकीर्तितम्॥

कि वह सहृदय के चित्त में विभिन्न शीलों एवं प्रकृति की अनुभूति करा सके। इसीलिये अभिनेता को प्रयोगज्ञ होना चाहिये। उसे वाचिक, नेपथ्य-सम्बन्धी एवं आङ्गिक आदि सभी प्रकार के अभिनयों का प्रयोग मालूम होना चाहिये, क्योंकि जो अभिनेता प्रयोगज्ञ नहीं होगा वह कभी सिद्धि नहीं प्राप्त कर पायेगा।[१]

कभी-कभी अभिनेताओं में अपने अभिनय-कौशल की उत्कृष्टता पर विवाद हो जाया करता था। साधारणतः यह विवाद दो प्रकार के होते थे - एक तो शास्त्रीय विवाद और दूसरा लौकिक विवाद। शास्त्रीय विवाद का उदाहरण कालिदास का मालविकाग्निमित्र है। जिसमें रस, भाव, अभिनय, भङ्गिमाआदि विचारणीय हों उसे शास्त्रीय विवाद कहते हैं। जिसमें लोकजीवन से सम्बन्धित चेष्टाओं पर विवाद होता है उसे लौकिक विवाद कहते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि लोकप्रसिद्ध ही नाट्यशास्त्र की मुख्य कसौटी रही है।

स्पष्ट है कि लोकनाट्य भरत के समय में लोकप्रसिद्ध थे। उनका अभिनय लोगों में होता था।[२] लोके `पद से यह अर्थ भी स्पष्ट है कि नाटकादि का अभिनय महत्त्वपूर्ण माना जाता था, केवल पुस्तक रूप में स्थिति नहीं थी। सम्भवतः इसीलिये `कृष्णवध' (पाणिनि) की पुस्तक रूप में उपलब्धि नहीं है, अपितु उसका अभिनय होता था और वह लोकप्रिय था। लोक-नाट्य तो अवश्य ही मनोरंजन के लिए खेला जाता था।[३] इसे ही बाद में साहित्य में

---

१. क्रियास्त्वभिनयाद्येते वाङ्नेपथ्याङ्गसंश्रयाः।
प्रयोगे येन कर्तव्या नाटके सिद्धिमिच्छता ॥ (२७।१२२) ना०शा०

२. विनोदजननं लोके नाट्यमेतद्भविष्यति। आ०भ०ना०शा०

३. दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति ॥ आ० भ०-- ना०शा०

प्रवेश दिया गया और उन्हें रूपक तथा उपरूपक माना गया ।

आदिकाल से ही मानव का लक्ष्य आनन्द की उपलब्धि रहा है । आनन्द को कभी स्थूल रूप में उद्देश्य बनता है और कभी सूक्ष्म रूप में । ललित कलाओं का जगत् मूर्त तथा अमूर्त दोनों ही रूपों में दर्शन का संसार है और अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है । आनन्दमयी सत्ता की अनुभूति ही रस है । श्रुति कहती है -- " रसंह्येवायं लब्ध्वानन्दीभवति " रस की अनुभूति मानव का सहज धर्म है । समस्त ललित कलाओं में यह रस की प्रवृत्ति विद्यमान है ।

अनादि काल से ही मानव में अनुकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है । अनुकरण का एकमात्र लक्ष्य आनन्द की उपलब्धि है । अनुकरण की अभिव्यक्ति से आत्मसुख प्राप्त होता है, जो आनन्दोपलब्धि की अन्तिम सीमा है ।

डा० कीथ ने कला को अनुकरण कहा है । ललित कलायें अर्थात् नृत्त, नृत्य और नाट्य मानव तथा बाह्य प्रकृति के अनुकरण तथा अनुकरणजन्य आनन्द की अभिव्यक्ति के फल हैं ।

नृत्य का कलात्मक रूपक के रूप में विकास वैदिक साहित्य के काल से दृष्टिगोचर होता है । डा० कीथ के अनुसार यजुर्वेद में शैलूष शब्द प्राप्त होता है जिसका अर्थ नर्तक सम्भव है ।

कात्यायन श्रौतसूत्र में नृत्य गीत का उल्लेख है । कौषीतकि ब्राह्मण और जैमिनीय उपनिषद ब्राह्मण में भी नृत्य का वर्णन है । शांख्यायन आरण्यक में अग्नि के चारों ओर नृत्य करने का वर्णन है ।

खन्तिवादी जातक में नृत्य, गीता, अभिनय आदि के परस्पर सम्बन्ध का वर्णन है । अर्थशास्त्र, पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी नृत्य का वर्णन है । भगवती सूत्र (प्राकृत ग्रन्थ) में भी नृत्य अर्थात् नाट्य-विधियों का

वर्णन है । एक और प्राकृत ग्रन्थ राजप्रश्नीय प्राकृत में ३५ प्रकार के नृत्य अर्थात् नाट्य विधियों का उल्लेख है ।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि नृत्य धीरे धीरे नाट्य की ओर बढ़ रहा था और लौकिक साहित्य का काल आने के पूर्व ही एक कलात्मक रूप धारण कर चुका था । इसका प्रमाण-भास के 'बाल चरित' में हल्लीसक नृत्य का वर्णन, कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' में चलित नृत्य का वर्णन और भरहुत स्तूप का सट्टक का चित्र है ।

भरहुत की एक शिला पर अंकित दृश्य गीत आदि के साथ सट्टक का प्रयोग करके उसको 'सम्मद' कहा गया है । पाणिनि ने 'सम्मद' का अर्थ उत्सव किया है । डा० विसेन्ट स्मिथ का कहना है कि जोगीमारा गुफा में एक वृक्ष के नीचे एक पुरुष का चित्र अंकित है जिसके नीचे बालाएं नाच रही हैं । इसका समय २०० ई० पू० है । बाघ की गुफाओं में हल्लीसक नृत्य के चित्र में सात सात स्त्रियों के नाचने का वर्णन है । समय छठीं शताब्दी ईसवी है ।

रामायण (२६१- ६) में भरत के मनोरंजन के लिए नृत्य और अभिनय का वर्णन है -

'वादयन्ति तदा शान्तिं लासयन्त्यपि चापरे ।
नाटकान्यपरे समाहुर्हास्यानि विविधानि च ।। '

भागवत में कृष्ण के स्वागत का वर्णन करते समय कहा गया है -

'नटनर्तकगन्धर्वा: सूतमागधवन्दिन: ।
गायन्ति चोत्तमश्लोक चरितान्यद्भुतानि च ।। '

हरिवंशपुराण २।२०।२५ और २।२०।३५ में हल्लीसक नृत्य का वर्णन है -

'तास्तुपङ्क्तीकृता: सर्वा रमयन्ति मनोरमम् ।
गायन्त्य: कृष्णचरितं द्वन्द्वशो गोपकन्यका: ।। '

' एवं सर्वकृष्णगोपीनां चक्रवालैरलङ्कृत: ।

सम्भवत: मूक नाट्य के रूप में तदनन्तर आङ्गिक अभिनय से युक्त, तत्पश्चात् नृत्यगीत से युक्त और तब संवाद से युक्त यह नाटक के उद्भव का क्रम हो सकता है ।

शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर यह विदित होता है कि कोहल के समय से ही नृत्य (नाट्य) नृत्त और अभिनय से युक्त हुआ और एक नवीन नृत्य-कला विकसित हुई । कोहल ने कहा --

'संध्यायां नृत्यत: शम्भोर्भक्त्याद्रीनारद: पुरा ।
गीतवांस्त्रिपुरोन्माथं तच्चित्रस्त्वथ गीतके ।।
नाट्योक्त्याभिनयेनेदं वत्सयोज्य ताण्डवम् ।।' [१]

कोहल के समय में ही नृत्य नृत्त और अभिनय से युक्त हुआ क्योंकि उन्होंने ही सर्व प्रथम उपरूपकों को मान्यता दी । उपरूपकों को शास्त्रीय मान्यता तो दस रूपकों की मान्यता के बाद ही दी गई और उनको वैज्ञानिक शास्त्रीय मान्यता तो १० वीं शती ई० के बाद की है । यदि उप रूपकों का उल्लेख भरत के नाट्य शास्त्र में नहीं किया गया है तो यह नहीं समझना चाहिये

----

१. नाट्यशास्त्र, भाग १, पृ०१८० , अभिनवभारती, जी०ओ०सी० १९५६ ।

कि उस काल में उसका अस्तित्व नहीं था और कोहल आविष्कारक नहीं अपितु व्यवस्थापक और व्याख्याकार थे। उपरूपकों का अस्तित्व तो भास (हल्लीसक नृत्य) भरहुत (सट्टक) जोगीमारा (हल्लीसक नृत्य) कालिदास आदि के काल से कई शती ई०पू० था। एच०एच० विलसन का मत है -
'वैदिक साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में नृत्य केवल ताल और लय पर आश्रित था, बाद में उसमें अङ्ग विक्षेप संयुक्त हुआ। तदनन्तर क्रमशः गान तथा रसमय चेष्टायें प्रविष्ट हुई जिसके साथ स्वांग रङ्गमंचोपयुक्त क्रियायें और संवाद भी थे।'[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि संस्कृत रूपकों और उपरूपकों की उत्पत्ति नृत्य से हुई है। विन्टरनीट्ज ने कहा है -

'दि मिमिक डान्सेज आफ दि प्रिमिटिव पापुलस कान्टेन दि जर्म्स आफ इवोल्यूशन आफ ड्रामेटिक आर्ट।'[2]

'दि टर्मिनोलोजी आफ दि ड्रामा फर्दर प्रूव्स दैट इन इण्डिया टू सच डान्सेज वियर ऐट दि रुट आफ ड्रेमेटिक परफार्मेन्सेज।'[3]

आनन्द की अभिव्यक्ति का विकसित रूप नृत्य है। नृत्य धार्मिक तथा सामाजिक दोनों होता है। किसी धार्मिक अनुष्ठान या उत्सव में आत्म-विभोर हो उठने पर आनन्द की अभिव्यक्ति के लिये एकत्र ~~उठने~~ जन समुदाय द्वारा देवता या समाज के समक्ष उनका नर्तन, उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति, मन के भावों का मूर्तीकरण ही नृत्य है।

----

१. 'दि थियेटर आफ दि हिन्दूज' पृ० २०६ सुशील गुप्ता लिमिटेड, कलकत्ता।

२. ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर भाग ३, पृ० १८१ मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९७३ ई०।

३. ——— ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर भाग ३, पृ० १८१ मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १९७३ ई०

नृत्य जब संस्कृत नाट्य की ओर विकसित होने लगा और न केवल लोकनृत्य रह गया तब नृत्य नाट्य के साथ जन साधारण में प्रचलित लोक नाट्य, नृत्य-नाटक (डान्स-ड्रामा) के रूप में विकसित हुआ जिसमें पाठ्य मुख्य नहीं रहा। नाट्य के पाठ्य-प्रभाव से नृत्य नाट्य कभी पाठ्य-प्रधान होता था और कभी जन साधारण के भाव की अनुकृति की प्रधानता से नृत्य प्रधान होता है। इस प्रकार नृत्य-नाट्य के विकास की वेला में नाटिका, तोटक आदि पाठ्य प्रधान तथा हल्लीसक, श्रीगदित आदि नृत्य-प्रधान दोनों प्रकार के उपरूपकों की रचना हुई।

आचार्य भरत ने लोकधर्मी तथा नाट्यधर्मी दोनों प्रकार के नाट्य का उल्लेख किया है। नाट्यधर्मी तथा लोकधर्मी नाट्य के मिश्रण का रूप नृत्य है। लोकधर्मी नाट्य को समाज में पहले हेय समझा जाता था। इसी से उसे मार्ग कहा गया और वह नृत्यनाट्य के रूप में विकसित हुआ। इसी से उपरूपक समाज में दीर्घकाल तक रूपकों के समान महत्व न प्राप्त कर सका और उपेक्षित सा रहा।

साहित्यिक इतिहास के आरम्भिक काल में नाट्य राजाओं तथा विद्वानों आदि के मध्य महत्वपूर्ण रहा, किन्तु उपरूपक (नृत्य-नाट्य) जन साधारण के लौकिक विकास की परम्परा में पनपा। इस प्रकार सामान्य रूप से रूपक उच्चवर्ग का और उपरूपक जनसाधारण का मनोरंजन करते रहे।

आधुनिक युग में भी भरतनाट्यम् आदि नाट्यधर्मी नृत्य हैं और भवाई एवं गरबा लोकधर्मी नृत्य हैं। नाट्यधर्मी नृत्य की अपेक्षा लोकधर्मी नृत्य का महत्व कम है।

आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में यद्यपि `दशरूपक` का उल्लेख मिलता है, किन्तु दशरूपककार ने ही सर्वप्रथम अवस्थानुकृति को नाट्य कहा है, जो वाक्या-

र्थाभिनयात्मक रसाश्रित होता है और रूपक से भिन्न जो दशरूपककार ने पदार्थाभिनयात्मक भावाश्रित कहा है । यद्यपि आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण में अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि कहकर १८ प्रकार के उपरूपकों का उल्लेख किया है किन्तु उन्होंने रूपक तथा उपरूपक के भेदक तत्वों का वर्णन नहीं किया ।

नाट्य समीक्षा के क्षेत्र में सर्वप्रथम आचार्य कोहल ने उपरूपकों का उल्लेख तथा विवेचन किया है । अभिनवगुप्त का कहना है - प्रयोगाय प्रयोगत: इति व्याख्याने प्रयोगत इति विकलमेव उक्तव्याख्याने तु कोहलादिलक्षितत्रोटक-सट्टक रासकादिसंग्रहफलम् ।[१]

यद्यपि आचार्य कोहल उपरूपकों के जनक हैं किन्तु उन्होंने 'नृत्य' तथा 'उपरूपक' शब्द का उल्लेख नहीं किया है अपितु मार्ग देशीति नाट्यस्य भेदद्वयमुदाहृतम्[२] कहकर नाट्य के मार्ग तथा देशी दो भेद बताये हैं और नाटकादि २० प्रकार मार्ग के तथा डोम्बिकादि १० प्रकार देशी के स्वीकार किये हैं । आचार्य दत्तिल ने भी कोहल की भाँति मार्ग तथा 'देशी' ये दो भेद नाट्य के स्वीकार किये हैं । उन्होंने भी नृत्य तथा उपरूपक शब्द का प्रयोग नहीं किया है ।

आचार्य भरत तथा अभिनवगुप्त ने भी नृत्य शब्द का प्रयोग नहीं किया है । नाट्यशास्त्र तथा अग्निपुराण उपरूपक के विषय में मौन हैं ।

दशरूपककार धनंजय ने सर्वप्रथम नृत्त, नृत्य, नाट्य, रूप और रूपक शब्दों का विवेचन किया है और रूपक को शुद्ध रूपक तथा नाटिकादि को सङ्कीर्ण रूपक बताया है किन्तु उन्होंने जिस आधार पर यह विवेचन किया है वह ठीक नहीं है ।

---

१. नाट्यशास्त्र, १८ अध्याय, पृ० ४०७, अभिनवभारती, भाग २, जी०ओ०सी०, १९३४ ।

२. हि० स्वो० संलि०, पृ० ५४४ एम०कृष्णमाचारी ।

उपरूपकों में रसाभिव्यक्ति और भावाभिव्यक्ति दोनों प्रकार की विधायें सम्भव हैं।

साहित्यदर्पणकार के अनुसार किसी कवि का काव्य सामाजिक दृष्टि से दृश्य और रूप होता है, अभिनेता की दृष्टि से अभिनेय और नाट्य तथा रचनाकार की दृष्टि से रूपक होता है।

आचार्य हेमचन्द्र ने प्रबन्धकाव्य के श्रव्य तथा प्रेक्ष्य दो भेद किये हैं। प्रेक्ष्य के पुन: पाठ्य तथा गेय दो भेद माने हैं। पाठ्य में दस प्रकार के रूपक नाटिका तथा सट्टक को और गेय में ग्यारह प्रकार के उपरूपक को स्वीकार किया है।[1] उन्होंने पाठ्य को वाक्यार्थाभिनय और गेय को पदार्थाभिनय माना है।

शारदातनय ने यद्यपि नृत्त, नाट्य रूप तथा रूपक की व्याख्या की है किन्तु उन्होंने रूपक तथा उपरूपक का भेद नहीं बताया है। 'त्रिंशद्रूपकभेदास्ते' अर्थात् रूपक के ही तीस भेद बताकर १० को रसात्मक और बीस को भावात्मक कह दिया।

आचार्य रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने नाट्य दर्पण में केवल 'रूपक' शब्द का व्यवहार किया है। उनका कहना है -

'रूप्यन्ते अभिनीयन्ते इति रूपाणि नाटकादीनि।'

^ ^

'रसप्रधानान् नाटकादीनि अप्रधानरसांश्च दुर्मिलिता श्रीगदित भाणी प्रस्थान रासकादीन् भेदान् बिभर्ति ।।'[2]

---

१. काव्यानुशासन, प्रथम भाग पृ० ४३२, अध्याय ८, आर०सी०पारिख, संस्करण।
२. नाट्य दर्पण, पृष्ठ १२-१४, दिल्ली १९६१

आचार्य भरत और धनंजय ने उपरूपक में केवल नाटिका की व्याख्या की है। जो ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में भरतव्याख्यात दशरूपकों के अन्तर्गत नहीं आ रहे थे उन ग्रन्थों को परवर्ती आचार्यों ने उपरूपक की मान्यता दे दी। लेखक विप्रदास और कुम्भ ने नाटिका, तोटक, सट्टक को नाट्य-नृत्य अर्थात् रसाश्रित और डोम्बी, भाणी, हल्लीसकादि को 'मार्ग-नृत्य अर्थात् भावाश्रित कहा है। इनका यह मत अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

जिस प्रकार काव्य के ध्वनि काव्य, गुणीभूत काव्य तथा चित्र काव्य ये तीन भेद होते हैं उसी प्रकार नाट्य के भी तीन भेद माने जा सकते हैं -
१. रसात्मक, २. भावात्मक, ३. शोभात्मक।

आचार्य धनंजय ने रस तथा भाव दोनों की अलग अलग सत्ता मानी है, किन्तु कोहल, अभिनव, हेमचन्द्र, रामचन्द्र, शारदातनय आदि आचार्यों ने रसाश्रित तथा भावाश्रित सभी को रूपक कहा है। आचार्य भरत का भी यही मत है -

' न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
परस्परकृता सिद्धिस्तयोरभिनये भवेत् ॥ '[1]

इस प्रकार पाठ्य और गेय,[2] 'शुद्ध तथा सङ्कीर्ण,[3] रसप्रधान और अप्रधान रस,[4] नृत्य और नाट्य,[5] इन नामों की अपेक्षा रूपक और उपरूपक शब्द ही अधिक सार्थक हैं। ये शब्द अतिव्याप्ति अव्याप्ति और असम्भव

---

१. नाट्यशास्त्र, ६।३६ भाग १, पृ० २९३ जी०ओ०सी०, १९५६ ई०।
२. हेमचन्द्र
३. धनिक
४. रामचन्द्र गुणचन्द्र
५. धनंजय।

दोषों से रहित हैं। उपरूपक होते हुए भी नाटिका आदि पाठ्य हैं। वे रसाश्रित तथा भावाश्रित दोनों हैं और 'नाट्य' शब्द 'नृत्य' तथा 'नाट्य' दोनों का वाची होने से सदोष प्रतीत होता है। रूपकों तथा उपरूपकों के सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि अनुकृति में दशा का आरोप होने से तथा मुख्यत: तथा प्राचीन काल से ही पूर्ववर्ती तथा परवर्ती आचार्यों द्वारा स्वीकृत होने से दस रूपकों को ही रूपक कहा गया, चाहे उन रूपकों में नाट्य-तत्व रसाभिव्यक्ति आदि गौण रूप में ही क्यों न हो, क्योंकि आचार्य भरत से लेकर विश्वनाथकालीन आचार्यों तक ने उनके रूपकत्व को स्वीकार कर लिया है और उपरूपकों में वाक्यार्थाभिनय, रसाभिव्यक्ति, नाट्य तत्व एवं पाठ्य आदि की प्रधानता होने पर भी उन्हें उपरूपक ही कहा गया। इसलिये गेय, पदार्थाभिनयात्मक, भावाश्रित, नृत्यात्मक एवं सङ्कीर्ण दृश्य-काव्य को 'उपरूपक' कहना अनुचित नहीं है।

नृत्त, नृत्य एवं नाट्य सम्बन्धी मान्यताओं का अन्तर संस्कृत उपरूपक के नामों एवं भेदों की संख्या में भी प्राप्त होता है। कुछ आचार्यों ने रूपक तथा उपरूपक भेद स्वीकार ही नहीं किया (जैसे अग्निपुराण)। कुछ आचार्य नाटिका आदि उपरूपकों को भी रूपक में ही परिगणित कर देते हैं (हेमचन्द्र)। इस प्रकार नाट्यशास्त्रीय कृतियों के अवलोकन से उपरूपक के नामों एवं भेदों की संख्या के विषय में विभिन्न आचार्यों के भिन्न भिन्न मत दृष्टिगोचर होते हैं -

१. आचार्य भरत ने 'नाट्य-शास्त्र' में केवल नाटी (नाटिका) की व्याख्या की है[1] -

'स्त्रीप्राया चतुरङ्का ललिताभिनयात्मिका'
बहुनृत्तगीतपाठ्या० ।। १८।५६ ।।

---

१. नाट्य शास्त्र, भाग २, १८।५८।६०, पृ० ४३५, जी० ओ० सी०।

`नायक देवी दूतो सपरिजना नाटिका ज्ञेया: ।।१८।६०`

२. आचार्य कोहल ने बीस प्रकार के उपरूपक बताए हैं। उन्होंने मार्ग और देशी दो भेद करके मार्ग में बीस प्रकार और देशी में दस प्रकार बताया है। इस प्रकार दस उपरूपक मार्ग नाट्य हैं और दस देशी नृत्य काव्य हैं -[१]

`मार्गी देशीति नाट्यस्य भेदद्वयमुदाहृतम् .....`

< ^

नाटिका प्रकरणिका भाणिका हासिका तथा
वियोगिनी च डिम्भिका कलोत्साहवती पुन: ।
चित्रा जुगुप्सिता चैव चित्रतालेति दुर्गमा -
एवमुक्तं मार्गनाट्यं शिवाभ्यां ब्रह्मणा पुरा ।
अथ देशी नृत्यकाव्यप्रभेदा डोम्बिकादय: -
कथ्यन्ते डोम्बिकामाणा: प्रस्थानं षिद्गकोऽपि च ।
भाणिका प्रेरणं चाथरामाक्रीडं तथैव च -
रागकाव्यं च हल्लीस: रासकं चेत्यमीदश ।`

कोहल के अनुसार १. नाटिका, २. प्रकरणिका, ३. भाणिका, ४. हासिका, ५. वियोगिनी, ६. डिम्भिका, ७. कलोत्साहवती, ८. चित्रा, ९. जुगुप्सिता, १०. चित्रताला, ११. डोम्बिका, १२. भाण, १३. प्रस्थान, १४. षिद्गक, १५. भाणिका, १६. प्रेरण, १७. रामाक्रीड, १८. रागकाव्य, १९. हल्लीस, २०. रासक, ये २० उपरूपक हैं।

[illegible] ।
१. द हिस्ट्री आफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, पृ० ५५४, एम० कृष्णमाचारी, मद्रास, १९३७ ई०

३. अग्निपुराण में २७ प्रकार के नाट्य का उल्लेख है जिसमें १७ प्रकार के उपरूपक बताये गये हैं[१] —

> .... त्रोटकान्यथ नाटिका ।
> सट्टकं शिल्पकः कर्णो एकोदुर्मल्लिका ।
> प्रस्थानं भाणिका भाणी गोष्ठी हल्लीसकानि च ।
> काव्यं श्रीगदितं नाट्यरासकं रासकं तथा ।
> उल्लाप्यकं प्रेङ्खणं च.......... ॥

तोटक, २. नाटिका, ३. सट्टक, ४. शिल्पक, ५. कर्ण, ६. दुर्मल्लिका, ७. प्रस्थान, ८. भाणिका ९. भाणी, १०. गोष्ठी, ११. हल्लीसक, १२. काव्य, १३. श्रीगदित, १४. नाट्यरासक, १५. रासक, १६. उल्लाप्यक, १७. प्रेङ्खण ।

अग्निपुराण में रूपक तथा उपरूपक का भेद नहीं माना गया है ।

४. आचार्य अभिनव गुप्त ने तेरह प्रकार के उपरूपकों का उल्लेख किया है और उसे उपरूपक न कहकर नृत्त की संज्ञा दी है —

१. डोम्बिका, २. प्रस्थान, ३. शिद्गक, ४. भाण, ५. भाणिका, ६. रागकाव्य, ७. तोटक, ८. प्रकरणिका, ९. रासक, १०. प्रेरण, ११. रामाक्रीड, १२. हल्लीसक, १३. चित्रताल ।[२]

५. उपरूपकों की वैज्ञानिक समीक्षा १०वीं शती से प्रारम्भ होती है । दशरूपककार ने केवल नाटिका का विवेचन किया है ।[३] वृत्तिकार धनिक ने इसे

---

१. अग्निपुराण, ३२८, अध्याय, अड्यार लाइब्रेरी
२. नाट्यशास्त्र, प्रथम भाग, ४अध्याय, अभिनवभारती, पृ० १७१,१८३, जी०ओ०सी०
३. दशरूपक, ३।४२ धनिक, वृत्ति, पृ० १७१, भोलाशंकर व्यास संस्करण, १९६२ ।

सङ्कीर्ण भेद बताया । धनिक ने नृत्त, नृत्य और नाट्य के विवेचन में सात प्रकार के नृत्त बताये हैं -

१. डोम्बी, २. श्रीगदित, ३. भाण, ४. भाणी, ५. प्रस्थान, ६. रासक, ७. काव्य ।

धनिक ने ही सर्वप्रथम श्रीगदित का उल्लेख किया है । दशरूपक में कहीं भी उपरूपक शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है ।

०६. आचार्य हेमचन्द्र ने काव्यानुशासन में १४ प्रकार के उपरूपकों का उल्लेख किया है । उन्होंने भी उपरूपक शब्द का प्रयोग न कर नाटिका और सट्टक को पाठ्य तथा शेष को गेयकाव्य कहा है -

'पाठ्यं नाटक-प्रकरण-नाटिका-समवकारेहामृगडिमव्यायोगोत्सृष्टिकाङ्कप्रहसनभाणवीथीसट्टकादि ।'[1]

'गेयं डोम्बिका भाण प्रस्थानशिंगक भाणिका प्रेरण रामाक्रीड हल्लीसक रासक गोष्ठी श्रीगदितरागकाव्यादि ।'[2]

१. नाटिका, २. सट्टक, ३. डोम्बिका, ४. भाण, ५. प्रस्थान, ६. शिंगक, ७. भाणिका, ८. प्रेरण, ९. रामाक्रीड, १०. हल्लीसक, ११. रासक, १२. गोष्ठी, १३. श्रीगदित, १४. रागकाव्य ।

७. आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र ने १५ प्रकार के उपरूपक बताये हैं । उन्होंने नाटिका तथा प्रकरणी को सङ्कीर्ण भेद बताकर 'अन्यान्यपि रूपकाणि दृश्यन्ते' कहकर शेष का भी उल्लेख किया है -

----

१. काव्यानुशासन, भाग १, पृ० ४३२, ८वाँ अध्याय, आर०सी० पारिख ।
२. ,, पृ० ४४५

१. नाटिका , २. प्रकरणी, ३. सट्टक, ४. श्रीगदित, ५. दुर्मिलिता, ६. प्रस्थान, ७. गोष्ठी, ८. हल्लीसक, ९. शम्या, १०. प्रेंखणक, ११. रासक, १२. नाट्यरासक, १३. भाण, १४. भाणिका तथा १५. काव्य ।[१]

नाट्यदर्पणकार ने भी 'उपरूपक' शब्द के स्थान पर 'अप्रधानरसाँ' कहा है । रामचन्द्र ने 'शम्या' नामक नूतन शब्द का प्रयोग किया है ।

८. भावप्रकाशनकार शारदातनय ने उपरूपकों को 'नृत्यभेद' कहकर प्राय: बीस उपरूपकों की संख्या बताई है ।[२]

'तोटक नाटिका गोष्ठी संल्लाप: शिल्पकस्तथा ।
डोम्बी श्रीगदितं भाणो भाणी प्रस्थानमेव च ।
काव्यं च प्रेंखणं नाट्यरासकं रासकं तथा ।
उल्लोप्यकं च हल्लीसमथ दुर्मल्लिकापि च ।
कल्पवल्ली मल्लिका च पारिजातकमित्यपि ।।'

शारदातनय ने उपरूपकों की सबसे अधिक संख्या बताई है ।

९. साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने १८ प्रकार के उपरूपक बताये हैं -

'नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम् ।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेंखणं रासकं तथा ।।
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका ।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च ।।
अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिण: ।
विना विशेषं सर्वेषां लक्ष्मनाटकवन्मतम् ।।' सा०द०, ६।३-६।

---

१. नाट्य दर्पण, पृ० ४०४-४०८, दिल्ली विश्वविद्यालय, १९६१ ।
२. भावप्रकाशन, नवम् अधिकार, पृ० २२५, जी०ओ०सी० १९३० ।

१. नाटिका, २. त्रोटक, ३. गोष्ठी, ४. सट्टक, ५. नाट्यरासक, ६. प्रस्थानक, ७. उल्लाप्य, ८. काव्य, ९. प्रेक्षणक, १०. रासक, ११. संल्लापक, १२. श्रीगदित, १३. शिल्पक, १४. विलासिका, १५. दुर्मल्लिका, १६. प्रकरणिका, १७. हल्लीश, १८. भाणिका ।[१]

आचार्य विश्वनाथ ने सर्वप्रथम उपरूपक शब्द का प्रयोग किया है ।

उपर्युक्त आचार्यों द्वारा बताई गई उपरूपकों की भिन्न भिन्न संख्या का संग्रह करने पर उनकी संख्या अधोलिखित रूप में समझ आती है -

१. नाटी(नाटिका), २. प्रकरणिका, ३. भाणिका, ४. हासिका, ५. वियोगिनी, ६. कलोत्साहवती, ७. चित्रा, ८. जुगुप्सिता, ९. चित्रशाला, १०. डिम्बिका, ११. डोम्बिका, १२. भाण, १३. प्रस्थान, १४. त्रिदुगत, १५. प्रेरण, १६. भाणिका, १७. रामाक्रीड, १८. रागकाव्य, १९. हल्लीश, २०. रासक, २१. सट्टक, २२. शिल्पक, २३. कर्ण, २४. त्रोटक, २५. दुर्मल्लिका, २६. भाणी, २७. गोष्ठी, २८. श्रीगदित, २९. नाट्यरासक, ३०. उल्लाप्य, (उल्लोप्य), ३१. प्रेह्०क्षण (प्रेक्षण), ३२, संल्लाप, ३३. कल्पवल्ली, ३४. पारिजातक, ३५. मल्लिका, ३६. विलासिका, ३७. दुर्मिलिता, ३८. नर्तनक ।

इन उपरूपकों में से कुछ उपरूपक ऐसे हैं जिनका उल्लेख केवल एक ही आचार्य ने किया है । जैसे कर्ण अग्निपुराण । मल्लिका शारदातनय। कल्पवल्ली, भावप्रकाशन। पारिजातक भावप्रकाशन । दुर्मिलिता-नाट्यदर्पण । नर्तनक-नाट्य-दर्पण। विलासिका-साहित्य-दर्पण ।

---

१. साहित्य दर्पण, ६।२६९-२७२, पृ० ५३२, चौ०वि०भवन, १९५७, डा० सत्यव्रत सिंह ।

इन नृत्य-नाट्यों के अतिरिक्त कुछ नृत्य प्रकार भी मिलते हैं -

१. चलित नृत्य - मालविकाग्निमित्र में
२. हालिक्य- हरिवंश २।८८।६६ में
३. नालिका- भारतकोश, पृ० ३२६ में शुभङ्कर ।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि उपरूपक अति प्राचीन काल से ही जन-समाज में प्रचलित थे, केवल उनको सार्वभौम मान्यता न थी । जब से नृत्य नाट्य की ओर बढ़ने लगा उसी समय से उपरूपकों को मान्यता दे दी गई । यह क्रिया कोहल के समय से प्रारम्भ हुई । वैसे साहित्यिक प्रमाणानुसार १० वीं शती के बाद अर्थात् दशरूपककार के बाद और हेमचन्द्र के पहले उपरूपकों की सत्ता निर्धारित की जाती है ।

इस प्रकार उपरूपकों के नामों एवं भेदों के विषय में नाट्यशास्त्रियों की निश्चित मान्यतायें न थीं जैसी कि रूपक के विषय में थीं । इसका प्रमुख कारण था कि उपरूपक रूपक की भाँति पण्डित समाज में आदर न प्राप्त कर सका था । वह पाठ्य कम तथा जनसाधारण की वस्तु था ।

उपरूपकों की संख्या आदि के विषय में आचार्यों का इतना अधिक वैमत्य लोक में उनके स्वतन्त्र विकास को सिद्ध करता है ।

उपरूपकों के विकास के विषय में लक्ष्य एवं लक्षण ग्रन्थों के आधार पर ज्ञात होता है कि उपरूपकों के विकास की चार अवस्थायें हैं । प्रारम्भ में कोहल तथा अभिनवगुप्त के काल में ये नृत्त भेद कहे जाते थे । नृत्त एवं अभिनय से युक्त होने पर ये दशरूपककार के समय से नृत्य प्रकार कहे गये । तदनन्तर पाठ्य एवं सङ्गीत के समावेश से हेमचन्द्र के काल में गेयरूपक तथा अन्त में विश्वनाथ के समय से अन्य रूपकों की भाँति उपरूपक कहे जाने लगे । इस प्रकार शिशु, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, मानव की इन चार अवस्थाओं की भाँति उपरूपक के विकास की भी

चार अवस्थायें हैं -- नृत्य भेद, नृत्य प्रकार, गेयरूपक, उपरूपक ।

उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि जिन उपरूपकों में संगीत तथा नृत्य तत्व अधिक हैं वे मौलिक उपरूपक हैं तथा जिनमें पाठ्य तत्व अधिक हैं वे बाद की विधायें हैं ।

शास्त्रीय ग्रन्थों के अतिरिक्त मानव की सांस्कृतिक कहानी भी इस बात का प्रमाण है कि शास्त्रीय कला एवं साहित्य तथा वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य के साथ लोक साहित्य एवं कला की भी एक धारा सतत प्रवाहित होती रही है । यह बात दूसरी है कि लोक-साहित्य एवं कला शास्त्रीय कला एवं साहित्य की भाँति उच्च वर्ग में सम्मान न प्राप्त कर सका ।

तात्पर्य यह है कि रासक, हल्लीसक आदि नृत्य नाट्य प्राचीनकाल से ही भारत की भूमि में पल्लवित होते रहे तथा उनके विकास की कहानी प्राचीनकाल से ही एक जीती जागती कहानी है जिसके साहित्यिक प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं । इतना अवश्य है कि उपरूपक सदैव जनसाधारण के मध्य ही पल्लवित होते रहे ।

उपरूपकों के विकास के अन्त:साक्ष्य पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात होता है कि अधिकांश उपरूपक सङ्गीतात्मक , कुछ पाठ्यात्मक, कुछ नाट्यात्मक तथा कतिपय नृत्यात्मक हैं । प्राचीन नाट्यशास्त्रियों के अनुसार आठ नाट्यात्मक उपरूपक तथा तीस नृत्यात्मक उपरूपक हैं ।

प्रश्न उठता है कि इन उपरूपकों में से कुछ का अन्तर्भाव रूपक में किया जा सकता है या नहीं ? आचार्य भरत ने अपने नाट्य-शास्त्र में रूपकों की संख्या दस ही मानी है । नाटिका को उन्होंने नाटक और प्रकरण के भावों पर आश्रित मानकर उसे उपरूपक ही माना है, स्वतन्त्र रूपक नहीं माना है । परवर्ती आचार्यों में रामचन्द्र गुणचन्द्र ने नाटिका और प्रकरणिका को स्वतन्त्र रूपक माना है और रूपकों की संख्या १२ कर दी है । विश्वनाथ ने

नाटिका और प्रकरणी को उपरूपक मानकर रूपकों की संख्या दस ही मानी है। धनंजय ने भरत के ही मत का अनुसरण किया है। वे भी नाटिका को स्वतन्त्र रूपक न मानकर रूपकों की संख्या दस ही मानते हैं।

शुद्ध नाटक तथा शुद्ध प्रकरण से मिश्रित उपरूपक को नाटिका कहते हैं। नाटिका का उपरूपकों में प्रथम स्थान है। नाटक और प्रकरण से मिश्रित उपरूपकों में एकमात्र नाटिका ही सङ्कीर्ण भेद है अन्य उपरूपक (प्रकरणिका) नहीं। अन्य उपरूपकों की निवृत्ति के लिये ही इसे नाटक तथा प्रकरण के बाद रखा गया।[१]

कतिपय विद्वान् सङ्कीर्ण उपरूपकों में नाटिका तथा प्रकरणिका इन दो भेदों की गणना करते हैं। इसके प्रमाणस्वरूप वे भरत विरचित अधो-लिखित श्लोक प्रस्तुत करते हैं —

'अनयोश्च बन्धयोगादेको भेद: प्रयोक्तृभिर्ज्ञेय: ।
प्रख्यातस्त्वितरो वा नाटीसंज्ञाश्रित: काव्ये ।। - भरत ना०शा० ।

उन विद्वानों के अनुसार इस श्लोक का अर्थ यह है कि नाटक तथा प्रकरण से मिश्रित दो भेद होते हैं - एक प्रसिद्ध भेद नाटिका तथा दूसरा अप्रसिद्ध भेद प्रकरण। ये दोनों भेद नाटी संज्ञा से काव्य में अभिहित होते हैं।

यद्यपि भरतमुनि विरचित श्लोक को नाटी संज्ञा वाले काव्य के दो भेद होते हैं - एक प्रख्यात भेद नाटिका तथा दूसरा अप्रख्यात प्रकरणिका। लेकिन लक्षण तथा लक्ष्य ये दोनों जब तक न मिलें तब तक वस्तु प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। प्रकरणिका कह देने मात्र से उसका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक उसका लक्षण कहीं न घटे।

आचार्य भरत के श्लोक में प्रकरणिका का नाम तथा लक्षण दोनों नहीं पाये जाते। यदि कोई कहे कि प्रकरण के समान वस्तु, नायक तथा रस

---

१. लक्ष्यते नाटिकाप्यत्र सङ्कीर्णान्यनिवृत्तये। दशरूपक, तृतीय प्रकाश, पृ०१६१

होने प्रकरणिका का अलग से लक्षण नहीं किया गया तो उसका उत्तर यह है कि प्रकरण के समान ही प्रकरणिका के भी लक्षण होने से प्रकरणिका को अलग भेद मानना भी व्यर्थ है, दोनों एक ही चीज़ हैं। वैसे तो नाटिका का लक्षण शुद्ध रूपकों (नाटक तथा प्रकरण) के लक्षण के संकर मिश्रण से ही सिद्ध हो जाता है फिर भी आचार्य भरत द्वारा नाटिका का लक्षणकरण इस बात का नियमन करता है कि संकीर्ण उप रूपकों में केवल नाटिका की ही गणना होनी चाहिये।

दशरूपककार धनंजय प्रकरणिका को अलग भेद नहीं मानते। उनके अनुसार प्रकरणिका का कोई पृथक् अस्तित्व नहीं है। वे नाटिका रूप केवल एक संकीर्ण भेद मानते हैं। दशरूपक की व्याख्या करने वाले वृत्तिकार धनिक ने भी नाटिका तथा प्रकरणिका दो भेद मानने का खण्डन किया है। उनका कहना है कि भरतमुनि के श्लोक के आधार पर नाटिका तथा प्रकरणी दो संकरकृत भेद मानना अनुचित है। इसका कारण यह है कि नाटिका तथा प्रकरणिका नाम से दो अलग अलग भेदों का नाममात्र तथा लक्षण रूप से कथन नहीं किया गया है। दूसरा कारण यह है कि नाटिका तथा प्रकरणिका का लक्षण समान माना जाय तो दोनों में कोई भेद नहीं रह जायगा। तीसरा कारण यह है कि प्रकरणिका को अलग भेद मानने वाले विद्वान् उसका जो लक्षण करते हैं वह प्रकरण के समान ही है, इस कारण से उसको अलग भेद मानना असंगत प्रतीत होता है अतः वृत्तिकार धनिक के अनुसार भरतमुनि ने नाटिका का जो लक्षण किया है उसका अभिप्राय यह है कि संकीर्ण भेदों में केवल नाटिका की ही रचना करनी चाहिये।

लेकिन रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने नाटिका तथा प्रकरणिका के विषय में परस्पर विरोधी विचार प्रकट किये हैं। रामचन्द्र के मतानुसार नाटिका तथा प्रकरणिका दोनों का पृथक् पृथक् अस्तित्व है। उनकी दृष्टि से नाटिका नाटकोन्मुखी होती है और प्रकरणिका प्रकरणोन्मुखी होती है। स्टेन-कोनो के अनुसार

भरत ने नाटक के एक प्रकार को 'नाटी' कहा है लेकिन उत्तरकालीन आचार्यों ने इसे 'नाटिका' नाम दिया है। भरत ने नाटक तथा प्रकरण से उद्भूत केवल 'नाटिका' नामक भेद माना है। 'अवलोक' टीका की व्याख्या के अनुसार दशरूपककार के पूर्ववर्ती आचार्य नाटिका तथा प्रकरणिका दो भेद मानते हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में प्रकरणी को नाटिका के समान चार अङ्कों वाली माना गया है।[1] उसमें १२ प्रकार के रूपक माने गये हैं। वर्धमान ने गणरत्नमहोदधि में प्रख्यात तथा अप्रख्यात दो भेद माने हैं।[2]

भोज ने नाटिका को स्वतन्त्र भेद मानकर ग्यारह प्रकार के रूपक माने हैं। वे भरत तथा धनंजय के समर्थक हैं।[3] परन्तु भोज 'अभिनवभारती' में निरूपित[4] तथा धनंजय तथा धनिक द्वारा आलोचित प्रकरणिका नामक भेद मानने का विरोध नहीं करते। भोज ने नाटिका के समान भेद अवश्य माना है लेकिन वे उसे सट्टक कहते हैं। उनके अनुसार सट्टक तथा नाटिका में केवल इतना भेद है कि सट्टक में विष्कम्भक तथा प्रवेशक नहीं होता और वह केवल एक ही भाषा में होता है।

आचार्य भरत ने दस प्रकार के रूपकों का विवेचन करते समय नाटिका का ही प्रतिपादन किया है। 'नाटिका' नाट्य-शास्त्रका मूल अथवा प्रक्षिप्त अंश है इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अभिनवगुप्त ने नाट्य-संग्रह के प्रसंग में यह प्रतिपादित किया है कि मूल नाट्य में भी कुछ प्रक्षिप्त अंश जुड़ हैं।[4] यदि नाटिका मूल नाट्य-शास्त्र का अंश नहीं है

१. एवं(नाटकावत्)प्रकरणिकायां चतुरङ्कापि सा भवेत्। विष्णुधर्मोत्तर-III,१७

२. नाटीसंज्ञया द्वे काव्ये। एको भेदः प्रख्यातो नाटिकाख्यः। इतरस्त्वप्रख्यातः प्रकरणिकासंज्ञः। (गणरत्नमहोदधि (१४८०२०))

३. प्रधाननाटकभेदो रूपकमिव नाटिका भवति।

४. अनेन तु श्लोकेन कोहलमते एकदशांगत्वमुच्यते न तु भरते। अ०भा०भाग १,पृ० १६५-२६६।

तो भी वह अत्यन्त प्राचीन रूपक भेदों में से एक है। दशरूपक विष्णुधर्मोत्तरपुराण तथा अन्य नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नाटिका का अत्यन्त प्राचीन रूपकों अथवा उपरूपकों के अन्तर्गत उल्लेख किया गया है।

नाटिका आरम्भिक अवस्थान में ही रूढ़िबद्ध हो गई और किसी महत्त्वपूर्ण उद्भावना के लिये अवकाश नहीं रहा। इसमें यथार्थ जीवन के प्रति सूक्ष्म दृष्टि की सम्भावना की जा सकती थी लेकिन नाटककारों ने इसके लिये प्रयास नहीं किया। उन्होंने पुराण-कथाओं से विषयों का चयन किया है और नायकों पर इस बात का मोहक रंग चढ़ाया है कि किसी विशिष्ट युवती के साथ किया गया विवाह उन्हें सार्वभौम सम्राट बना देगा। नाटिका में उत्कृष्ट कामदी की आशा की जा सकती थी लेकिन नाटककारों का लक्ष्य यथार्थवाद नहीं अपितु सहृदय के मन में शृंगार रस का उद्रेक कराना था। अतः शृंगार रस ने अनुचित सीमा तक उसके महत्त्व को घटा दिया। यद्यपि नाटिका में उत्कृष्ट कामदी का अभाव नहीं है लेकिन वह अपेक्षाकृत अविकसित है। कालिदास का मालविकाग्निमित्र, भास का स्वप्नवासवदत्तम् इन नाटकों का कथानक नाटिका से मिलता-जुलता है।

नाटिका नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि वह स्वरूपतः नाटक से अधिक भिन्न नहीं है। नाटिका और नाटक के स्वरूप में भिन्नता की सीमा अतिसूक्ष्म है। कभी कभी तो कुछ नाटकों के प्रति यह भी सन्देह हो जाता है कि यह नाटिका भी हो सकती है। कुछ नाटक चार अङ्कों के होते हैं लेकिन स्वरूपतः उन्हें नाटिका कहा जा सकता है। रामदास के पुत्र धर्मगुप्त ने चार अङ्कों वाले रामायण नामक नाटक की रचना की थी किन्तु उत्तरवर्ती काल में उनकी भूमिका परिवर्तित करके उसको नाटिका का स्वरूप देकर उसका नाम 'रामाङ्क' रख दिया।

नाटिका शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है -[१] नाटिका - (स्त्री०) नाट+कन्+टाप्, इत्व।

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र गुणचन्द्र के अनुसार यह शब्द नट् नर्तने

नचाती है अर्थात् आह्लादित करती है । इस विग्रह में णिजन्त नट् से 'अच्' प्रत्यय करके 'षिद्गौरादिभ्यश्च' सूत्र में गौरादिगण के आकृतिगण होने से ङीष् प्रत्यय होने पर 'नाटी' यह पद सिद्ध होता है । यह 'नाटी' पद 'नाटिका' का पर्यायवाचक शब्द है । अल्प कथावस्तु होने के कारण अल्पार्थ में 'कप्' प्रत्यय होकर 'नाटिका' यह रूप बनता है । नाटिका और नाटी पदों में जो स्त्रीलिङ्ग का प्रयोग किया गया है उसका कारण यह है कि स्त्री-प्रधान होने के कारण और सौकुमार्य का अतिशय होने के कारण स्त्रीलिङ्ग की संज्ञा के द्वारा निर्देश किया गया है ।[1]

नाटिका का इतिवृत्त प्रख्यात अथवा कविकल्पित हो सकता है । उसका नायक नाटक से गृहीत होता है । वह राजा, प्रख्यातवंश तथा धीरललित प्रकृति का होता है ।

नाटिका में चार अङ्क होते हैं । धनंजय के अनुसार चार से कम अङ्क भी हो सकते हैं । इसमें नारी पात्रों की प्रधानता रहती है । नाटिका की संज्ञा में स्त्रीत्व का प्रयोग ही स्त्रीपात्रों की प्रधानता का सूचक है ।

नाटिका में दो प्रकार की नायिकायें होती हैं - ज्येष्ठा नायिका देवी (महारानी) होती है जो राजवंश में उत्पन्न, प्रगल्भ प्रकृति वाली गम्भीर तथा मानिनी होती है । कनिष्ठा नायिका भी नृपवंशजा तथा रनिवास से संबन्ध रखने वाली होती है, किन्तु वह मुग्धा, अत्यधिक मनोहर तथा

---

१. उभयोः प्रसिद्धत्वेऽपि च कल्पितार्थत्वं नाटिकायाः अन्यथा संविधानकरचनात् । नाटयति नर्तयति व्युत्पाद्यमनांसीत्यचि गौरादेराकृतिगणत्वाच्च ङीषि नाटी । अल्पवृत्तत्वादल्पार्थे कपि नाटिकेत्यपीति । स्त्रीप्रधानत्वात् सुकुमारातिश (श) य-त्वाच्च स्त्रीलिङ्गसंज्ञानिर्देशः ।

ना० द० : रामचन्द्र गुणचन्द्र, पृ० १२०

सुन्दरी होती है। दोनों नायिकाओं के अप्रसिद्ध तथा प्रसिद्ध होने से दो दो भेद होते हैं। इस प्रकार नाटिका के चार भेद होते हैं - १. देवी, अप्रसिद्ध तथा मुग्धा नायिका अप्रसिद्ध। २. देवी अप्रसिद्ध तथा मुग्धा नायिका अप्रसिद्ध। ३. देवी प्रसिद्ध तथा मुग्धा नायिका प्रसिद्ध। ४. देवी प्रसिद्ध तथा मुग्धा नायिका अप्रसिद्ध। देवी और कन्या दोनों के प्रसिद्ध होने पर नाटिका में उनके चरित्र आदि के रूप में कुछ परिवर्तन कर देने पर नाटिका का कथानक कल्पित हो जाता है।

मुग्धा नायिका निम्नश्रेणी के पात्र के रूप में अन्त:पुर से सम्बद्ध होने के कारण नायक के श्रुतिपथ तथा दृष्टिपथ में अवतरित होती है। नायक का नायिका के प्रति अनुराग आरम्भ में नवीन रहता है किन्तु धीरे धीरे वह परिपक्व हो जाता है। नायक नायिका से विवाह करने का प्रयत्न करता है। वे दोनों एक दूसरे से गुप्त रूप में मिलते रहते हैं। ज्येष्ठा नायिका की ईर्ष्या के विरुद्ध नायक-नायिका को बहुत संघर्ष करना पड़ता है। नायक का कनिष्ठा नायिका के साथ सङ्गम ज्येष्ठा देवी के अधीन रहता है। नायक देवी द्वारा किये गये क्रोध के उपशमन का प्रयास करता है। अन्त में रानी दोनों के विवाह की अनुमति प्रदान करती है।

नाटिका में कैशिकी वृत्ति की प्रधानता रहती है। तात्पर्य यह है कि भारती, आरभटी तथा सात्वती वृत्तियों की अपेक्षा इसकी बहुलता रहती है। शास्त्रानुसार चार अङ्कोंवाली नाटिका के प्रत्येक अङ्क में कैशिकी के एक एक अङ्ग (नर्म, नर्मस्फिञ्ज, नर्मगर्भ, नर्मस्फोट) की निबन्धना अपेक्षित है।

नाटिका के आरम्भ के तीन अङ्कों में क्रमश: तीन अवस्थाओं का तथा चौथे अङ्क में एक अवस्था का प्रधानभूत अन्य अवस्था में समावेश कर चार अङ्कों में चार अवस्थाओं की योजना करनी चाहिये। आचार्य हेमचन्द्र का मत है कि एक अवस्था का दूसरी अवस्था में समावेश कर चार अवस्थाओं की

योजना नाटिका के चार अङ्कों में होनी चाहिये ।

नाटिका के चार अङ्कों में चार सन्धियाँ (मुख, प्रतिमुख, गर्भ तथा निर्वहण) होनी चाहिये । कभी कभी चतुर्थ अङ्क में अवमर्श सन्धि भी अल्प रूप में विद्यमान रहती है । नाटिका की सन्धियों के विषय में नाट्यशास्त्र में कुछ नहीं कहा गया है । शारदातनय की दृष्टि से विमर्श को छोड़ कर अन्य चार सन्धियाँ होनी चाहिये । नाट्य दर्पण के अनुसार पाँचों सन्धियाँ होनी चाहिये । रसार्णवसुधाकर नाटिका में विमर्श सन्धि स्वीकार नहीं करते । साहित्य दर्पण के अनुसार विमर्श सन्धि अल्प रूप में विद्यमान रहती है ।

कैशिकी वृत्ति के चार अङ्गों का नाटिका के चार अङ्कों में सन्निवेश मुख, प्रतिमुख, गर्भ, निर्वहण तथा अल्प रूप में विमर्श इन पाँचों सन्धियों का चार अङ्कों में सन्निवेश तथा पाँचों अवस्थाओं का चार अङ्कों में सन्निवेश होने से नाटिका में चार अङ्क का होना उचित ही है ।

नाटिका में कैशिकी वृत्ति की प्रधानता के कारण ललित, अङ्ग विन्यास से पूर्ण अभिनय, रति सम्भोग, गीत, नृत्य, वाद्य, हास्य आदि शृङ्गार के अङ्गों की प्रचुरता रहती है । इसमें (राज्यप्राप्ति रूप) फल तथा (नायिका प्राप्ति का) उपाय दोनों कल्पित होते हैं । नाटिका के अन्त में निर्वहण सन्धि में ज्येष्ठा नायिका द्वारा नायक का कनिष्ठा नायिका के साथ योग कराया जाता है । अभिनवगुप्त के अनुसार रति सम्भोग आदि की योजना कनिष्ठा नायिका के लिये तथा क्रोध प्रसाद-दम्भ आदि की योजना ज्येष्ठा नायिका के लिए होती है ।

नायक देवी, दूती, परिजन, विदूषक इत्यादि नाटिका के पात्र होते हैं । चिड़ियों का चहचहाना वानरों का भागना, ज्येष्ठा नायिका के वस्त्रों को पहना कर मुग्धा नायिका के स्वरूप को छिपाना, जादूगर के प्रदर्शन की कुशलता इत्यादि न केवल आश्चर्यजनक घटनायें होती है वरन् कथानक के विकास

की दृष्टि से भी प्रशंसनीय होती है। इसमें किसी ऋतु तथा पर्व इत्यादि का वर्णन प्रकृति-चित्रण के रूप में किया जाता है।

नाटिका रसात्मक होती है। वह प्रेक्षक को रसानुभूति कराती है। अतः उसमें रसों की विनियोजना होनी चाहिये परन्तु उनका प्रयोग निश्चित नियमों के अनुसार होता है। नाटिका में एक अङ्गी (मुख्य) रस होना चाहिये। कैशिकी वृत्ति की प्रधानता के कारण उसका अङ्गीरस शृङ्गार होना चाहिये। इसमें शृङ्गार के दोनों पक्षों (संयोग तथा विप्रलम्भ) का समावेश करना चाहिये। अन्य (वीर रौद्र, आदि) रस सहायक मात्र होते हैं। नाटिकाओं में वृत्त के बीच एक वर्ष का अन्तराल हो सकता है। यदि इतिहास के अनुसार उन घटनाओं के घटित होने में उससे अधिक समय लगा हो तो कवि को उसका समय घटाकर एक वर्ष या उससे कम कर देना चाहिये। सामाजिकों को इस प्रकार के मध्यान्तर में घटित घटनाओं से अवगत कराने के लिये नाट्य-शास्त्र में पांच प्रकार के अर्थोपक्षेपकों का विधान किया गया है। ये अर्थोपक्षेपक उन बातों के वर्णन का भी प्रयोजन सिद्ध करते हैं जिनका रङ्गमंच पर उपस्थापन नाट्य-रीति के अनुसार वर्जित है।

नाटिका के उदाहरण स्वरूप-रत्नावली, प्रियदर्शिका, चन्द्रलेखा, कुवलयावली, कर्णसुन्दरी विद्धशाल भंजिका, मृगाङ्कलेखा इत्यादि काव्य दिये जा सकते हैं।

आचार्य भरत ने नाटिका की इतनी स्पष्ट तथा विस्तृत परिभाषा प्रस्तुत की है कि परवर्ती आचार्यों के लिए नवीन तथ्यों का आकलन करना सम्भव नहीं था अतः उन्होंने उन्हीं विचारों का विस्तार किया है। भरत ने

नाट्य शास्त्र में नाटिका की परिभाषा देते हुए लिखा है[1]—कि नाटक तथा प्रकरण के लक्षणों से मिश्रित उत्पाद्य कथावस्तु होनी चाहिये। नायक राजा होना चाहिये। अन्तःपुर से सम्बद्ध तथा सङ्गीतकुशल कन्या होनी चाहिये। स्त्रीपात्रों की बहुलता रहती है। चार अङ्कों वाली होती है। ललित अङ्गों से पूर्ण अभिनय वाली, नृत्यगीत से युक्त, रतिसम्भोगात्मिका, नायक देवी, दूती तथा परिजन इत्यादि से युक्त रहने वाली घटनाओं से पूर्ण नाट्य-रचना को 'नाटिका' समझना चाहिये।

आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द्र ने नाटिका का लक्षण करते हुये नाट्य-दर्पण[2] में लिखा है कि चार अङ्कों वाली अनेक स्त्री-पात्रों वाली, राजा रूप नायक, स्त्री (अथवा पृथ्वी) की प्राप्ति रूप) फल वाली, कल्पित अर्थ प्रधान

---

१. प्रकरणनाटकभेदादुत्पाद्यं वस्तु नायकं नृपतिम्।
अन्तःपुरसङ्गीतक कन्यामधिकृत्य कर्तव्या।। ५८।।
स्त्रीप्राया चतुरङ्का ललिताभिनयात्मिका सुविहिताङ्गी।
बहुनृत्तगीतपाठ्या रतिसम्भोगात्मिका चैव।। ५९।।
राजोपचारयुक्ता प्रसादनक्रोधदम्भ संयुक्ता।
नायकदेवीदूती सपरिजना नाटिका ज्ञेया।। —ना०शा०भाग २, पृ० ४३४

२. चतुरङ्का बहुस्त्रीका नृपेशा स्त्रीमहाफला।
कल्प्यार्था कैशिकीमुख्या पूर्वरूपद्योत्थिता।। ७० ।।
अख्याति-ख्यातितः कन्या-देव्योर्नाटी चतुर्विधा।
अत्र मुख्याकृतो योगः पर्यन्ते नेतुरन्यथा।।७१।।
प्रेमार्द्रो वर्तते न्यस्यां नेता मुख्याभिशङ्कितः।
देवीदत्ता परा मुग्धा समाधर्मा द्वयोः पुनः।।७२ ।।
क्रोध-प्रसाद-प्रत्यूह-रति-च्छद्मादि-भूरिका :।।
—रामचन्द्र गुणचन्द्र, ना०द०, पृ० १२०

कैशिकी, बहुल, पूर्वकथित दोनों रूपकों (नाटक तथा प्रकरण) से उत्पन्न नाटिका होती है।

इस नाटिका में कन्या और देवी दोनों एक साथ नायिकायें होती हैं। इन दोनों की प्रसिद्धि तथा अप्रसिद्धि के कारण (नायिका के) चार भेद हो जाने से नाटिका भी चार प्रकार की होती है। इस नाटिका में अन्त में नायक का मुख्य नायिका के द्वारा अन्य (कन्या) के साथ योग कराया जाना चाहिये।

नायक प्रेमासक्त होकर भी मुख्य नायिका से डरता हुआ अन्य (नायिका) में प्रवृत्त होता है। देवी को चतुरा रूप में और कन्या को मुग्धा रूप में होना चाहिये। दोनों के (कुलमत्वादि)धर्म समान होने चाहिये।

कन्या के प्रति राजा का अनुराग हो जाने पर राजा के प्रति देवी का क्रोध, राजा द्वारा देवी को प्रसन्न करना, देवी द्वारा राजा के कन्या के समागम में विघ्न उपस्थित किया जाना, कन्या और राजा दोनों का परस्पर अनुराग और सबका एक दूसरे को धोखा देकर अपना कार्य सिद्ध करने का प्रयत्न करना तथा शृङ्गार के अङ्गभूत अन्य धर्मों को भी नाटिका में दिखलाना चाहिये।

आचार्य धनंजय कृत दशरूपक के तृतीय प्रकाश में नाटिका का विवेचन मिलता है। उनके अनुसार नाटिका की कथावस्तु प्रकरण से ली जाती है। उसका नायक नाटक से गृहीत प्रख्यात तथा धीरललित राजा होता है। उसका अङ्गी रस शृंगार होता है। स्त्री पात्रों की प्रधानता होती है। चार अङ्क होते हैं। इसके कारण यदि प्रकरणिका को भिन्न माना जायगा तो एक, दो, तीन अङ्कों या पात्रों के भेद से रूपकों के अनन्त भेद हो जायेंगे। इसमें दो नायिका होती हैं। ज्येष्ठा देवी प्रगल्भा प्रकृति की, राजवंशोत्पन्ना गम्भीर

तथा मानिनी होती है । राजा का कनिष्ठा नायिका के साथ सङ्गम उसी के अधीन रहता है । कनिष्ठा नायिका (भी ज्येष्ठा की भाँति ही राजवंशोत्पन्ना होती है लेकिन वह) मुग्धा, दिव्य तथा अत्यधिक मनोहर होती है । अन्तःपुर आदि के सम्बन्ध से वह राजा के श्रुतिपथ तथा दृष्टिपथ में अवतरित होती है । प्रारम्भिक अवस्था में उसका अनुराग नवीन रहता है किन्तु धीरे धीरे वह परिपक्व हो जाता है । नायक सदैव महारानी के भय से शङ्कित रहता है । नाटिका में कैशिकी के चार अङ्ग (नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट, नर्मगर्भ) तथा तदुपयुक्त चार अङ्कों की योजना की जाती है ।[1]

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य-दर्पण [2] में नाटिका का विवेचन करते हुये लिखा है कि नाटिका की कथावस्तु कविकल्पित होती है । स्त्री-

---

१. तत्ववस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृपः ।।४३।।
प्रख्यातो धीरललितः शृङ्गारोऽङ्गी सलक्षणः ।
स्त्रीप्रायचतुरङ्कादिभेदकं यदि चेष्यते ।।४४ ।।
एकद्वित्र्यङ्कपात्रादिभेदेनानन्तरूपता ।
देवीतत्रभवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ।।४५ ।।
गम्भीरा, मानिनी, कृच्छ्रात्तद्वशान्नेतृसङ्गमः ।
नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा ।।४६।।
अन्तःपुरादिसम्बन्धादासन्न श्रुतिदर्शनैः ।
अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम् ।।४७।।
नेता यत्र प्रवर्तेत देवीत्रासेन शङ्कितः ।
कैशिक्यङ्गैश्चतुर्भिश्चयुक्ताङ्कैरिव नाटिका । दशरू०, पृ० ६३१७१

२. नाटिका क्लृप्तवृत्ता स्यात्स्त्रीप्राया चतुरङ्किका ।
प्रख्यातो धीरललितस्तत्र स्यान्नायको नृपः ।।
स्यादन्तःपुरसम्बद्धा सङ्गीतव्यापृताथवा ।

पात्रों की प्रधानता होती है। चार अङ्कों वाली होती है। इसका नायक प्रख्यात तथा धीर ललित राजा होता है। अन्त:पुर से सम्बद्ध सङ्गीत में कुशल नवीन अनुराग वाली, राजवंशोत्पन्न कन्या नायिका होती है। नायक का प्रेम देवी के भय से शङ्कित रहता है। ज्येष्ठा देवी राजवंश में उत्पन्न तथा प्रगल्भा होती है। वह पद पद पर मान करने वाली होती है। नायक और नायिका दोनों का मिलन ज्येष्ठा देवी के अधीन रहता है। इसमें कैशिकी वृत्ति होती है और विमर्श सन्धि अल्प रूप से होती है।

इसीप्रकार सागरनन्दी, शारदातनय आदि विद्वानों ने भी नाटिका के स्वरूप के विषय में अपने अपने मत दिये हैं।

श्रीसागरनन्दी ने नाटक लक्षणरत्नकोश[१] में नाटिका की परिभाषा देते हुये लिखा है कि जिसमें कैशिकी वृत्ति के सभी अङ्ग हों, शृंगार के दोनों (संयोग तथा विप्रलम्भ) पक्षों का निवेश हो, चार अङ्क हों और नाटक के समान हास-परिहास से युक्त घटनायें हों तो उसे नाटिका समझना चाहिये।

---

१. पिछले पृष्ठ का शेष –

संप्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कित:।
देवी भवेत्पुनर्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा।।
पदे पदे मानवती तद्वश: संगमो द्वयो:।
वृत्ति: स्यात्कैशिकी स्वल्पविमर्शा: संधय: पुन:।।
द्वयोर्नायिकानायकयो। यथा-रत्नावली, विद्धशालभंजिकादि:।

सा०द० ६,परि० पृ० नं० २२१

---

१. सभेदा कैशिकी सम्यक्शृङ्गारद्वयमुज्ज्वलम्।
चतुरंक सहासं च नाटकं नाटिकां विदु:।। ३५।।

—ना०ल०र०, पृ० २७०

साहित्य-सार[१] में सर्वेश्वर कवि ने नाटिका के लक्षण का विवेचन करते हुये लिखा है कि उसकी कथावस्तु प्रकरण से ली जाती है और कुछ कुछ नाटक से भी। नायक ललित प्रकृति का प्रख्यात तथा कामभोग में रत रहने वाला होता है। स्त्रियों की बहुलता रहती है। चार अङ्क होते हैं। शृङ्गार रस प्रधान होता है। देवी कुलज्येष्ठा, प्रगल्भा तथा राजवंशोत्पन्ना होती है। कनिष्ठा नायिका का नायक के साथ सङ्गम उसी देवी के अधीन रहता है। (चारों) अङ्गों से समन्वित कैशिकी वृत्ति होती है। यथानुरूप संधि सन्ध्यङ्गों की भी रचना होनी चाहिये।

शारदातनय के भाव-प्रकाशन[२] में भी नाटिका का विवेचन मिलता

---

१. अत्रैव वर्तते सापि नाटिका नाटकोद्भवा ।।१८।।
   तत्र प्रकरणाद्वस्तु नाटकाच्चापि किंचन ।
   नायको ललितः ख्यातः कामभोगैकनिष्ठितः ।।१९ ।।
   स्त्रीप्राया चतुरङ्का च शृङ्गारो रसलक्षणः ।
   देवी तत्र कुलज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ।। २०।।
   तदधीनतया कृच्छ्रादन्यस्या नेतृसङ्गमः ।
   वृत्तिस्तु कैशिकी तत्र पूर्वोक्ताङ्गसमन्विता ।।२१ ।।
   सन्धिसन्ध्यङ्गरचना यथातार्थं विधीयते ।। सा०सा०, पृ० ५६

२. नाटकस्य प्रकरणस्योभयोः सङ्करात्मिका ।
   लक्ष्यते नाटिकाऽप्यत्र सङ्कीर्णान्यनिवृत्ये ।
   प्रख्यातो धीरललितः शृङ्गारो ङ्गी सलक्षणः ।
   नायको धीरललित वृत्तमुत्पाद्यमेव च ।।
   शृङ्गारो ङ्गी रसाः ङ्गानि वीररौद्रादयो मताः ।
   वृत्तिश्च कैशिकी स्वाङ्गैर्नैर्मस्फुञ्जादिभिर्युता ।।
   देव्या प्रधानया नेतुस्तत्सदृश्या च मुग्धया ।
   सङ्करो ऽनुरागोऽपि नवावस्थो भवेत्तयोः ।।

है । उनके अनुसार नाटक तथा प्रकरण दोनों के मिश्रणवाली नाटिका का अन्य सङ्कीर्णों की निवृत्ति के लिये लक्षण किया जाता है । उसका नायक प्रख्यात तथा धीरललित होता है । उसकी कथावस्तु उत्पाद्य होती है । अङ्गीरस श्रृङ्गार होता है । वीर, रौद्र आदि रस अङ्गरूप में होते हैं, नर्म, नर्मस्फोट आदि चारों अङ्गों सहित कैशिकी वृत्ति का प्रयोग होता है । देवी प्रधान होती है और उसी के समान मुग्धा भी होती है । नायक तथा नायिका दोनों का अनुराग आरम्भिक अवस्था में नवीन रहता है । नायक तथा मुग्धा नायिका का समागम देवी के भय से शङ्कायुक्त रहता है । चार सन्धियाँ होती हैं । अवमर्श सन्धि का लोप होता है । विट तथा पीठमर्द कहीं सहायक नहीं होते । विदूषक का प्रयोग होता है । स्त्री पात्रों की बहुलता होती है । देश तथा ऋतु इत्यादि का वर्णन भी सुन्दर रूप से किया जाता है । चार अङ्कों वाले इस रूपक को नाटिका कहते हैं । नाटिका के नाटक तथा प्रकरण के समान होने पर भी उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही उसको विशेष रूप से उदाहृत किया जाता है ।

पिछले पृष्ठ का शेष —

चत्वारः सन्धयो लोपोऽवमर्शस्य भविष्यति ।।
न विटः पीठमर्दश्च सहायौ भवतः क्वचित् ।
नेतुस्स्यान्नर्मसचिवो विरूपस्तु विदूषकः ।।
कैशिक्यन्नाधर्मैस्तदविरोधिभिराश्रितम् ।
स्त्रीप्रायपात्रं देशर्तुवर्णनाकल्पशोभितम् ।
रूपकं चतुरङ्कं यन्नाटिकेत्यभिधीयते ।
अत्रोत्पादितवृत्तत्वाच्छृङ्गारादिरसत्वतः ।
प्रख्यात नृपनेतृत्वात्च दिग्शद्भुषणात्वतः ।
तुल्यत्वं नाटकेनापि तथा प्रकरणेन वा
नाटिकायाः स्मृतं तत्र विशेषोऽयमुदाहृतः ।। भा०प्र०, पृ० २४३

इस प्रकार सभी परवर्ती आचार्यों ने लगभग आचार्य भरत के ही सिद्धान्तों को अपनाया है क्योंकि नाट्य-शास्त्र में आचार्य भरत ने नाटिका के स्वरूप की विस्तृत एवं स्पष्ट व्याख्या की है ।

अध्याय - २

नाटिका-साहित्य एवं उसके स्रष्टा

अतिशय लोकप्रिय होने के कारण नाटिकाओं की विपुल संख्या में रचना हुई होगी, किन्तु उनके स्तर में भी पर्याप्त अन्तर रहा होगा। जो नाटिकायें साहित्यिक एवं उच्च स्तर की रहीं, सहृदय समाज ने उनका अभिनन्दन करके उन्हें कायम रखा और जो सामान्य जन का विनोदमात्र करती थीं, वे धीरे धीरे लुप्त हो गईं। यही कारण है कि नाटिका-साहित्य की विपुलता अब नहीं रही तथा जो सुलभ हैं, वे इस प्रकार हैं -

रत्नावली -

सरस्वती और लक्ष्मी के कृपापात्र नाटिकाकार महाकवि हर्षवर्द्धन संस्कृत-साहित्याकाश के एक ज्वलन्त-नक्षत्र थे। वे थानेश्वर के राजा प्रभाकरवर्धन के पुत्र तथा काशी कन्नौज के सम्राट थे। उनका समय ७ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है[1]।

---

१. 'हर्षचरित' -बाणभट्ट, प्रारम्भ के पाँच उच्छ्वास, काणे संस्करण की भूमिका। सी०वी० वैद्य, 'मेडिवल हिन्दू इण्डिया' भाग प्रथम। दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया' वी० स्मिथ। के०एच० ध्रुव 'प्रियदर्शिका' भूमिका गुजराती संस्करण। 'अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया' वी स्मिथ। 'श्रीहर्ष' पाण्डुरंगा शास्त्री पारिख। 'इतिहास प्रवेश' जयचन्द्र विद्यालंकार, पृ० १८७-१९४६ ई०।

-भारत का इतिहास, डा० ईश्वरी प्रसाद, पृ० १४४, १९५१, प्रयाग

संस्कृत-साहित्य में सर्वप्रथम हर्ष की नाटिकायें उपलब्ध होने के कारण उनको ही सम्भवत: उपरूपकों का जन्मदाता कहा जा सकता है --

'चीनी यात्री इत्सिंग ने ७वीं शती ईसवी में, 'भागवत' की रास-क्रीडा के आधार पर, एक नवीन नाट्यशैली के प्रादुर्भाव का उल्लेख किया है।'[1]

' किंग शिलादित्य(हर्ष) वेरी फाइण्ड स्टोरी आफ बोधिसत्व, हु सरेण्डर्ड हिमसेल्फ इन प्लेस आफ नाग। दिस वर्जन वाज़ सेट् टु म्यूज़िक। ही हैड परफार्म्ड इट बाई बैण्ड कम्पनीज़ बाई डान्सिंग एण्ड ऐक्टिंग।'

संगीत बद्ध, नाट्य-संगीत से युक्त एवं अभिनेताओं द्वारा अभिनीत होने योग्य नाट्यशैली के जन्म के साथ ही साथ नाटिका नामक उपरूपक का भी विकास हुआ। इस प्रकार नाटक के क्षेत्र में सम्राट् हर्षवर्धन ने एक नूतन शैली का सूत्रपात किया। यद्यपि भरत के नाट्य-शास्त्र में नाटिका का उल्लेख तो है किन्तु नाटिकाकार के रूप में सर्वप्रथम हर्ष का ही नाम उल्लेखनीय है।

हर्ष के ऐतिहासिक व्यक्तित्व की दृष्टि से संस्कृत-साहित्य में तीन हर्षों के नाम का उल्लेख मिलता है। १. नैषधीयचरितम् के हर्ष।[2] काश्मीर नरेश हर्ष। ३. प्रभाकरवर्द्धन के पुत्र हर्ष। रत्नावली आदि नाटिकाओं की रचना १० वीं शताब्दी ई० के पूर्व हो जाने के कारण तथा धनंजय, मम्मट आदि के द्वारा उल्लिखित होने से ये तीनों रचनायें प्रभाकर वर्धन के पुत्र हर्ष द्वारा ही विरचित मानी जायेंगी। नैषध के हर्ष तथा काश्मीर

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, पृ० २०३, बनारस

२. 'ए रिकार्ड आफ दि बुद्धिस्टिक रिलीजन' इत्सिंग, पृ० १६३

१६४ तकाकुसु का अनुवाद, आक्सफोर्ड, १८९६।

नरेश हर्ष १२ वीं शताब्दी के हैं। ११२५ ईसवी के काश्मीर नरेश हर्ष को प्रो० विलसन ने एक नये तौर पर रत्नावली का लेखक बताने का प्रयास किया है। किन्तु धनंजय द्वारा रत्नावली के उद्धृत किये जाने के कारण प्रो० विलसन का मन्तव्य निराधार सिद्ध होता है।

हर्ष की नाटिकायें 'रत्नावली और प्रियदर्शिका नाट्य-शास्त्र की दृष्टि से उचित वस्तु-संविधान वाली हैं एवं पूर्णतया अभिनेय भी हैं। रत्नावली तो उनकी कला की कसौटी है। यही कारण है कि परवर्ती आचार्यों ने वस्तु-विन्यास, रसाभिव्यंजन आदि की दृष्टि से उनकी कृतियों का अतिक्रमण करने का दुःस्साहस नहीं किया है।

रत्नावली नाटिका हर्ष की सर्वोत्कृष्ट सर्वत्र समुपलब्ध, सर्वाधिक सफल नाटिका कही जा सकती है -

'श्लिष्टसन्धिबन्धं सत्पात्रसुवर्णयोजितं सुतराम्।
निपुणपरीक्षकदृष्टं राजति रत्नावलीरत्नम्॥' [१]

विद्धशालभंजिका[२] -

'संस्कृत साहित्य में उपरूपक एक अध्ययन (उत्पत्ति विकास, सिद्धान्त और प्रयोग की ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय समीक्षा) आगरा विश्व-विद्यालय, डी०लिट्० उपाधि के लिये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, शोधकर्ता डा० कृष्णा-कान्त त्रिपाठी, एम०ए० (संस्कृत तथा दर्शन शास्त्र) पी०एच०डी० साहित्याचार्य विक्रमाजीत सिंह सनातनधर्म कालेज कानपुर। (उत्तरप्रदेश), १९६७ ई०।

संस्कृत नाटिकाकार के रूप में विद्धशालभंजिका नाटिका के रचयिता राजशेखर का नाम हर्ष के पश्चात् आता है। इनका समय ९०० ई० से ९१७ ई० के आस पास माना गया है।[२] इनका यह समय डा० कोनों द्वारा निश्चित

किया गया है। डा० कोनो ने यह मत मैक्सकुलर, पिशल, आनन्द राम बरुआ, पं० दुर्गाप्रसाद, पीटर्सन, वी०एस० आप्टे और पिशल आदि विद्वानों के मतों का खण्डन करके स्थापित किया है। डा० कोनो का मत अब सर्वमान्य हो गया है। राजशेखर महाराष्ट्र प्रदेश के निवासी और यायावर जाति के क्षत्रिय थे। कविवर अकालजलद के पुत्र दुर्दुक इनके पिता थे। और इनकी माता का नाम शीलवती थी[1]। राजशेखर ने चौहान विदुषी अवन्तिसुन्दरी नाम की कन्या से विवाह कर लिया था। वे कविराज और बालकवि की पदवी से भी विभूषित थे।[2] इसमें उन्होंने अपने को वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ और भवभूति का अवतार बताया है। वे कान्यकुब्जेश्वर प्रतिहार वंशी महेन्द्रपाल के गुरु और सभापण्डित थे।[3] इनकी चार रचनायें उपलब्ध हैं जिनमें से विद्धशालभंजिका नाटिका के रूप में है।

ललितरत्नमाला[4] --

संस्कृत साहित्य में राजशेखर के पश्चात् कवि क्षेमेन्द्र का नाम आता है। उनकी नाटिका ललितरत्नमाला है। वे काश्मीरी कवि एवं आलंकारिक थे। इसका उल्लेख उन्होंने औचित्य विचार चर्चा में किया है। इस नाटिका का एक पद्य भी है औचित्यविचार चर्चा में प्राप्त होता है -

निद्रां न स्पृशति त्यजत्यपि धृतिं धत्ते स्थितिं न क्वचिद्दीर्घां
वेत्ति कथां व्यथां न भजते सर्वात्मना निर्वृतिम्।

---

१. संस्कृत ड्रामा, कीथ, हिन्दी अनुवाद, पृ० २४४, १९६५, बाल रामायण १।६, विद्धशालभंजिका, १।५, कर्पूरमंजरी, १।११।

२. काव्यमीमांसा, पृ० १६।

३. बालरामायण, १।१८, विद्धशालभंजिका, १।६, कर्पूर मंजरी १।५।

४. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, दासगुप्ता, पृ० ४७१

तेनाराध्यता गुणास्तव जपध्यानेन रत्नावली
निःसंगेन परांगनापरिगर्त नामापि नो सह्यते ।[१]

इसमें विदूषक रत्नावली से वियुक्त उदयन की स्थिति के विषयमें सुसंगता से बताता है । दास गुप्ता के अनुसार यह कृति उदयन कथा से सम्बन्धित है ।

कर्णसुन्दरी[२] -

कर्णसुन्दरी नाटिका के रचयिता महाकवि विल्हण कौशिक गोत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले ज्येष्ठ कलश और नागदेवी के पुत्र थे । उनका जन्म खोनमुस (जो कि आजकल काश्मीर में आधुनिक खुनमोह के नाम से विख्यात है) में हुआ था । राजा कलश के राज्यकाल (१०६३ - ८१) में ही उन्होंने अपनी पितृभूमि छोड़ दी और पश्चिमी चालुक्य विक्रमादित्य षष्ठ त्रिलोक्यमल्ल (१०७७- ११२५) के दरबार में रहकर अनेक महान् कार्यों द्वारा विद्यापति की उपाधि धारण कर ली । विल्हणचरित के अनुसार वे अन्हिलपाटक के राजा वैरीसिंह के दरबार में रहते थे । उनकी यह नाटिका पाटननरेश कर्ण त्रिभुवनमल्ल चालुक्य (११ वीं शती० ई०) की प्रशस्ति में लिखी गई है ।[३] इस कृति में कर्णाटक देश के नरेश जयकेशी की दुहिता से त्रिभुवनमल्ल के विवाह का वर्णन है । प्रस्तावना के अनुसार यह कृति ऋषभदेव की यात्रा के महोत्सव में अमात्य सम्पत्कर की प्रेरणा से अभिनीत हुई थी । इस प्रकार कर्णसुन्दरी की रचना

---

१ औचित्य विचार चर्चा, क्षेमेन्द्र, पृ० २६१

२. दि इण्डियन ड्रामा - स्टेन कोनो, व्याख्याकार, डा० एस० एन० घोषाल, पृ० १८० ।

३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६०१, बलदेव उपाध्याय, भूमिका कर्णसुन्दरी, काशीनाथ दुर्गाप्रसाद , पृ० ३ । हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४०१, दासगुप्ता । संस्कृत ड्रामा, कीथ, पृ० २७०, हिन्दी अनुवाद ।

सम्भवत: १०८० से १०६० ई० के बीच हुई होगी ।

वनमाला[१] –

इस नाटिका के निर्माता नाट्य दर्पणकार हेमचन्द्र के शिष्य, कुमार-पाल की राजसभा के विद्वान् रामचन्द्र (१२ वीं शती ई०) हैं । यह कृति अप्राप्त है । नाट्य-दर्पण में प्राप्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि यह कृति नल-दमयन्ती के कथानक पर आधारित थी ।[२]

पारिजातमंजरी[३] –

पारिजात मंजरी के रचयिता मदनपाल सरस्वती धारानरेश अर्जुनवर्मा परमार के गुरु थे । यह नाटिका चार अङ्कों की थी किन्तु इसमें केवल दो अंक धारा स्थित शिलालेख पर उपलब्ध हैं । इस कृति का समय १३ वीं शताब्दी है ।

कुवलयावली[४] –

कुवलयावली जिसे रत्नपांचालिका के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है चार अङ्कों की एक नाटिका है । इसके रचयिता शिङ्गभूपाल हैं जो रिकालवंश के हैं और जिन्होंने रसार्णवसुधाकर की भी रचना की है । महामहोपाध्याय डा०

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ५६५ बलदेव उपाध्याय । हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४७१, दासगुप्ता और डे ।

२. नाट्यदर्पण तृतीय विवेक, पृ० ३१६, दिल्ली विश्वविद्यालय ।

३. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६०२, बलदेव उपाध्याय । संस्कृत ड्रामा, पृ० २७१, कीथ, हिन्दी । हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४६२, दासगुप्ता ।

४. कुवलयावली सिंहभूपाल, संपा० वे०शास्त्री, त्रिवेन्द्रम, सं०ई०, पृ० १

गणपति शास्त्री ने रसार्णवसुधाकर की भूमिका में प्रेसीडेन्सी कालेज के प्रोफेसर स्वर्गीय शेषगिरि शास्त्री के कथन के आधार पर शिङ्गभूप का समीकरण शिङ्गमनायक के साथ किया है और उनका समय १३३० ई० पू० निर्धारित किया है। रसार्णवसुधाकर के ६५ वें पृष्ठ पर लिखे गये 'यथा ममैव उत्फुल्लग० युगम् इत्यादौ' इन शब्दों से यह निश्चित होता है कि रसार्णवसुधाकर और कुवलयावली दोनों एक ही लेखक की रचनायें हैं क्योंकि यही श्लोक कुवलयावली के तृतीय अङ्क के चतुर्थ श्लोक के रूप में विद्यमान है।

डा० एन वेंकटरमानय्या शिङ्गभूप का समय १४ वीं शताब्दी के मध्य निर्धारित करते हैं। श्री शिङ्गभूपाल ने कर्नूल जिले में विन्ध्य पर्वत और श्रीशैल के बीच एक विस्तृत भूभाग में शासन किया था।

चन्द्रकला -

विश्वनाथ कविराज संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं। ऐतिहासिक प्रमाणों तथा अन्य बहिः साक्ष्य और अन्तःसाक्ष्य द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर निश्चय हो जाता है कि विश्वनाथ कविराज का स्थितिकाल ई०सन् पन्द्रहवीं शती का पूर्वार्द्ध (अर्थात् ई० १४०० से १४५० ई०) निर्भ्रान्त रूप से माना जाना उचित है। विश्वनाथ कविराज प्रौढ़ पाण्डित्य एवं कविभाव समन्वित व्यक्तित्व लिये थे। इनकी साहित्यदर्पण ऐसी महत्त्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध रचना है जिससे इनकी कृतियों के नाम आदि का बोध तो होता ही है, साथ ही अनेक महत्त्वपूर्ण अन्य कृतियों का भी पता लगता है। इनकी रचनायें दो विभागों में विभाजित की जा सकती हैं। एक साहित्य-दर्पण के पूर्व निर्मित रचनायें और दूसरी होंगी 'साहित्य-दर्पण' के अनन्तर निर्मित रचनायें।

पूर्व निर्मित रचनाओं में चन्द्रकला (नाटिका) प्रभावती परिणय (नाटिका), कुवलयाश्वचरित (प्राकृत काव्य), प्रशस्तिरत्नावली (करम्भक -

षोडशभाषामयी कृति) राघव विलास (महाकाव्य) तथा कंसवध (काव्य)।

साहित्य दर्पण के पश्चात् इनके द्वारा काव्य-प्रकाश पर दर्पण टीका का निर्माण हुआ। इनकी यह व्याख्या अप्रकाशित है। विश्वनाथ कविराज के पूर्वज कलिङ्गराज्य में अपने पाण्डित्य एवं काव्य विधा के कारण ही महत्वपूर्ण राजकीय पदों पर आसीन थे। विश्वनाथ कविराज के पिता चन्द्रशेखर कवि एवं पण्डित थे। वे अपने पिता के समान कलिङ्गराज्य के प्रतिष्ठित पदाधिकारी थे और पिता के योग्य उत्तराधिकारी भी। चन्द्रकला नाटिका में दिये गये विवरण से इनकी नाट्यवेददीक्षागुरोः उपाधि का पता चलता है। सामान्य उत्कल निवासी ब्राह्मण की तरह ये परम्परागत पंचदेवोपासक स्मार्त थे। इनकी चन्द्रकला नाटिका का साहित्यदर्पण में अनेक बार उल्लेख हुआ है। प्रस्तुत नाटिका का अध्ययन विश्वनाथ कविराज के व्यक्तित्व और विशेषतः उनके स्थितिकाल पर ऐतिहासिक घटनाओं के उल्लेखों के कारण महत्वपूर्ण सामग्री की प्राप्ति करवाता है।

वृषभानुजा [1]

इस नाटिका के प्रणेता मथुरादास गङ्गा के तट पर स्थित सुवर्णशेखर स्थान के कायस्थ थे। राधाकृष्ण के भक्त कवि ने आराध्य के प्रेम से पूर्ण इस कृति का प्रणयन अति सुन्दरता के साथ किया है। लेखक का समय १५ वीं शती ईसवी है।[2]

---

१. संस्करण-वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री नि०सा०प्रे०, बम्बई, १९२७
शिवदत्त और परब नि०सा०प्रे०, बम्बई, १८९५।

२. संस्कृत ड्रामा, पृ० २७१ कीथ, हिन्दी। हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ४६८ दासगुप्ता। संस्कृत साहित्य का इतिहास-बलदेव उपाध्याय।

नाटिका की कथा है - राधा प्रियतम कृष्ण के कर-कमल में दूर से किसी सुन्दरी का आलेख्य देखकर मान करती है किन्तु निरीक्षण करने पर जब चित्र उसी का निकलता है तो दोनों प्रेमी स्नेह के स्थायीभाव रति में निमज्जित दिखाई देते हैं। यद्यपि विल्हण की कर्णसुन्दरी का इस पर स्पष्ट प्रभाव है, तथापि इसकी भाषा एवं शैली विल्हण की कृति से उदात्त और सरल है। पदावली अत्यन्त कोमल है। यथा -

चम्पकलता - आली जनेषु सुतनुः सखि सम्प्रवृत्ते
कर्णं ददाति रतिकेलि कथा प्रसङ्गे।
बाला जनेन पुरतोऽपि विलप्यमाने
लीलाविधौ च पुनरेव ददाति चित्तम्॥

सफल लेखक ने कृष्ण की कोमल एवं सरस लीलाओं के सदृश रमणीय एवं मनोहर शब्दों तथा पदों का चयन सर्वत्र किया है।[1]

मृगाङ्कलेखा[2] -

इस नाटिका के प्रणेता कवि विश्वनाथ का जन्म दाक्षिणात्य में गोदावरी के पवित्र किनारे पर स्थित धारासुर नगरी में हुआ था। इनके

---

१. 'संस्कृत साहित्य में उपरूपक' एक अध्ययन (उत्पत्ति, विकास, सिद्धान्त और प्रयोग की ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय समीक्षा), आगरा विश्वविद्यालय डी०लिट्०उपाधि के लिये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, शोधकर्ता, डा० कृष्णकान्त त्रिपाठी, एम०ए०(संस्कृत तथा दर्शनशास्त्र)पी०एच०डी०, साहित्याचार्य विक्रमाजीतसिंह सनातनधर्म कालेज, कानपुर(उत्तरप्रदेश), १९६७ ई०।

२. उपोद्घात, मृगाङ्कलेखा, पृ० १ रिवर्स।
—हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४७२, दासगुप्ता।

पिता श्रीत्रमल्लदेव जी थे। इनका निवास-स्थान वाराणसी था।

इनका समय विक्रम संवत् की १७ वीं शताब्दी है। मृगाङ्कलेखा नाटिका में स्वयं उन्होंने संवत् १६६४ ऐसा समय निर्दिष्ट किया है।[1]

न्यायसार प्रणेता माधवदेव के भी धारा सुरनगरी में जन्म लेने के कारण तथा नामसादृश्य के कारण प्रकृत नाटिका के प्रणेता विश्वनाथ के वंशोद्भव के विषय में भी निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है।

इससे अधिक विश्वनाथ जी के विषय में कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। प्रकृत नाटिका में विश्वनाथ जी का कविता-लालित्य प्रशंसनीय है।

कमलिनीकलहंस[2]--

इस कृति के स्रष्टा दक्षिणभारतीय सत्यमङ्गलरत्नखेट श्रीनिवासाध्वरि के पुत्र, राज चूड़ामणि दीक्षित हैं। लेखक तंजौर नरेश रघुनाथ नायक (१७ वीं शती ई) के आश्रित था।[3]

चार अङ्कों की इस कृति का कथानक विद्धशालभंजिका का पूर्णतया अनुकरण करता है। स्वप्न, चित्रदर्शन से ही प्रणयोत्पत्ति, नायिका की प्रतिभा, ईर्ष्यालु रानी के द्वारा, राजा का विवाह एक छद्मवेषधारी बालक के साथ करा देने का प्रयत्न बालक का अकस्मात् नायिका में परिवर्तन और अन्त में रानी की भगिनी के रूप में नायिका का प्रकाश में आना केवल यही

---

१. उपोद्घात, मृगाङ्कलेखा पृ० १, विस्त।

२. संस्करण-टी०एस० कुप्पुस्वामी शास्त्री, वानीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम्, १६१७

३. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४७२, दासगुप्ता।

परम्परागत कथानक ,आकर्षक किन्तु मौलिकता और विचित्रता से शून्य इसमें गृहीत है कृति का कोई विशेष महत्त्व नहीं है ।[१]

नवमालिका[२] -

नवमालिका नाटिका के रचयिता विश्वेश्वर पाण्डेय अल्मोड़ा जिले के पण्डित परिवार का प्रतिनिधित्व करने वाले लक्ष्मीधर के पुत्र थे । वर्तमान काल में वहाँ पर उनकी नवीं पीढ़ी के बच्चे निवास कर रहे हैं । इनका समय १८ वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है । वे बहुत बड़े साहित्यकार थे और उन्होंने दस वर्ष की अवस्था में ही लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया था । ऐसे ज्ञाता व्यक्ति दीर्घायु माने जाते हैं किन्तु चौंतीस वर्ष की आयु में ही उनका देहावसान हो गया । उनकी अनेक रचनायें हैं - अलङ्कार कौस्तुभ, अलङ्कार कर्णाभरण, अलङ्कार-मुक्तावली, काव्यलीला, काव्य रत्न, रसचन्द्रिका, मन्दारमंजरी और आलोचनायें भानुदत्त, रसमंजरी और नैषधीमचरितम् हैं । उनका नाटक है - रुक्मिणीपरिणय, (नाटकम) । `शृंगार-मंजरी` सट्टक है और नवमालिकानाटिका है । संस्कृत व्याकरण में उन्होंने अष्टाध्यायी पर एक ज्ञानसागर सम्बन्धी रचना लिखी, वह है -`वैयाकरण सिद्धान्तसुधानिधि`

---

१. `संस्कृत साहित्य में उपरूपक` एक अध्ययन (उत्पत्ति विकास, सिद्धान्त और प्रयोग की ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय समीक्षा । आगरा विश्वविद्यालय, डी०लिट्० उपाधि के लिये प्रस्तुत शोध प्रबन्ध ,शोधकर्ता डा० कृष्णाकान्त त्रिपाठी एम०ए० (संस्कृत तथा दर्शन शास्त्र) पी०एच०डी०, साहित्याचार्य विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कालेज कानपुर (उत्तर प्रदेश) , १७१ ई० ।

२. उपोद्घात,नवमालिका, पृ० १, बाबूलाल शुक्ल ।

नाटिकाकार विश्वेश्वर को २० रचनाओं के लिखने का श्रेय प्राप्त है ।

मलयजाकल्याणम्[1] —

नाटिका की प्रस्तावना के आधार पर मलयजाकल्याणम् नाटिका के रचयिता श्रीवीरराघव हैं । इनका समय १७७० ई० (१८ वीं शती ई०) का था । इनका जन्म दाशरथि वंश में हुआ था और वाधुल गोत्र था । इनकी जन्मभूमि भूसुरपुर (तिरुमलैवाड) थी[2] परन्तु महावीरचरित की व्याख्या की पुष्पिका के अनुसार ये मैसूर निवासी भी प्रतीत होते हैं ।[3] इनके पिता का नाम नरसिंह सूरि था । उत्तररामचरित की भवभूतिभावतलस्पर्शिनी टीका, महावीरचरित की भावप्रद्योतिनी टीका तथा मलयजाकल्याणम् नाटिका इनकी ये तीन रचनायें हैं । इसके अतिरिक्त इन्होंने भक्ति सारोदय काव्य तथा कुछ दार्शनिक ग्रन्थों की भी रचना की है । इनके एकमात्र सन्तति पुत्री होने से दौहित्र को उत्तराधिकार मिला । पुत्री के वंश के श्री आर० नरसिंहाचार्य भूसुरपुर में निर्मित इन्हीं के भवन में रहते थे । उनके संग्रह में वीरराघव की अन्य कोई रचना उपलब्ध नहीं होती ।

मणिमाला[4] —

इसके रचयिता अनादिमिश्र भारद्वाज गोत्र में उत्पन्न औत्कल ब्राह्मण थे । इनके आश्रयदाता नारायण भृङ्गराज ने सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध

---

१. द्रष्टव्य - आमुख, मलयजाकल्याणम्, पृ० १, बाबूलाल शुक्ल ।

२. द्रष्टव्य - जर्नल आफ दी आन्ध्र साहित्य प्रसा० परिषद पत्रिका, पृ० ८१

३. यो महीसारवास्तव्यो वाधुलो वीरराघवः ।
~~सागरिका त्रैमासिकी, चतुर्दशवर्षे तृतीयोऽङ्कः, प्रकाशकः सागरि~~
स महावीरचरितं सप्ताङ्कं व्यरीरचत् ।।
-- महा०चरि०नि०सा०संस्क०, पृ०२२५

४ सागरिका त्रैमासिकी, चतुर्दशवर्षे तृतीयोऽङ्कः, प्रकाशकः सागरिका समिति

और अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पुरीजनपद के खण्डआरोपनगर में शासन किया । यह नाटिका ताड़पत्र पर अङ्कित है । पृष्ठों की संख्या १०२ है । १५" x १२" लम्बाई चौड़ाई है । उड़िया लिपि में है । वीरकेसरी देव प्रथम के ५१ वें वर्ष अथवा १७७६ ई० में इसकी प्रतिलिपि तैयार हुई । नाटिका पूर्ण है और अच्छी स्थिति है । प्राप्तिस्थान वेगुनिया और जनपद पुरी है ।[१]

इस नाटिका में उज्जयिनी के राजा शृङ्गार शृङ्ग का पुष्करद्वीप के राजा विजयविक्रम की कन्या मणिमाला के साथ विवाह का वर्णन है ।

राजा शृङ्गारशृङ्ग और मणिमाला स्वप्न में परस्पर देखकर आसक्त हो जाते हैं । अद्भुतभूति नाम का कोई योगी उन दोनों के प्रणय को योग के बल से जानकर राजा के पास आकर बताता है - देव ! मणिमाला में तीनों लोकों की साम्राज्ञी के लक्षण हैं । उसको प्राप्त करने के लिये आप भगवती दुर्गा की आराधना करें और आप अपना चित्र मणिमाला के लिए पुष्करद्वीप भेजें ।

योगी के मत का अनुसरण करके राजा भगवती दुर्गा की आराधना करते हैं । आराधना से प्रसन्न दुर्गा राजा को पारिजात माला देती हैं । उस माला को लेकर राजा का मित्र चित्रचरित उज्जयिनी से पुष्करद्वीप जाता है ।

शृङ्गारशृङ्ग की महिषी प्रतिप्रिया राजा की मणिमाला के प्रति आसक्ति के विषय में सुनकर उन पर क्रोधित होती है । राजा निवेदित करता है कि 'मणिमाला को मैंने स्वप्न में देखा । मणिमाला को प्राप्त

----

१. मुक्तावली - सिंहभूपाल, संपादक - वेपशास्त्र निपुनाव, एस० रा‌घवनी, त्रिवेन्द्रम, संस्कृत सीरीज़, भूमिका, पृ० १ ।

करने में समर्थ हो सकूँगा। उसके लिये मैं जगन्माता दुर्गा की कृपा प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हूँ। इस प्रकार के समाचार से प्रसन्न महिषी प्रतिप्रिया स्वयं भी दुर्गापूजा के लिये उद्यत हो गई। राजा भी दुर्गा की प्रसन्नता के लिए मन्दिर में जाते हैं।

पुष्करद्वीप के राजा विजयविक्रम मणिमाला को गन्धर्वराज को देने का निश्चय करते हैं। बान्धवों के आग्रह से मणिमाला विवाह से पूर्व नगर-देवता की अर्चना के लिये जाती है। वहाँ दोलाविहार भी करती है और अन्त:पुर को लौटकर विचित्र चातुरी (शिल्पिनी) से कहती है - 'मैं एक सुन्दर पुरुष स्वप्न में देखकर उसके प्रति आसक्त मतवाली हो गई हूँ।

प्रसन्न दुर्गा के लिये नियुक्त योगिनी सुसिद्धिसाधिनी मणिमाला के मन में शृंगारशृंगराजा के प्रति विलोभन उत्पन्न करती हुई कहती है - 'इस प्रकार के एक चित्र को कोई शिल्पिनी आपको उपहार रूप में देने के लिये द्वार पर प्रतीक्षा करती हुई खड़ी है।' तब मणिमाला की आज्ञा प्राप्त करके विचित्र चातुरी शिल्पिनी का वेष धारण किये हुये राजा के मित्र चित्रचरित को प्रवेश कराती है। चित्रचरित मणिमाला से कहता है - 'मैं जम्बूद्वीप के राजा शृङ्गारशृङ्ग की शिल्पिनी हूँ। यह चित्र भी उसी राजा का है।' तब मणिमाला से विचित्र चातुरी कहती है - 'चित्रगत यह राजा भी स्वप्न में आपको देखकर आपकी प्राप्ति के लिये ही चिन्तित रहा करते हैं।'

गन्धर्वराज के साथ विवाह की तिथि अति निकट जानकर मणि-माला इस शङ्का से कि 'मेरे मनोरथ का आघात होगा' वह अत्यन्त चिंतित रहने लगी। सुसिद्धिसाधिनी उसके पास जाकर मणिमाला को आश्वासन देती है। वह सखी के साथ मणिमाला को गगनगामिनी कनकमयी उज्जयिनी नौका देकर कहती है - 'इस पर चढ़कर अविलम्ब उज्जयिनी जाओ। मैं आगे जाकर तुम्हारे आगमन के लिये राजा को निवेदित करती हूँ।'

मणिमाला सुसिद्धिसाधिनी के कथनानुसार सखी विचित्रचातुरी और चित्रचरित के साथ कनकमयी नौका पर चढ़कर गगन के मार्ग से उज्जयिनी जाती है।

उज्जयिनी की ओर जाती हुई सुसिद्धिसाधिनी की मार्ग में घर्घरघण्टा नाम की योगिनी के साथ मित्रता हो जाती है। तब सुसिद्धिसाधिनी घर्घरघण्टा से मणिमाला और राजा के प्रणय के विषय में बताती है। वहीं पर नारद जाकर दोनों योगिनी से मणिमाला का भविष्य बताता है - `राक्षस कन्दर्पदृष्ट्र मणिमाला का हर्ता है और राजा शृङ्गारशृङ्ग के पास जाकर निवेदित करती हैं - मणिमाला गगनचारिणी कनकनौका से उज्जयिनी आ रही है और मणिमाला वरमाला राजा को समर्पित करके उसको पति रूप में वरण करेगी।

क्रौंचपर्वतनिवासी कन्दर्पदृष्ट्र नामक राक्षस अपनी भगिनी प्रचण्ड की सहायता से अज्ञात रूप से मणिमाला का अपहरण करता है। राजा शृङ्गारशृङ्ग योगिनी के कथनानुसार प्रमदवन में उसकी खोज करता है। उसको प्राप्त न करने पर निराश होकर मूर्च्छित हो जाता है। उसका मित्र चित्रचरित भी मूर्छित हो जाता है। तब योगिनी सुसिद्धिसाधिनी उन दोनों को मन्त्रजाल में संज्ञाप्राप्त करा देती है।

तब सुसिद्धिसाधिनी राजा से कहती है - कन्दर्पदृष्ट्र राक्षस की आज्ञा से उसकी बहन प्रचण्डा मणिमाला का निगरण करके अपने निवास स्थान पर चली गई। मैं अद्भुतभूत के वचनानुसार क्रौंच पर्वत पर जाकर राक्षसी के पेटको चीर कर मणिमाला को उसके पेट से निकालकर अमृतसंजीविनी से उसे जब तक जीवितकर रही थी उसी समय कन्दर्पदृष्ट्र मुझे मारने के लिये दौड़ा। मैंने मणिमाला को घर्घरघण्टा को रक्षा के लिये समर्पित कर दिया। उसी समय अद्भुतभूति ने राक्षस को युद्ध के लिये आमन्त्रित किया। अद्भुतभूति ने उसे नागपाश से, बाँध दिया। परन्तु वह राक्षस मृत्यु को नहीं प्राप्त हुआ।`

अद्भुतभुति ने राजा को निवेदित किया - क्रौंच पर्वत के मध्य में एक स्वर्णवृक्ष में कीटनृपति रहता है जो रात-दिन राक्षस इन्द्रद्रष्टु में प्राण को संचारित करता रहता है। उस कीट नृपति का वध हो जाने पर राक्षस स्वयं ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। परन्तु उस कीटनृपति को वही मार सकता है जिसके नाम में शृङ्ग यह दो अक्षर हो। इस प्रकार के आप ही हैं। अतः वह कीटनृपति आपके द्वारा मारा जाना चाहिए।

राजा शृङ्गारशृङ्ग विदूषक, विचित्रचातुरी, चित्रचरित, सुसिद्धि-साधिनी और अद्भुतभुति के साथ क्रौंच पर्वत पर जाता है। वहाँ अद्भुतभुति के द्वारा प्रदत्त खड्ग से राजा शृङ्गारशृङ्ग कीटनृपति का वध कर देता है। कीट-नृपति के साथ ही इन्द्रद्रष्टु भी मर जाता है। तब राजा मणिमाला को देख कर अत्यन्त प्रसन्न होता है। देवाङ्गनायें मणिमाला को राजा के लिये सम-र्पित करती हैं। इन्द्र राजा का त्रिभुवनाधिपति के रूप में अभिषेक करते हैं। तब शृङ्गारशृङ्ग क्रौंच पर्वत से इन्द्र द्वारा प्रदत्त रथ पर चढ़कर मणिमाला और अन्य सबके साथ उज्जयिनी आता है। राजा की महिषी पतिप्रिया मणिमाला को भगिनीरूप में स्वीकार करती है। मणिमाला का राजा के साथ विवाह भी कर देती है।

मणिमाला नाटिका में चार अङ्क हैं। वर्णन बाहुल्य और पात्र-बाहुल्य के कारण कथाप्रवाह में कहीं कहीं शिथिलता है। यह नाटिका अप्रकाशित है। भुवनेश्वर के `उड़ीसाराजकीयसंग्रहालय' में इसकी एक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है।

श्रीकृष्ण लीला[१]—

इस कृति के रचयिता कवि वैद्यनाथ हैं। वैद्यनाथ तत्सत् नाम के

---

१. सागरिका त्रैमासिकी, चतुर्दश वर्ष, तृतीयो ङ्कः, प्रकाशक: सागरिका

ब्राह्मण कुल में वाराणसी में हुए थे। इनकी माता का नाम तारकादेवी और पिता का नाम श्रीरामभट्ट था।

यह नाटिका महाजनक के आदेश से शरद् ऋतु में कमलालय यात्रा महोत्सव के समय सर्वप्रथम अभिनीत हुई। इस नाटिका में राधाकृष्ण का परिणय वर्णित है। इसी में श्रीकृष्ण के मित्र विजयनन्दन की भी चन्द्रप्रभा के साथ विवाह वर्णित है।

यह नाटिका अप्रकाशित है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति कलकत्ता संस्कृत कालेज, में समुपलब्ध है।

<u>शिवनारायणभंजमहोदय नाटिका</u>[१]-

इसके रचयिता नरसिंहमिश्र उत्कल में रहते थे। नरसिंहमिश्र को उत्कल प्रदेश के मयूरभंज के निकट केओंझर राजा बलभद्रभंज (१६६४-६२ ई०) का आश्रय प्राप्त था।

इस नाटिका में केओंझर राजा के लिये शिवनारायनभंज के उपदेशों का वर्णन है। यह नाटिका उत्कल प्रदेश में पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथपुरी) में वसन्त-ऋतु में सर्वप्रथम अभिनीत हुई।

इस नाटिका में पाँच अंक हैं। नाट्य नियमानुसार इसे नाटिका में नहीं अपितु नाटक होना चाहिये। इसकी एक हस्तलिखित प्रति उत्कल प्रदेश के पुरी जनपद में स्थित दामोदरपुर में पण्डित गोपीनाथ मिश्र के पास है।

---

१. सागरिका त्रैमासिकी, चतुर्दशवर्षे तृतीयो ऽङ्कः, प्रकाशकः, सागरिका समिति, सागरविश्वविद्यालय सागरम् (म०प्र०) पृ० ३१६

कतिपय उल्लिखित नाटिकाएँ –

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र ने नाट्यदर्पण में अनङ्गवती, इन्दुलेखा और कौशलिका नाटिकाओं का उल्लेख किया है, जिनके लेखक का नाम भवलनुचूड़ा भट्ट था।[१] ये कृतियाँ अप्राप्त हैं।

रामचन्द्र की वासन्तिका नाटिका तथा विश्वनाथ भट्ट की शृंगारवाटिका नाटिका अप्रकाशित हैं। इनका उल्लेख एगलिंग कैटलाग आफ इण्डिया आफिस मैन्युस्क्रिप्ट्स, ७।४।१८६, पृ० १६०० तथा ७। ४१६६, पृ० १६१५ में क्रमशः है।[२]

मद्रास विश्वविद्यालय में संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० राघवन् ने, भागवत पर आधारित 'रासलीला' संगीत नाटिका तथा कुमारसम्भव पर आधारित 'कामशुद्धि' नाटिका, आकाशवाणी रूपक के रूप में लिखी हैं।[३]

रसार्णवसुधाकर (१४ वीं शती) ने मालविकाग्निमित्र को भी नाटिका के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है।

---

१. हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४७१ दासगुप्ता।

२. 'संस्कृत साहित्य में 'उपरूपक' एक अध्ययन (उत्पत्ति विकास, सिद्धान्त और प्रयोग की ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय समीक्षा), आगरा विश्वविद्यालय डी०लिट्० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, शोधकर्ता डा० कृष्णाकान्त त्रिपाठी, एम०ए० (संस्कृत तथा दर्शन शास्त्र) पी०एच०डी० साहित्याचार्य विक्रमजीत सिंह, सनातन धर्म कालेज, कानपुर (उत्तर प्रदेश), १९६७ ई०।

३. संस्कृत साहित्य में उपरूपकें एक अध्ययन(उत्पत्ति विकास, सिद्धान्त और प्रयोग की ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय समीक्षा), आगरा विश्व०डी०लिट्० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध, शोधकर्ता डा० कृष्णाकान्त त्रिपाठी एम०ए०(संस्कृत तथा दर्शनशास्त्र) पी०एच०डी० साहित्याचार्य विक्रमजीत सिंह, सनातन धर्म कालेज, कानपुर

कमलिनी कलहंसी नाटिका ताड़पत्र पर अङि्कत है। ३६ पृष्ठों की है। प्रत्येक पृष्ठ का आकार १३½" x १½" की है। लिपि उड़िया है। समय नहीं दिया गया है। नाटिका अच्छी स्थिति में और पूर्ण है। प्राप्ति स्थान पुरी और उड़ीसा है। इसके रचयिता श्री राजमणि हैं।

श्रीकृष्ण भक्तवत्सल्य नाटिका ३० पृष्ठों की है। इसके रचयिता श्री रामचन्द्र गणपति हैं। १३½ x १½" लम्बी चौड़ी है, नाटिका अपूर्ण और प्राप्ति स्थान पुरी जनपद है।[१]

इस प्रकार संस्कृत नाटिका-साहित्य, यद्यपि एक विशाल साहित्य है किन्तु मौलिकता और विचित्रता से शून्य होने के कारण उसका विशेष महत्वनहीं रह गया।

----

१. डिस्क्रिप्टिव केटलाग आफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स आफ उड़ीसा, वाल्यूम II उड़ीसा, साहित्य एकेडेमी, भुवनेश्वर।

अध्याय -- ३

'कथानक - विवेचन'

नाटिका साहित्य संस्कृत साहित्य में उपलब्ध एक सफल साहित्य है। शास्त्रीय दृष्टि से नाटिका का नायक प्रख्यात किन्तु कथानक कवि कल्पित होता है। आचार्य भरत तथा दशरूपककार के मतानुसार नाटिका का लक्षण नाटक व प्रकरण के लक्षणों के सह्०कर-मिश्रण से ही सिद्ध हो जाता है[१]। किन्तु नाटिका का कथानक विशेष प्रकार का होने के कारण उसका अलग से लक्षण किया गया है। संस्कृत नाटिकाओं के कथानक क्रमश: इसप्रकार हैं :--

रत्नावली

कथानक -

प्रथम अंक- अवन्तिनरेश चण्डप्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता कौशाम्बी के राजा उदयन की राजमहिषी थीं। वासवदत्ता के मामा विक्रमबाहु की कन्या

---

१. प्रकरणनाटक भेदादुत्पाद्यं वस्तुनायकं नृपतिम्। ना०शा०,भरत।
'तत्रवस्तु प्रकरणान्नाटकान्नायको नृप: ।। ४३। तृ०प्र०दश०।

२. 'हर्षचरित- बाणभट्ट, प्रारम्भ के पाँच उच्छ्वास काणे संस्करण की भूमिका सी०वी०वैद्य-मेडिवल हिन्दू इण्डिया,भाग प्रथम। 'दि आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया, वी०स्मिथ। के०एच० ध्रुव 'प्रियदर्शिका' भूमिका गुजराती संस्करण। हिस्ट्री आफ इण्डिया' वी०स्मिथ। 'श्रीहर्ष' पांडुरंग शास्त्री

रत्नावली थी । राजा उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण ने ज्योतिषियों से सुना था कि राजा के सार्वभौमपति होने के लिये रत्नावली से विवाह होना आवश्यक है । यौगन्धरायण ने अपने दूत को इस हेतु भेजा किन्तु विक्रमबाहु ने सपत्नी कष्ट का ध्यान रखते हुये इस सम्बन्ध को स्वीकार नहीं किया । यौगन्धरायण ने वासवदत्ता के लावाणक ग्राम में जलकर मर जाने की अफवाह फैला दी । विक्रमबाहु ने अपने मन्त्री बाभ्रव्य और वसुभूति के साथ रत्नावली को कौशाम्बी भेजा । समुद्र में पोतभङ्ग हो गया । दैव की अनुकूलतावश रत्नावली एक सामुद्रिक व्यापारी द्वारा कौशाम्बी पहुँचा दी जाती है । राजा उदयन का मन्त्री यौगन्धरायण उसके संरक्षण हेतु उसे राजा की आज्ञा से उसके अन्त:पुर में रख देता है । वसन्तोत्सव पर वासवदत्ता द्वारा कामदेव रूप राजा उदयन की पूजा को छिपकर देखती हुई रत्नावली उदयन के प्रणय पाश में बँध जाती है ।

द्वितीय अङ्क—

सागरिका अपने चित्त विनोद के लिये राजा उदयन का चित्र अंकित करती है इतने में उसकी सखी सुसङ्गता भी आ जाती है । वह सागरिका द्वारा चित्रित राजा उदयन के चित्र को देखकर उसके पास सागरिका का चित्र अङ्कित कर देती है । सागरिका सुसङ्गता से राजा उदयन के प्रति अपनी आसक्ति को स्वीकार कर लेती है । इस प्रकार कामासक्त सागरिका का अपनी सखी से वार्तालाप होता रहा है । मेधाविनी सारिका दोनों के कामवार्तालाप को सुनती रहती है । इसी बीच अश्वशाला से छूटा बन्दर उत्पात करता है । वे दोनों भी भयभीत होकर भागती हैं । बन्दर सागरिका द्वारा रक्षित सारिका के पिंजरे को खोल देता है । मेधाविनी सागरिका से राजा और विदूषक सागरिका और सुसङ्गता के प्रणयालाप को सुनते हैं । साथ ही चित्रपट को भी प्राप्त करते हैं । सागरिका एवं सुसङ्गता चित्रपट लेने हेतु राजा के पास आती हैं और राजा तथा विदूषक के पारस्परिक वार्तालाप को सुनती है । सुसङ्गता

राजा का मिलन सागरिका से कराती है। इसी बीच वासवदत्ता अनभ्रवृष्टि की भाँति आकर चित्रपट को देख लेती है और मूक क्रोध को प्रकट करके चली जाती है। राजा उसको प्रसन्न करने का निष्फल प्रयास करता है।

तृतीय अंक – तृतीय अंक को रत्नावली का गर्भाङ्क माना जाता है। इसमें विदूषक राजा और सागरिका के मिलन की योजना बनाता है। वासवदत्ता के वेष में सागरिका और कांचनमाला के वेष में सुसंगता राजा उदयन से मिलने आती है। इसके पहले ही वासवदत्ता को यह रहस्य ज्ञात हो जाता है और वह प्रणय,स्थल पर पहले ही पहुँच जाती है। राजा वासवदत्ता से क्षमा माँगता है किन्तु वासवदत्ता उसको ठुकरा देती है। सागरिका प्रणय-स्थल पर विलम्ब से पहुँचती है अत: राजा द्वारा सागरिका के लिये किये जाने वाले प्रणय निवेदन को वासवदत्ता पहले से ही सुन लेती है। सागरिका राजा की दशा को देखकर अत्यन्त दु:खी होकर आत्महत्या करना चाहती है किन्तु विदूषक और राजा उसकी रक्षा करते हैं। राजा अभी भी सागरिका को वासवदत्ता ही समझते हैं किन्तु जब उनको यथार्थता का ज्ञान होता है तो वे फिर अत्यन्त शोकित हो उठते हैं। इसी बीच वासवदत्ता अपने क्रोध पर लज्जित होकर पुन: राजा के पास आती है किन्तु सागरिका और राजा दोनों के प्रेम मिलन को देखकर क्रोधित होकर सागरिका और विदूषक दोनों को बन्दी बनाकर ले जाती हैं।

चतुर्थ अङ्क – इस अङ्क में विदूषक को मुक्त कर दिया जाता है। राजा को रत्नमाला की प्राप्ति होती है। सागरिका भूगर्भ कारागार में रहती है। इस प्रकार सागरिका विषयक अफ़वाह उड़ा दी जाती है। राजा उसकी सहायता नहीं कर सकता। इसी बीच रुमण्वान् द्वारा कोसल विजय की ~~वर्णन है।~~ सूचना दी जाती है। ऐन्द्रजालिक इन्द्रजाल का दृश्य दिखाता है। पोतभङ्ग से बचे वसुभूति और बाभ्रव्य राजसभा में आते हैं। अन्त:पुर से अग्नि-दाह का समाचार आता है। रानी राजा से सागरिका की सुरक्षा के लिये

निवेदन करती है । राजा दौड़कर सागरिका के जीवन की रक्षा करता है । दोनों मंत्री वसुभूति और बाभ्रव्य सागरिका को पहचान लेते हैं । यौगन्धरायण इन्द्रजाल के विषय में बताता है । अन्त में रानी वासवदत्ता सागरिका का विवाह राजा उदयन के सार्वभौम होने के लिये राजा से ही करा देती है । भरत-वाक्य के साथ नाटिका का समापन हो जाता है । इस नाटिका का अभिनय मदनमहोत्सव के अवसर पर हुआ था ।

रत्नावली की कथावस्तु का मूल स्रोत -

संस्कृत के नाटककारों ने अपने नाटकों की कथावस्तु प्राय: प्राचीन लोक कथाओं अथवा प्राचीन आख्यानों से ली है । गुणाढ्य की बृहत्कथा प्राचीन आख्यानों का सबसे बड़ा संग्रह था जो कि अब उपलब्ध नहीं है । बृहत्कथा के तीन संस्करण उपलब्ध हैं - १. सोमदेव का कथासरित्सागर, २. क्षेमेन्द्र की बृहत्कथामंजरी , ३. बुद्धस्वामी का बृहत्कथा का विस्तृत संस्करण है । रत्नावली नाटिका की कथावस्तु के स्रोत के विषय में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता । भारतीय साहित्य के अनेक क्षेत्रों में पाली बौद्ध साहित्य से ईसा की तेरहवीं शताब्दी तक उदयन कथा की चर्चा रही है । कौटिल्य का अर्थशास्त्र, पतंजलि का महाभाष्य, भास का प्रतिज्ञायौगन्धरायण और स्वप्नवासवदत्त, अनडु०गहर्ष मात्रराज का तापसवत्सराजचरित, शूद्रक का मृच्छकटिक "उज्जयामि सुहृद: परिमोक्षणाय यौगन्धरायण इवोदनस्य राज्ञ: " ४।२६, कालिदास का मेघदूत " प्राप्यावन्तीनुदयन कथा कोविदग्राम वृद्धानु० " १।३० , भवभूति का मालतीमाधव "वासवदत्ता च राज्ञे संजयाय पित्रादत्तमात्मानमुदयनाय प्रायच्छत " २. अडु०क, आदि ग्रन्थ उदयन-कथा की पर्याप्त प्रख्याति के कारण हैं । अत: यह सम्भव है कि हर्ष को मूल बृहत्कथा उपलब्ध रही हो और रत्नावली की मूलकथावस्तु सीधे बृहत्कथा से ली गई हो और साथ ही

यह भी सम्भव है कि हर्ष ने रत्नावली की कथावस्तु अपने समय में प्रचलित किसी लोक कथा से ली हो ।

सोमदेव के कथासरित्सागर के आधार बृहत्कथागत उदयन की कथा से रत्नावली की कथावस्तु की तुलना करने पर यह ज्ञात हो जाता है कि आख्यान (मूल स्रोत) की घटनाओं को हर्ष ने रत्नावली में कितनी चतुरता से उपयोग किया है ।

आख्यान में किये गये परिवर्तन -

हर्ष की रत्नावली की कथावस्तु में कुछ परिवर्तन हर्ष की नूतन कल्पनायें हैं और कुछ परिवर्तनों में मूल आख्यान की घटनाओं का भिन्न परिस्थितियों से सम्बन्ध जोड़ दिया गया है । आख्यान में पद्मावती का उदयन के साथ विवाह का कारण मगधनरेश को मित्र बनाने की चिन्ता है और यह विवाह मन्त्रियों की सलाह से होता है । जबकि रत्नावली में रत्नावली के साथ उदयन का विवाह सिद्ध के इस वचन पर होता है कि जो रत्नावली से विवाह करेगा वह चक्रवर्ती राजा होगा । आख्यान में वासवदत्ता की सपत्नी प्रभावती मगध की राजपुत्री है जबकि रत्नावली में उसकी नायिका सिंहलनरेश विक्रमबाहु की कन्या है । आख्यान में पद्मावती को प्रद्योत की और वासवदत्ता को चण्डमहासेन की पुत्री कहा गया है, रत्नावली में वासवदत्ता को प्रद्योत की पुत्री कहा गया है । आख्यान में वासवदत्ता पद्मावती के अन्तःपुर में छद्मवेश में रहती है, रत्नावली में रत्नावली सागरिका नाम से छद्म रूप में वासवदत्ता के साथ कौशाम्बी में रहती है । आख्यान में लावाणक में वासवदत्ता के अग्नि-दाह के प्रवाद से पद्मावती से उदयन का विवाह हो जाता है । रत्नावली में रत्नावली से उदयन का विवाह हो जाता है । आख्यान में पद्मावती से विवाह के प्रति उदयन को कोई उत्सुकता नहीं है, जबकि रत्नावली में रत्नावली के प्रति उदयन की रूप-लोलुपता प्रकट की गई है । आख्यान

में बन्धुमती के प्रति राजा की जो अनुराग भावना वर्णित की गई है उसे रत्नावली में सागरिका के रूप में रखी गई रत्नावली के साथ जोड़ दिया गया है। आख्यान में वर्णित बन्धुमती और पद्मावती का मिला जुला रूप रत्नावली की नायिका रत्नावली है। आख्यान में बन्धुमती के प्रति राजा के प्रेम को देखकर वासवदत्ता जब कुपित होती है तब परिव्राजिका साङ्०कृत्यायनी के बीच में पड़ने पर उसका क्रोध शान्त हो जाता है और वह बन्धुमती तथा वसन्तक को बन्धन से मुक्त करके बन्धुमती को राजा को दे देती है जबकि रत्नावली में वासवदत्ता का कोप थोड़ी देर रोदन के बाद स्वत: शान्त हो जाता है और जब उसे यह पता लगता है कि सागरिका उसकी बहन है तभी वह वसन्तक को बन्धन से मुक्त करती है। आख्यान में वासवदत्ता पद्मावती के साथ उदयन के विवाह के विषय में पहले से ही जानती है अत: उसे ईर्ष्या नहीं होती किन्तु रत्नावली में वासवदत्ता को विश्वास में नहीं लिया गया अत: वह ईर्ष्या करती है। आख्यान में पद्मावती के साथ विवाह के लिये उदयन को मगध जाना पड़ा किन्तु रत्नावली में नायिका को कौशाम्बी ~~स्थान~~ लाया गया है। आख्यान में उदयन और बन्धुमती के गान्धर्व विवाह का केवल उल्लेख किया गया है किन्तु रत्नावली में उदयन और रत्नावली के प्रथमानुराग की भी सृष्टि की गई है।

रत्नावली पर मालविकाग्निमित्र का प्रभाव —

मालविकाग्निमित्र 'पाँच अङ्०कों' वाला नाटक है, इस बात को यदि महत्व न दिया जाय तो परवर्ती सभी नाटिकाकारों की कृतियों पर मालविकाग्निमित्र की स्पष्ट छाप झलकती है। विशेषकर हर्ष की रत्नावली पर तो मालविकाग्निमित्र की आधारभूत [illegible] अन्त:पुर की ललित सुखान्त कथावस्तु के आधार पर सम्पूर्ण नाटिका साहित्य का इतिवृत्त एक विशेष साँचे में ढला है। ईर्ष्यालु रानी द्वारा राजा और नायिका को अलग अलग रखना, उपवन का मोहक

दृश्य, राजा और विदूषक द्वारा सखी के साथ नायिका की स्थिति को देखना, राजा और नायिका का मिलन, रानी को दोनों का मिलन ज्ञात होने पर नायिका को बन्धन में डालना, अन्त में देवी और परिजनों द्वारा नायिका को पहचान लेने पर राजा से नायिका का विवाह आदि तत्वों पर स सम्पूर्ण नाटिका साहित्य निर्भर है और इसका मुख्य आधार मालविकाग्निमित्र है अतः रत्नावली पर मालविकाग्निमित्र का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है ।

रत्नावली की कथावस्तु में दोष –

रत्नावली के प्रथम अङ्क की प्रस्तावना में राजा का मंत्री यौगन्धरायण यह सूचित करता है कि बाभ्रव्य और वसुभूति सिंहल की राजकुमारी रत्नावली को लेकर सिंहल से कौशाम्बी के लिए प्रस्थान करते हैं, मार्ग में पोतभंग हो जाता है । रत्नावली सुरक्षित रूप से एक व्यापारी द्वारा कौशाम्बी पहुंचा दी जाती है । रुमण्वन्त कौशल पर आक्रमण करता है । रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अङ्क में रुमन्वन्त के भांजे विजयसेन ने कोशल आक्रमण का विस्तार से वर्णन किया है किन्तु आक्रमण का कारण नहीं बताया है । हमें यह भी ज्ञात नहीं हो पाता कि कोशल के राजा ने वत्सराज के प्रति किस प्रकार असन्तोष को प्रकट किया ।

जब रत्नावली ,व्यापारी द्वारा यौगन्धरायण को सौंप दी जाती है और यौगन्धरायण रत्नावली को रानी के संरक्षण में रख देता है एवं यह नहीं बताता कि वह राजधानी की है उस स्थिति में यह समझ में नहीं आता कि कि रानी के प्रति यौगन्धरायण को इतना विश्वास है फिर वह रानी को इस विषय में क्यों नहीं बताता (चतुर्थ अङ्क, श्लोक २०) ।

इसी प्रकार नाटिका के द्वितीय अङ्क में रत्नावली जब चित्रपट को छोड़कर सारिका के पीछे भागती है और चित्रपट को याद आने पर वह सुसंगता से अपना भय प्रकट करती है कि कहीं कोई देख न ले । उस समय यह अस्वाभाविक सा लगता है कि सागरिका चित्रपट की याद आने पर भी उसे छोड़ देती है । या तो उसे स्मरण ही नहीं, स्मरण आया तो ले आना था । चित्रपट से ऐसा ज्ञात होता है कि सागरिका को राजा के प्रति प्रेम था और इसी से वह चित्रपट छोड़ गई थी । द्वितीय अंक का २४ वाँ और २५ वाँ वाक्य अनुपयुक्त सा लगता है ।

द्वितीय अंक के अन्त में विदूषक की लापरवाही से रानी को चित्रपट के विषय में ज्ञात हो जाता है और रानी उसके विषय में बताने लगती है तब राजा उस चित्रपट को लाने का उत्तरदायित्व स्वत: पर ले लेता है । किन्तु यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि राजा यह उत्तरदायित्व क्यों ले लेता है । जबकि राजा भी चित्रपट के प्रति उतना ही अज्ञान है जितना कि रानी । चित्रपट के प्रति उतना ही अज्ञान बनने से स्पष्ट है कि राजा के सत्य बोलने पर भी रानी विश्वास नहीं करेगी किन्तु यह नहीं माना जा सकता कि र ाजा केवल इसलिए झूठ बोले कि रानी उस पर विश्वास कर लेगी ।

प्रियदर्शिका –

प्रियदर्शिका नाटिका हर्ष की प्रथम कृति होने के कारण रत्नावली की भाँति उतनी सुन्दर, प्रौढ़ कथानक वाली तथा आकर्षक नहीं है। इस पर कवि कालिदास के मालविकाग्निमित्र का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है ।

कथानक- प्रथम अङ्क –

राजा दृढ़वर्मा का कंचुकी विनयवसु राजा का परिचय देता है । कलिङ्गनरेश दृढ़वर्मा की पुत्री के साथ विवाह का प्रस्ताव रखता है किन्तु

दृढ़वर्मा इन्कार कर देता है क्योंकि वह अपनी पुत्री का विवाह उदयन के साथ करने के लिए संकल्प कर चुका है। उदयन जब उद्योत के यहाँ बन्दी हो जाता है तो कलिङ्गनरेश दृढ़वर्मा को परास्त कर देता है किन्तु दृढ़वर्मा का कंचुकी दृढ़वर्मा की पुत्री को लेकर विन्ध्यकेतु के यहाँ जाता है। उदयन का सेनापति विजयसेन विन्ध्यकेतु पर आक्रमण करता है विन्ध्यकेतु मारा जाता है। उदयन को विजय की भेंट के रूप में दृढ़वर्मा की कन्या दे दी जाती है। राजा उदयन आरण्यकानाम से वासवदत्ता के पास अन्त:पुर की परिचारिका के रूप में उसको सौंप देते हैं और उसको शिक्षा का प्रबन्ध कर देते हैं।

द्वितीय अङ्क –

नायिका आरण्यका के प्रति राजा की आसक्ति प्रतीत होती है। राजा अपने मित्र विदूषक के साथ उपवन में जाता है। आरण्यका पुष्प चयन के हेतु अपनी सखी के साथ उपवन में आती है। वहाँ पर सखी के साथ वार्तालाप के मध्य राजा के प्रति अपनी आसक्ति की अभिव्यक्ति करती है। राजा छिपकर सुनता रहता है। सखी के कहीं चले जाने पर भ्रमर द्वारा पीड़ित आरण्यका सुरक्षा के लिये पुकारती है। राजा जाकर नायिका की रक्षा करता है। नायिका राजा का आलिङ्गन करती है। इतने में आरण्यका की सखी आ जाती है, दोनों एक दूसरे से दूर हो जाते हैं। इतनी देर बाद कवि ने नायक और नायिका के मिलन द्वारा अनुराग-बीज का वपन किया है।

तृतीय अङ्क –

विदूषक और आरण्यका की सखी मनोरमा द्वारा राजा और नायिका के मिलन की योजना बनाई जाती है। रानी की सहचरी साङ्कृत्यायनी द्वारा रचित नाटक में मनोरमा उदयन और आरण्यका रानी का अभिनय करती है। चतुरता से उदयन मनोरमा का स्थान स्वयं ग्रहण कर लेते हैं। रानी उस

प्रभावशाली अभिनय को देखकर शङ्का करती हैं और साङ्कृत्यायनी के समझाने पर भी वह शङ्कित होकर चली जाती हैं। निदान विदूषक से सब सत्यता का ज्ञान रानी वासवदत्ता को हो जाता है। वह राजा से अत्यन्त रुष्ट हो जाती है। इस अङ्क में गर्भाङ्क है।

चतुर्थ अङ्क –

रानी आरण्यका को कारागार में बन्द कर देती है। राजा अत्यन्त दु:खी हो जाते हैं। रानी को अपनी माता के पत्र द्वारा सूचना मिलती है कि उसके मातृ-ष्वसा पति दृढ़वर्मा कलिङ्गनरेश के कारागार में बन्द हैं और उनको उदयन की सहायता की अपेक्षा है। वासवदत्ता भी चिन्तित हो जाती है। इसी बीच उदयन का सेनापति विजयसेन दृढ़वर्मा के पुन: सिंहासनारूढ़ की सूचना देता है। आरण्यका की सखी मनोरमा भयभीत होकर आरण्यका को विषपान की सूचना देती है। वासवदत्ता उदयन से उसकी चिकित्सा की प्रार्थना करती है। राजा आरण्यका की सुरक्षा मंत्रों द्वारा करता है। दृढ़वर्मा का कंचुकी नायिका को पहचान लेता है। वासवदत्ता नायिका को अपनी भगिनी रूप में पहचानकर उसका विवाह राजा उदयन के साथ कर देती है।

प्रियदर्शिका की कथावस्तु का मूल स्रोत –

प्रियदर्शिका नाटिका की कथावस्तु गुणाढ्य की बृहत्कथा पर आधारित सोमदेव के कथासरित्सागर और बुद्धस्वामी के बृहत्कथामंजरी के आधार पर निर्मित की गई है। प्रियदर्शिका के कथानक के साथ तुलनात्मक अध्ययन करने के हेतु कथासरित्सागर और बृहत्कथामंजरी के कतिपय भाग उद्धृत किये जाते हैं –

> किं च बन्धुमतीं नाम राजपुत्रीं भुजानिताम्।
> गोपालकेन प्रहितां कन्यां दत्त्वा उपायताम्॥
> तथा मंजुलिकेत्येव नाम्नानैव गोपिताम्।

आख्यान में किये गये परिवर्तन -

मूल ग्रन्थ में नायिका का नाम बन्धुमती या रजनिका है किन्तु नाटिका में नायिका का नाम प्रियदर्शिका है ।

मूलग्रन्थ में नायिका रानी के भ्राता गोपालक द्वारा राजा के पास प्रेषित की गई है किन्तु नाटिका में राजा के सेनापति विजयसेन द्वारा उसे विन्ध्यकेतु लाया जाता है और विन्ध्यकेतु के किसोपहार रूप में राजा को दिया जाता है, राजा उसे वासवदत्ता के संरक्षण में रख देता है ।

मूल ग्रन्थ में नायिका का न ा म मंजुलिका है जबकि नाटिका में नायिका का नाम आरण्यक है क्योंकि वह विन्ध्यप्रदेश (जंगल) से लाई गई है ।

उपजीव्य ग्रन्थ में राजा अपने मित्र विदूषक के साथ नायिका को एक ( ) में लिखा देखता है लेकिन नाटिका में वह उसे एक तालाब में देखता है ।

कथासरित्सागर में यह बताया गया है कि सांकृत्यायनी साध्वी है और वह वासवदत्ता के पिता के घर से आई है किन्तु नाटिका में इस अंश का उल्लेख नहीं किया गया । केवल यह बताया गया है कि वह उदयन के विवाहोत्सव पर एक नाटक की रचना करती है जिसके बिना वह पा नहीं सकती थी । बृहत्कथामंजरी में तो सांकृत्यायनी का नामोल्लेख भी नहीं है ।

मूल ग्रन्थ में उदयन के साथ नायिका का विवाह पद्मावती के साथ विवाह के पूर्व हो जाता है जबकि नाटिका में नायिका का विवाह बाद में होता है ।

प्रियदर्शिका नाटिका में नायिका का नाम प्रियदर्शिका है जिसका उल्लेख किसी भी उपजीव्य ग्रन्थ में नहीं है । रामानुजस्वामी के मतानुसार बृहत्कथा के एक संस्करण में प्रियदर्शना नाम है किन्तु वह उदयन के पुत्र नरवाहनदत्त की पत्नी

का नाम है ।

वत्सराज उदयन और वासवदत्ता की प्रेम-कहानी के आधार पर नाटिकाकार हर्ष ने दृढ़वर्मा की कथा कल्पित की और राजा को धीरललित बनाने की दृष्टि से कलिङ्ग के राजा एवं विन्ध्यकेतु के विरुद्ध उदयन को विजयी बताया ।

<u>प्रियदर्शिका नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव -</u>

हर्ष की दोनों नाटिकाओं (रत्नावली, प्रियदर्शिका) पर कालिदास की कृतियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । प्रियदर्शिका नाटिका पर उनकी कृतियों की अमिट छाप दिखाई पड़ती है -

नाटिका में भ्रमरों द्वारा आरण्यका को पीड़ित किये जाने का प्रसंग कालिदास की शकुन्तला भ्रमर-बाधा का अनुकरण है ।

नाटिका में साङ्कृत्यायनी का उल्लेख मालविकाग्निमित्र के पण्डिता-कौशिकी से मिलता है ।

नाटिका में आरण्यका को कारागार का सेवन करना पड़ता है, मालविकाग्निमित्र में मालविकाग्निमित्र का कारागार-पतन दिखाया गया है ।

<u>रत्नावली और प्रियदर्शिका में समानता -</u>

रत्नावली और प्रियदर्शिका दोनों चार अङ्कों की नाटिका हैं और दोनों रचनाओं में समानता है -

दोनों कथाओं में उदयन के प्रेम का वर्णन परिचारिका के साथ है जो कि वास्तव में राजकुमारी है ।

दोनों नाटिकाओं में विदूषक और परिचारिका दोनों मिलकर दोनों (राजा और नायिका) प्रेमियों के मिलन का प्रयास करते हैं किन्तु असफल हो जाते हैं ।

दोनों नाटिकाओं की नायिका को कारावास पतन बताया गया है।

दोनों में नायिका को अन्तत: उच्च कुलोत्पन्न राजकुमारी और रानी की चचेरी भगिनी बताया गया है और रानी स्वत: अन्त: में नायिका के साथ नायक का विवाह कर देती है।

दोनों ही नाटिकायें कालिदास के मालविकाग्निमित्र के आधार पर निर्मित हैं किन्तु किसी भी नाटिका में मालविकाग्निमित्र की भाँति ऐतिहासिकता नहीं है।

प्रियदर्शिका की कथावस्तु में दोष –

नाटिका में प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में दृढवर्मा का कंचुकी राजकन्या को लेकर राजमित्र विन्ध्यकेतु के यहाँ चला जाता है। इसी समय विन्ध्यकेतु पर उदयन का सेनापति विजयसेन आक्रमण करता है। आक्रमण में विन्ध्यकेतु मारा जाता है। विजयोपहार के रूप में राजकन्या उदयन के पास लाई जाती है। उस अङ्क में विजयसेन द्वारा विन्ध्यकेतु पर आक्रमण विस्तार से वर्णित किया गया है। चतुर्थ अङ्क में कंचुकी जब वासवदत्ता को प्रियदर्शिका के खो जाने के बारे में बता ता है उस समय वह पुन: आक्रमण के विषय में वर्णन करता है किन्तु नाटिका में कहीं पर भी आक्रमण का कारण नहीं बताया गया है। इस बात की सूचना कहीं भी नहीं दी गई है कि वत्सराज विन्ध्यकेतु पर क्यों आक्रमण करता है और क्यों उसे मार डालता है जबकि कंचुकी द्वारा यह बताया गया है कि विन्ध्यकेतु दृढवर्मा का राजमित्र है।

प्रथम अङ्क के अन्त में उदयन सेना सहित विजयसेन को कलिङ्गराज पर आक्रमण के लिये भेजता है। एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उस आक्रमण का परिणाम नाटिका में नहीं बताया गया है। चतुर्थ अङ्क में राजा जब रानी से मिलता है उस समय उसे विजयसेन द्वारा यह सूचना मिलती है कि कलिङ्गराज एक-दो दिन के बीच आत्मसमर्पण कर देगा। वह घेराव शायद एक

वर्ष के आस-पास तक था । उस परिस्थिति में यह बताना कठिन है कि एक वर्ष से भी अधिक समय के लिये कारागार में बद्ध वासवदत्ता के मातृ-स्वसा-पति दृढ़-वर्मा का समाचार अङ्गारवती ने किस प्रकार पत्र द्वारा भेजा होगा । वासवदत्ता उदयन से भी दृढ़वर्मा की मुक्ति के लिये नहीं कहती । साथ ही यह भी प्रश्न उठता है कि जब राजा के सेनापति विजयसेन ने एक वर्ष पूर्व से कलिङ्ग पर घेराव डाल रखा है तब दृढ़वर्मा किस तरह बन्दी बना लिये गये । हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि शायद अंगारवती के स्थान से कलिङ्ग अधिक दूर रहा होगा और उस समय विशिष्ट सन्देशवाहक रहे होंगे । साथ ही कलिङ्ग दृढ़वर्मा और विन्ध्यकेतु की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली रहा होगा और उसकी सेना अधिक हठी रही होगी इसी से शायद दृढ़वर्मा बन्दी बना लिये गये होंगे । कुछ समय के इन्तजार के बाद अङ्गारवती ने पत्र भेज दिया होगा । सबको मिलाने के लिये पत्र को प्रस्तुत करने की लेखक की कलात्मकता स्वत: में ही एक खुशी की बात है ।

द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में विदूषक निश्चयपूर्वक स्नान के उद्देश्य से तालाब के पास जाता है । मार्ग में वह राजा से मिल जाता है । राजा को वह अपना उद्देश्य बताता है । राजा भी बगीचे के तालाब में उसका साथ देता है । तालाब के तट से राजा कुछ समय तक आरण्यका को देखता है । मधुमक्खियों द्वारा पीड़ित किये जाने पर राजा नायिका को सान्त्वना देता है । जब नायिका अपनी सखी के साथ चली जाती है उस समय विदूषक स्नान के विषय में नहीं सोचता अपितु वह राजा को अन्त:पुर में चलने की सलाह देता है । इस प्रकार अङ्क के प्रारम्भ में और अङ्क के अन्त में विदूषक के कथन में बहुत असमानता विद्यमान है । हम केवल कल्पना कर सकते हैं कि स्नान में देर हो गई होगी अत: नाम से ब्राह्मण होने के कारण उसने जाति चिह्न लगा लिया ।

नायिका के तृतीय अङ्क में पुन: साङ्कृत्यायनी द्वारा रचित नाटक में मनोरमा उदयन और आरण्यका वासवदत्ता का अभिनय करती है । उदयन अभि-

नय के हेतु मनोरमा का स्थान कुशलता से ले लेता है किन्तु यह प्रश्न उठता है कि बिना किसी पूर्व तैयारी के किस प्रकार उदयन मनोरमा का स्थान कुशलता से ले लेता है। साथ ही अन्त में साङ्कृत्यायनी का मौन हो जाना भी कुछ अस्पष्ट सा है।

इस प्रकार हर्ष की यह कृति अप्रौढ़, मौलिकताविहीन तथा नूतनता से रहित है। कथानक के सङ्गठन में भी त्रुटियाँ हैं। नाटिका का प्रथम अङ्क तो विष्कम्भक जैसा प्रतीत होता है जिसमें नाटिका की केवल पृष्ठभूमि का वर्णन किया गया है। (प्रथम अङ्क में) इसमें नायिका को रङ्गमंच पर उपस्थित नहीं किया गया है। वह, जैसे कोई राजपुरुष राजमार्ग से नटों को भगा दे, उसी भाँति कवि नाटिका को समाप्त कर देता है।[१] नाटिका के अन्त में कवि की शीघ्रता से ऐसा प्रतीत होता है कि उसको ४ अङ्कों में नाटिका लिखनी थी जो कि उसने समाप्त कर दी।

विद्धशालभंजिका --

कथानक --

राजा विद्याधरमल्ल कर्पूरवर्ष के शक्तिशाली राजा थे। उनका चतुर-मन्त्री भागुरायण था। भागुरायण को यह ज्ञात है कि लाट देश के नरेश चन्द्र-वर्मन् की कन्या मृगाङ्कावली से विवाहित व्यक्ति चक्रवर्ती सम्राट होगा। चन्द्रवर्मन इकलौती पुत्री होने के कारण मृगाङ्कावली को पुत्र-वेश में रखते थे और वे उसे मृगाङ्कवर्मन् के नाम से पुकारते थे। भागुरायण अपने राजा विद्या-धर मल्ल को शक्तिशाली बनाना चाहता है। वह ऐसी योजना बनाता है जिससे

---

१. ड्रामा इन संस्कृत लिट्रेचर, पृ० १२४, जागीरदार, १९४७।

राजा और मृगाङ्कावली परस्पर प्रणय सूत्र में बँध जायँ। वह मृगाङ्कावली को अन्तःपुर में बुलवा लेता है और किसी को भी उसके कन्या रूप होने की बात ज्ञात नहीं होती। वह अपने शिष्य हरदास की सहायता से वासगृह और क्रीडापर्वत पर रत्नखचित दीवारों की चित्रशाला निर्मित करता है। वासगृह में सोये राजा को रानी की दासी विलक्षणा की सहायता से मृगाङ्कावली द्वारा माला पहनवाता है। राजा उसको स्वप्न समझता है और सुबह उसके प्रेम में उन्मत्त हो उठता है। भागुरायण की योजनानुसार वह मृगाङ्कावली द्वारा उसके प्रेम में लिखे गये एक श्लोक को पढ़ता है। मणिरचित दीवार के पीछे बैठी मृगाङ्कावली को भी देखता है। पुनः एक बार गेंद खेलती हुई मृगाङ्कावली से मिलने के लिये आगे बढ़ता है वैसे ही उसके द्वारा लिखे एक प्रेम भरे श्लोक को देखता है। इसके बाद दीवार के दूसरी ओर विचक्षणा मृगाङ्कावली को लाकर एक छेद के समीप मृगाङ्कावली द्वारा उसी की विकलदशा का वर्णन कराती है और राजा उसे सुनता है। तत्पश्चात् एक दिन चाँदनी रात में उद्यान-विहार करते हुये राजा को मृगाङ्कावली द्वारा ताड़पत्र पर लिखित प्रेमम पत्र मिलता है। साथ ही विचक्षणा से अपनी विरहावस्था का हाल बताती हुई मृगाङ्कावली को भी सुनता है। वह अपने प्रेम को प्रकट करने के लिये उसे मोतियों का हारपहना देता है।

मृगाङ्कावली से प्रेम करने के पूर्व राजा कुन्तल के नरेश चण्ड महासेन की पुत्री, कुवलयावली से प्रेम करने लगा था। यह बात रानी को भी ज्ञात थी। रानी ने मजाक में विदूषक चारायण का विवाह एक पुरुष दास से स्त्री-वेष धारण कराकर कर दिया। रानी की दासी मेखला ने इसमें मुख्य भाग लिया। विदूषक ने क्रुद्ध होकर बदला लेने का निश्चय किया और राजा से सहायता माँगी। रानी की दासी सुलक्षणा को राजा ने समस्त कार्यक्रम बता दिया। उसके अनुसार सुलक्षणा एक वृक्ष पर चढ़ गई और नीचे विचरती मेखला से नाक से बोली कि वैशाख मास की पूर्णिमा की संध्या को वह मर जायगी। यह सुनकर मेखला रोने

लगी और जीने का उपाय पूछा । सुलक्षणा ने बताया कि गान्धर्व वेद में निपुण ब्राह्मण की पूजा करके उसके दोनों पैर के बीच से निकले तब यह विनाश दूर हो सकता है । मेखला रोती हुई रानी के पास गई । रानी राजा के पास सहायतार्थ गई । राजा ने विदूषक चारायण को गान्धर्व वेद में निपुण ब्राह्मण बताया । मेखला चारायण के पैरों पर गिरकर टांगों के बीच से निकली और दया की प्रार्थना की । विदूषक इस बात से खूब हँसा ।

रानी को मेखला का अपमान देख बड़ा क्रोध आया । उसने बदला लेने की भावना से मृगाङ्कावली का विवाह जिसे अभी तक वह पुरुष समझ रही थी, राजा से करने का निश्चय किया । रानी ने सलाह दी कि वह एक शक्तिशाली राजा की कन्या है अत: रानी राजा से उसका विवाह करना चाहती है । राजाने अनुमति दे दी । राजा विवाह मृगाङ्कावली से रानी ने कर दिया जिसे वह अभी तक मजाक समझती थी ।

विवाह सम्पन्न होते ही भागुरायण चन्द्रवर्मा के एकदूत के साथ उपस्थित होता है । वह सूचित करता है कि राजा चन्द्रवर्मा अपनी पुत्री के इकलौतेपन के कारण उसको मृगाङ्कवर्मा कहते थे किन्तु अब उनके एक पुत्र हो गया अत: अब मृगाङ्कवती को पुरुष वेश की आवश्यकता नहीं है । उसने रानी से बताया कि अब मृगाङ्कावली का विवाह किसी महान् राजा के साथ कर दें । रानी पहले आश्चर्यचकित हो उठती है । फिर वह अपने मामा के पास दूत से कहला देती है कि उसने मृगाङ्कावली का विवाह राजा से कर दिया है । वह कुवलयमाला का विवाह भी राजा से कर देती है । प्रधान सेनापति का दूत शत्रुओं के नाश और राजा के एक छत्र साम्राज्य की सूचना देता है । भरत वाक्य के साथ कथानक समाप्त हो जाता है ।

विद्धशाल० के कथानक का मूल स्रोत एवं किये गये परिवर्तन -

राजशेखर ने एक सामान्य सी कथा को अपनी काल्पनिक शक्ति के

विद्धशाल नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव -

भास के उदयन यौगन्धरायण और वासवदत्ता पात्रों का अनुकरण किया गया है ।

रानी को धोखा देने का यहाँ कर्पूरमंजरी से अच्छा उपाय सोचा गया है किन्तु रत्नावली का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है ।

हर्ष, भवभूति और मुरारि का भी स्पष्ट प्रभाव है ।

विद्धशाल० नाटिका में दोष -

नाटिका को सम्पूर्ण रूप से दृष्टिगत करने पर उसकी वस्तु योजना शिथिल प्रतीत होती है ।

प्रतिकृति (मूर्ति) का दृश्य, जो नाटिका के नामकरण का आधार है, प्रभावशाली नहीं है ।

नायिका का प्रवेश बहुत देर से कराया गया है ।

दो स्त्रियों से एक साथ विवाह नाटककार की कुरुचि का परिचय है ।

नाटिका में चरित्र-चित्रण भी सफलता पूर्वक नहीं किया गया है ।

रोचक व कौतूहल उत्पन्न करने वाली घटनाओं का अभाव है ।

संक्षेप में नाट्य-कला की दृष्टि से राजशेखर को कथानक की सृष्टि में सफलता नहीं मिली है ।

कर्णसुन्दरी[१] -

कथानक -- बिल्हण-विरचित कर्णसुन्दरी नाटिका में कर्णाटक देश के नरेश जयकेशी की दुहिता से राजा त्रिभुवनमल्ल के विवाह का वर्णन है । नायक ऐति-

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० ६० ,बलदेव उपाध्याय। भूमिका, कर्णसुन्दरी, काशीनाथदुर्गाप्रसाद पृ० ३ । हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, पृ० ४०१ दासगुप्ता, संस्कृत ड्रामा, कीथ, पृ० २७० हिन्दी अनुवाद ।

हासिक है शेष कथा कवि-कल्पित है ।

प्रथम अङ्क -

राजा त्रिभुवनमल्ल का मन्त्री प्रणिधि जयकेशी की पुत्री कर्णसुन्दरी को देवी के अन्त:पुर में रख देता है । राजा कर्णसुन्दरी को स्वप्न में देख कर उसके लावण्य के प्रति आसक्त हो जाते हैं । तदुपरान्त विदूषक के साथ तरङ्गशाला में उसका चित्र देखकर और भी काम पीड़ित हो उठते हैं । फिर हारलता के साथ देवी का प्रवेश होता है । राजा के चरित्र के प्रति देवी द्वारा शङ्का किये जाने पर हारलता देवी को आश्वासन देती है कि सूर्य की किरणों के लिये भी अगम्य कर्णसुन्दरी का दर्शन राजा के लिये कैसे सम्भव हो सकता है । किन्तु देवी जब कर्णसुन्दरी का वास्तविक चित्र देख लेती है तब वह क्रोधित होकर हरलता के साथ चली जाती है । राजा देवी के प्रसादन का प्रयत्न करता है ।

द्वितीय अङ्क -

द्वितीय अङ्क में विदूषक के साथ राजा का प्रवेश होता है । उसी उद्यान की तरङ्गशाला में वे दोनों पुन: कर्णसुन्दरी के चित्रदर्शन द्वारा अपना मनोविनोद करने के लिये जाते हैं किन्तु देवी द्वारा अस्पष्ट कर दिये गये चित्र को देखकर अपना शोक प्रकट करते हैं । तदुपरान्त विदूषक राजा से लीलावन के मध्य विचरण करने को कहता है और यह सलाह देता है कि शायद सरसीजल में स्नान करती हुई कर्णसुन्दरी के दर्शन हो जायँ । राजा सरसी-जल में उसके दर्शन करता है । विदूषक राजा से पूछता है कि वह क्यों कमल के जल से निकलकर एकान्त में सखी तरङ्गवती के साथ लताओं के मध्य चली गई । राजा नायिका की विरहावस्था का चित्रण करते हैं । वे दोनों लता के ओट में पीछे से जाकर नायिका के विश्रम्भ वार्तालाप को सुनते हैं । इतने में नायिका का सखी के साथ प्रवेश होता है । नायिका का विरह इतना तीव्र हो जाता

है कि वह फल के प्रति निराशा व्यक्त करती है और सखी के आश्वासन को भी असिद्ध करती है। विदूषक राजा को नायिका के सन्निकट जाने को प्रेरित करता है किन्तु नायिका के मूर्च्छित हो जाने पर राजा उसके समीप जाते हैं। वह राजा को देखकर स्वस्थ चित्त हो उठती है और लज्जा का अनुभव करती है। उसकी सखी तरङ्गवती बलात् राजा के समीप बैठा देती है। राजा उसका आलिङ्गन करना चाहता है। किंचित् समय हेतु सखी और विदूषक राजा और नायिका को एकान्त मिलन का अवसर देना चाहते हैं, इतने में ही विदूषक द्वारा देवी के आगमन की सूचना दी जाती है। नायिका सखी के साथ चली जाती है। हारलता और देवी राजा के समीप जाती हैं। राजा विदूषक के साथ पुनः लीलावन से उद्यान में चला जाता है।

तृतीय अङ्क –

तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में बकुलावलि और मन्दोदरि के वार्तालाप द्वारा यह सूचना दे दी जाती है कि आर्य बादरायण द्वारा राजा और कर्ण सुन्दरी के एकान्तमिलन की योजना बनाई गई है किन्तु देवी को उस योजना का ज्ञान हो जाता है और वे स्वतः कर्णसुन्दरी के रूप में तथा बकुलावलि को कर्ण-सुन्दरी की सखी के रूप में तैयार करके आर्यपुत्र को धोखा देना चाहती है। यह सूचना प्रवेशक की योजना द्वारा दी गई है। तदुपरान्त राजा का प्रवेश होता है। वह अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये मित्र विदूषक की खोज करते हैं। इतने में विदूषक का प्रवेश होता है। वह राजा को बधाई देते हुए कान में दोनों के परस्पर मिलन की योजना के विषय में बताता है। राजा अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठते हैं। विदूषक राजा से कर्णसुन्दरी की विरहावस्था का लेख पढ़ने को कहता है। राजा उसका वाचन करता है। तदुपरान्त विदू-षक और राजा संकेत स्थल पर जाते हैं। वहाँ पर कर्णसुन्दरी के वेष में देवी

का और बकुलावलि के वेष में हारलता का प्रवेश होता है। राजा को इस छल का भान नहीं हो पाता। वह देवी और हारलता को सत्य रूप से कर्पूर-सुन्दरी और बकुलावलि समझकर कर्पूरसुन्दरी के साथ प्रेमालाप करता है। जैसे ही वह उसका आलिङ्गन करता है, देवी अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट कर देती है। राजा देवी के चरणों पर गिरकर क्षमा माँगता है किन्तु वह हार-लता के साथ चली जाती है। राजा विदूषक के साथ देवी का अनुसरण करते हैं।

चतुर्थ अङ्क —

चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में विदूषक द्वारा यह सूचना दे दी जाती है कि देवी भागिनेय के पुत्र को कर्पूरसुन्दरी के रूप में वेष धारण कराकर उसके स्थान पर कर्पूरसुन्दरी को करके उस पुत्र के साथ राजा का विवाह करके राजा को धोखा देना चाहती है। विदूषक के साथ राजा का प्रवेश होता है। विदूषक राजा को पुन: व्याकुल होते हुए देखकर उसे व्याकुल होने को मना करता है। वह देवी द्वारा बनाई गई परिहास की योजना के विषय में बताता है। इतने में चेटी प्रविष्ट होकर राजा को देवी द्वारा प्रेषित आभरण देकर विवाह के लिए आमन्त्रित करती है। राजा आभूषणों को विदूषक को दे देता है। तब हारलता के साथ देवी का प्रवेश होता है। देवी कर्पूरसुन्दरी के वेष में भागिनेय के पुत्र के साथ राजा का विवाह करने का प्रयास करते हुए उसे राजा को समर्पित करना चाहती है। प्रतीहारी और अमात्य का प्रवेश होता है। जब वह हारलता द्वारा कर्पूरसुन्दरी को बुलवाकर अमात्य के समक्ष उसे राजा को समर्पित करती है तब वह प्रत्यक्ष कर्पूरसुन्दरी को देखकर आश्चर्यचकित हो उठती है और विवाह सम्पन्न हो जाने के कारण देवी हताश हो जाती है। वह स्वत: ही धोखा खा जाती है। प्रतीहारी प्रविष्ट होकर गर्जननगर की विजय के लिये गये हुये कुम्बिक के पास से आये हुये वीर सिंह के आगमन की सूचना देता है। वीरसिंह का प्रवेश होता है। वह राजा को एकछत्र साम्राज्य

की सूचना देता है । भरत-वाक्य के साथ नाटिका समाप्त हो जाती है ।

कर्णसुन्दरी के कथानक का मूल-स्रोत एवं आख्यान में किये गये परिवर्तन -

कर्णसुन्दरी नाटिका पाटन नरेश कर्ण-त्रिभुवन मल्ल चालुक्य (११ वीं शती ईसवी) की प्रशस्ति में लिखी गई है । नाटिका में अणहिल्ल-पाटण और चालुक्य पार्थिव का उल्लेख भी है । नाटिका में केवल राजा ऐतिहासिक है शेष कथावस्तु कवि-कल्पित ही है ।

कर्णसुन्दरी नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव -

कर्णसुन्दरी नाटिका राजशेखर की विद्धशालभंजिका से अत्यधिक प्रभावित है और हर्ष की रत्नावली की शैली पर निर्मित है । इस नाटिका में घटित घटनायें कहीं विद्धशालभंजिका या फिर रत्नावली में घटित घटनाओं के आस पास मंडराती रहती हैं ।

विद्धशालभंजिका नाटिका में चन्द्रवर्मन् मृगाङ्कावली को पहले स्वप्न में ही देखकर आसक्त हो जाता है और कर्णसुन्दरी में भी त्रिभुवनमल्ल कर्णसुन्दरी को सर्वप्रथम स्वप्न में ही देखकर आसक्त होता है ।

विद्धशालभंजिका में र ाजा स्वप्न-दर्शन के पश्चात् चित्रशाला में मृगाङ्कावली के दर्शन करता है और कर्णसुन्दरी में राजा स्वप्नदर्शन के पश्चात् तरङ्गशाला में कर्णसुन्दरी के दर्शन करता है ।

विद्धशालभंजिका में विचक्षणा दीवार के दूसरी ओ मृगाङ्कावली को लाकर एक छेद के समीप मृगाङ्कावली द्वारा उसी की विकल दशा का वर्णन कराती है और राजा उसे सुनता है तथा कर्णसुन्दरी में राजा और विदू-षक दोनों लता की ओट में पीछे से जाकर कर्णसुन्दरी के विश्रम्भ वार्तालाप को सुनते हैं ।

कलावती में वासवदत्ता के वेष में सागरिका और काञ्चनमला के वेष में सुसंगता राजा उदयन से मिलने आती है, इसके पहले ही वासवदत्ता को यह रहस्य ज्ञात हो जाता है और वह प्रणय-स्थल पर पहले ही पहुँच जाती है। इसी प्रकार कर्णसुन्दरी में देवी के वेष में कर्णसुन्दरी और हारलता के वेष में बकुलावलि राजा से मिलने के लिये आती है, इसके पहले ही देवी को यह रहस्य ज्ञात हो जाता है और वह प्रणयस्थल पर पहले ही पहुँच जाती है।

जिस प्रकार विद्धशालभंजिका में रानी राजा चन्द्रवर्मन् से बदला लेने की भावना से मृगाङ्कावली का जिसे वह अभी तक पुरुष समझ रही थी, राजा के साथ विवाह करके स्वत: धोखा खा जाती है, उसी प्रकार कर्णसुन्दरी नाटिका में भी रानी त्रिभुवन मल्ल से बदला लेने की भावना से भगिनेय पुत्र को कर्णसुन्दरी के रूप में बनाकर राजा के साथ विवाह करना चाहती है किन्तु वास्तविक कर्णसुन्दरी के साथ विवाह हो जाने से स्वत: धोखा खा जाती है।

जिस प्रकार रत्नावली में समण्वान् कोसल विजय का वर्णन करता है, उसी प्रकार कर्णसुन्दरी में वीरसिंह द्वारा गर्जननगर की विजय का वर्णन कराया गया है। विद्वानों का अनुमान है कि कर्णसुन्दरी नाटिका पर कालिदास के मालविकाग्निमित्र का प्रभाव पड़ा है।[१]

इस कृति के विषय में ~~उक्त~~ डा० कीथ का कहना है -`यह कृति कालिदास, हर्ष और राजशेखर से गृहीत वस्तु की खिचड़ी है।`[२]

---

१. दि ड्रामा आफ विल्हण इन इट्स स्टोरी ऐण्ड टेक्नीक, कम्पेयर्ड विथ कालिदास, मालविकाग्निमित्र (एस०एन० तदुपत्रिकाव् : चौरपंचाशिका की भूमिका, पृ० ७) ।

~~मालविकाग्निमित्र ( )~~

~~चौरपंचाशिका की भूमिका, पृ० ७)~~

२ संस्कृत ड्रामा. कीथ. पृ० २७१, हिन्दी अनुवाद ।

पारिजातमंजरी -

कथानक - प्रथम अङ्क -

इस नाटिका की कथावस्तु ऐतिहासिक है । नाटिका के प्रारम्भ में आमुख में सूत्रधार आकर सूचित करता है कि अर्जुनवर्मा ने चालुक्य नरेश भीमदेव को पराजित कर दिया है । विजय के पश्चात् राजा के वक्षःस्थल पर पारिजात पुष्पों की एक माला गिरती जो उसी समय कामिनी के रूप में परिवर्तित हो जाती है । उस समय आकाशवाणी होती है कि हे धराधिप ! मनोज्ञ और कल्याणमयी विजयश्री का आनन्द लेते हुये तुम भोजदेव के सदृश होगे ।।१/६।। पुनः सूत्रधार बताता है कि -

या चालुक्यमहीमहेन्द्रदुहिता देवी जयश्रीः स्वयं
भङ्गे मृत्युमवाप्य बाष्पसलिलैरन्तः पुरस्त्रीर्मिलैः ।
वप्तुः शौक्तमालबालविपिनं चक्रे नदीमातृकं
सेयं स्वर्द्रुममंजरी किसलये संक्रम्य जाताङ्गना ।। १।७ ।।

राजा उस पारिजात मंजरी को नागरिकों से सुरक्षित रखने के हेतु उसे अपने कंचुकी कुसुमाकर (उद्यानाधिकारी) के संरक्षण में रख देता है । कंचुकी उसे अपनी स्वगृहिणी वसन्तलीला को देकर धारागिरिगर्भ के मरकत-मण्डप में स्थापित करा देता है ।

नाटिका के प्रथम अङ्क का नाम वसन्तोत्सव रखा गया है । इसमें प्रजा की देखभाल करते हुये राजा, उसके मित्र विदूषक, राज्ञी और उसकी परिचारिका कनकलेखा का वर्णन किया गया है ।

द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में विष्कम्भक में कुसुमाकर और वसन्तलीला नामक-नायिका की पारस्परिक उत्कण्ठा की तुलना करते हैं । द्वितीय अङ्क का नाम ताटङ्क दर्पण है । राजा अपने मित्र विदूषक के साथ रानी द्वारा आयोजित सत्कार और माधवी लता के विवाहोत्सव हेतु उद्यान की सम्प्रस्थत करता है । वसन्तलीला नायिका के साथ वृक्ष की ओट में छिपकर

राजा की समस्त कार्यवाही को देखती है । राजा रानी के ताटंक (कर्णाभूषण) में पारिजात मंजरी का प्रतिबिम्ब देखता है और अत्यन्त क्षोभित हो उठता है । पारिजातमंजरी रानी के ताटंक में अपना प्रतिबिम्ब और राजा को देखकर चिन्ता करती है कि राजा मेरा प्रतिबिम्ब देखरहे हैं अथवा कर्णाभूषण । वसन्तलीला द्वारा पारिजातमंजरी को यह विश्वास दिला दिया जाता है कि राजा नायिका का प्रतिबिम्ब ही ताटङ्क में देख रहे हैं । रानी दाहिनी आँख के फड़कने से शङ्कित हो उठती है । वह कनकलेखा से रहस्य ज्ञात करना चाहती है किन्तु राजा दृष्टि के संकेत द्वारा उसे प्रसन्न कर लेते हैं । इससे रानी क्रोधित होकर कनकलेखा की भुजाओं को पकड़कर उसे लेकर चली जाती है । राजा अवश्य देवी को प्रसन्न करने के लिये गये होंगे ऐसा कहकर नायिका भी वसन्तलीला के साथ चली जाती है । विदूषक द्वारा मारितस्य मुक्तस्य चैकमेव नाम ऐसा कहे जाने पर वे दोनों मरमतमण्डप में चले जाते हैं । वहाँ पर नायिका और सखी का प्रवेश होता है । राजा उन्हें देखकर पुष्पों को चुनकर उससे नायिका को मारता है । वह राजा को प्रत्यक्ष कुसुमायुध ही कहकर अपनी रक्षा के लिये वसन्तलीला का आलिङ्गन करना चाहती है किन्तु मूर्छित हो जाती है । राजा द्वारा स्पर्श किये जाने पर वह संज्ञा धारण कर लेती है (होश में आ जाती है) और राजा उसका आलिङ्गन करते हैं ।

ताडङ्क हाथ में लिये हुये कनकलेखा का प्रवेश होता है और राजा बाधित हो जाता है । वह पारिजात मंजरी को अपने पीछे व्यर्थ में छिपाने का प्रयास करता है । अतः वह देवी के क्रोध को शान्त करने के लिये उसे छोड़ देता है । पारिजातमंजरी भी आत्म-हत्या की धमकी देते हुये चली जाती है और वसन्तलीला उसका पीछा करती है । कथावस्तु में नवीनता और प्राचीनता का समन्वय है ।

पारिजातमंजरी नाटिका के कथानक का मूलस्रोत एवं उसमें किये गये परिवर्तन -

प्रस्तुत नाटिका चार अङ्को वाली है किन्तु उसके प्रथम तथा द्वितीय ये दो ही अङ्क धार में उपलब्ध हुये हैं जो कि मह के पश्चिमी भाग में हैं और मालव के परमार राजाओं की प्राचीन राजधानी थी। और वर्तमान समय में मध्य भारत में राज्य का मुख्य शहर है।

पारिजातमंजरी नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव -

नवमालिका नाटिका का नासिका प्रतिबिम्ब और पारिजातमंजरी का ताटङ्क प्रतिबिम्ब का चित्रण एक समान है।

कुवलयावली -

लेखक ने नाटिका को दो संज्ञायें दी हैं - कुवलयावली और रत्न-पांचालिका। ब्रह्मा के निर्देशन से भूमि कन्या का रूप धारण कर लेती है, नारद उसके पोषक पिता का स्थान ग्रहण कर लेते हैं और रुक्मिणी उसकी संरक्षिका बन जाती है और वह कन्या धरोहर के रूप में उसके पास रहती है। नारद यह बहाना करके बाहर चले जाते हैं कि वे कन्या के लिये एक सुयोग्य वर की खोज में जा रहे हैं। नारद ने अपनी पोषिता कन्या को एक जादू की अंगूठी दे दी थी जिसे पहन लेने पर वह पुरुषों को एक सामान्य कन्या के रूप में न दिखाई देकर एक रत्नजटित मूर्ति के रूप में दृष्टिगोचर होगी। इस जादू का यह उद्देश्य था कि अवांछनीय सम्भाव्य कुदृष्टि कन्या के ऊपर न पड़े। रत्नखचित गुड़िया के स्वरूप में दृष्टिगोचर होने के कारण ही उसका नाम रत्नपापांचालिका पड़ गया था क्योंकि रत्नपांचालिका का अर्थ है रत्नखचित मूर्ति अथवा गुड़िया। रुक्मिणी के संरक्षण में रहते हुये एक दिन संयोगवश कुवलयावली अपनी सहेली चन्द्रलेखा के साथ राजप्रासाद के उपवन में चली गई जहाँ पर संयोगवश कृष्ण से उसकी भेंट हो गई जो काल-

यवन के विरुद्ध युद्ध करके वापस आया था और उस उपवन में सन्ध्यासमय का आनन्द ले रहा था। प्रारम्भ में कृष्ण ने समझा कि वह लड़की एक आश्चर्य-जनक मूर्ति है और उसकी समझ में यह बात न आई कि चन्द्रलेखा एक पागल की भाँति उस मूर्ति के साथ क्यों बातें कर रही थी।

तब उसके मन में सन्देह उत्पन्न हो जाता है। खेलकूद में संयोग-वश कुवलयावली के हाथ से अँगूठी अन्जान में गिर जाती है जिससे कृष्ण को उसके वास्तविक स्वभाव का पता लग जाता है और दोनों का पारस्परिक प्रेम आरम्भ हो जाता है। इसी बीच में बुलावे के कारण चन्द्रलेखा और कुवलयावली कृष्ण को उद्यान में अकेला छोड़कर वापस चली जाती हैं। जब कृष्ण वहाँ पर अपना समय व्यर्थ में व्यतीत कर रहा है और जादू की कन्या के विषय में सोच रहा है जो तत्काल वहाँ से चली गई थी। उसी समय उसे कुवलयावली की खोई अँगूठी मिल जाती है और जो पौराणिक कथा उस पर अंकित थी, उससे उसकी अँगूठी के गुणों तथा उसके उद्देश्य का उसे पता लग जाता है। इस बीच में कुवलयावली को इस बात का पता लग जाता है कि उसने अपनी अँगूठी को खो दिया है और वह उसकी खोज में फिर उस उपवन में दौड़कर आती है। कृष्ण उसे अँगूठी लौटा देता है। इन दो संयोगवश मिलन के फलस्वरूप दोनों के गुप्त मिलन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है और जब रुक्मिणी को इसकी सूचना मिलती है तब वह कुवलयावली को अपने ही प्रासाद के एक कक्ष में बन्द कर देती है। जब दानव को इसकी गन्ध मिलती है तब वह कुवलयावली को अपने ही प्रसाद के एक कक्ष ~~में बन्द कर देती~~ से बलात् भगा ले जाती है जिससे रुक्मिणी उसे वापस लेने के लिये कृष्ण की सहायता लेने को विवश हो जाती है। कृष्ण इस कार्य को अपने ऊपर ले लेता है और दानव से लड़ने के लिये चला जाता है। कृष्ण की अनुपस्थिति में नारद वापस आ जाते हैं और बातचीत के मध्य वे रुक्मिणी से कुवलयावली की वास्तविक कहानी के बारे में बताते हैं। जब दानव को परास्त करने के बाद

कृष्ण वापस आते हैं, तब रुक्मिणी नारद तथा अन्य लोगों की स्वीकृति से कुवलयावली को उपहारस्वरूप कृष्ण को भेंट करती है और उसे पत्नी के रूप में स्वीकार करने के लिये अनुरोध करती है।

कुवलयावली की कथावस्तु का मूल स्रोत एवं उसमें किये गये परिवर्तन -

कुवलयावली के द्वितीय अङ्क के पन्द्रहवें एवं तृतीय अङ्क के चतुर्थ श्लोक द्वारा ऐसा प्रतीत होता है कि कवि शिङ्गभूपाल ने रसार्णव सुधाकर की रचना के पूर्व कुवलयावली की रचना की थी। "अखण्डपरमानन्दवस्तुचमत्कारिणी कुवलयावली नाम नाटिका......" इन शब्दों द्वारा यह प्रमाणित होता है कि नाटिका के विषय में कवि के उच्च विचार हैं, जैसा कि सूत्रधार ने भी कहा है -

"पूर्णेयं शिङ्गभूपेन कथिता मधुकल्पितैः।
रत्नपाञ्चालिका नाम नाटिका रसपेटिका।।"

प्राचीन क्यूरेटर के पुस्तकालय में प्राप्त २०३३ नं० और २३६६ नं० की दोनों लिपियों द्वारा यह नाटिका तैयार की गई है। दोनों ही ग्रन्थ लिपि हैं। २३६६ नं० की पूरी लिपि है और २०३३ नं० प्रारम्भिक और अन्तिम भाग नष्ट हो चुका है। दोनों लिपियाँ दक्षिण ट्रावङ्कोर में प्राप्त हैं। सुचीन्द्रम् के निकट आश्रम के सुब्रह्मनियम शास्त्री के पुत्र अनन्तकृष्णशास्त्री के पास २०३३ नं० की लिपि है और कैप केमरिन के स्थानुसुब्रह्मनियमशास्त्री के पास २३६६ नं० की लिपि है। दोनोंलिपियाँ लगभग समान हैं। केवल पठन में थोड़ा सा अन्तर है।

कुवलयावली नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव -

कुवलयावली नाटिका के कथानक की रचना, उसके नारी पात्रों का ---- एवं प्राचीन साहित्य विषय पर दृष्टिपात करते समय स्वप्नवासवदत्ता के

साथ विशेष समानता दिखाई पड़ती है।

साहित्य एवं अलङ्कार की दृष्टि से इस नाटिका के बहुतायत श्लोक कालिदास के शाकुन्तल के श्लोकों का स्मरण दिलाते हैं। कुवलयावली की मुद्रिका के लिये कृष्ण का सङ्केत -

'निरयसि यन्मधुरगिरो लावण्यं मदनराज्यमुद्रायाः।
दुरितेन तेन मुद्रे स्वपदपरिभ्रंशमुपगता भवती ॥'[2]

शकुन्तला में दुष्यन्त के इन शब्दों से समानता रखता है - 'कथं नु तं बन्धुर-कोमलाङ्गुलिं.......... ' और स्वप्नवासवदत्तम् के 'श्रुतिसुखनिनदे कथं न देव्याः:...... ......' इन शब्दों सेभी काफी समानता है।

कुवलयावली के तृतीय अङ्क में और शकुन्तल के तृतीय अङ्क में शकुन्तला के शृङ्गारसंल्लाप में परिस्थितियों और भावनाओं में काफी समानता है।

शकुन्तला - (शकुन्तलाभ्युत्थातुमिच्छति)
सन्दष्टकुसुमशयनान्याशुक्लान्तबिसभङ्गसुरभीणि।
गुरुपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति ॥

....

अलमलमावेगेन नन्वयमाराधिता जनस्तव समीपे वर्तते।.........
(बलादेनां निवर्तयति)
शकुन्तला - पौरव, रक्ख अविणअं।' (Bombay Edition

....

....

'कुवलयावली - (शृङ्गारसाध्वसमुत्थातुं प्रयतते)
नायकः - (बलादेनां निवारयन्)
नहि वयमिदानीमुपचरणीयाः, किन्त्वस्माभिरेव,

कुवलयावली- मो मुंच अविणाअं रक्खेहि । ....

कुवलयावली नाटिका के द्वितीय अङ्क में नायक ने विदूषक के समक्ष कुवलयावली की मन: स्थिति का जो चित्रण किया है -' अभिलाषो वामाक्ष्या: प्रदीप इव यवनिकाप्रकाशाभ्याम् । मन्दाक्षमन्मथाभ्याम् न च प्रतीतो न चाप्रतीतश्च' इसी प्रकार का चित्रण शकुन्तला में भी किया गया है' विनयवारितवृत्तिरतस्तया न विवृतो मदनो न च संवृत: ।'

इसीप्रकार अन्य कई स्थलों पर भी इस कृति की अन्य कृतियों से समानता दिखाई पड़ती है ।

चन्द्रकला -

कथानक--प्रथमअङ्क -

चन्द्रकला नाटिका में सर्वप्रथम नान्दीपाठ होता है, तदनन्तर सूत्र-धार नटी को बुलाकर कहता है कि आज कविराज विश्वनाथ द्वारा रचित चन्द्रकला नाटिका का अभिनय निश्शङ्कभानुदेव एवं उनके साथ उपस्थित जन-समुदाय के प्रत्यक्ष किया जाना चाहिये । नटी वसन्तऋतु का गीत गाने के बाद एक गाथा प्रस्तुत करती है जिसका तात्पर्य है कि कुन्तलता का त्याग किये बिना ही भ्रमर आम्रमंजरी के रस का ग्रहण करना चाहता है । एवं सूत्रधार द्वारा सहमति का कथन किये जाने पर उनके कथन को दोहराते हुये महामन्त्री सुबुद्धि आते हैं ।

महामन्त्री सुबुद्धि को जब यह ज्ञात होता है कि प्राप्त हुई राजकुमारी (चन्द्रकला) के साथ जिसका विवाह होगा, लक्ष्मी स्वयं उसके पास जाकर उसको अभीष्ट वर प्रदान करेंगी तभी से महामात्य सुबुद्धि राजकुमारी के साथ चित्ररथदेव का विवाह करवाने का निश्चय कर लेते हैं । वे राजकुमारी को अपनी सम्ब-न्धिनी बताकर महारानी के संरक्षण में अन्त:पुर में रख देते हैं क्योंकि महा-मात्य को यह विश्वास था कि राजा उसके सौन्दर्य को देखकर आकर्षित हो

महामन्त्री सुबुद्धि को अपने इस उद्देश्य में सफलता मिलने लगती है। अन्त:पुर की विश्वस्त परिचारिका सुनन्दना द्वारा सुबुद्धि को यह ज्ञात होता है कि राजा चन्द्रकला पर अत्यधिक आसक्त हो चुके हैं और उसे प्राप्त करने के इच्छुक हैं। राजा और चन्द्रकला दोनों के मिलन का यह उपाय सोचा गया कि राजा जिस समय मनोरंजनार्थ प्रमदोद्यान में जाते हैं उसी समय सुनन्दना चन्द्रकला को लेकर प्रमदोद्यान में जाकर मिलन करा दे। सुनन्दना चन्द्रकला को लेकर प्रमदोद्यान में जाती है। उस समय सचमुच राजा उसके अङ्गलावण्य को देख कर अतिशय मुग्ध हो उठते हैं। चन्द्रकला राजा को देखने का अवसर प्राप्त कर उन पर अतिशय अनुरक्त हो उठती है। इतने में रानी की दासी रतिकला दोनों के मिलन में विघ्न उपस्थित कर देती है। सुनन्दना, और चन्द्रकला समीप में लता की ओट में छिप जाती हैं। रतिकला राजा को यह सन्देश देती है कि रानी वसन्तलेखा उन्हें बुला रही हैं। अन्त:पुर की अन्य परिचारिकायें भी इसी सन्देश के लिये राजा के पास भेजी जाती हैं। राजा रतिकला के साथ अन्तपुर की ओर चल पड़ते हैं और सङ्केत द्वारा चन्द्रकला को पुनर्मिलन की सूचना दे देते हैं।

द्वितीय अङ्क -

राजा अन्त:पुर से पुन: रानी के साथ प्रमदोद्यान में आते हैं। रानी राजा से वहाँ पर सायंकाल के समय चन्द्रमा-चन्द्रकिरण के साथ मिलन-महोत्सव कराने की इच्छा प्रकट करती है। इसी बीच एक बघेरा रानी को त्रस्त करता है। राजा रानी को अन्त:पुर भेजकर बघेरे को तीर चलाते हैं। बघेरा रूप-परिवर्तन करके मित्र रसालक का रूप धारण कर लेता है और राजा को प्रमदोद्यान के एकान्त स्थान पर चन्द्रकला के साथ मिलन कराने के लिये ले जाता है।

चन्द्रकला अपनी सखी सुनन्दना के साथ पहले ही प्रमदोद्यान में राजा से मिलने के लिये पहुँच जाती है। राजा के आगमन में देर होने से नायिका (चन्द्रकला) घबराने लगती है। इतने में राजा आ जाते हैं। वे नायिका की

विरह-दशा को छिपकर देखना अधिक उचित समझते हैं अत: राजा लता की ओट में से छिपकर देखते हैं। तदुपरान्त वे प्रत्यक्ष आकर चन्द्रकला को आश्वस्त करते हैं। इतने में विदूषक रानी के आगमन की सूचना देकर विघ्न उपस्थित कर देता है। घबराहट से चन्द्रकला की अंगूठी गिर जाती है। वह अपनी सखी के साथ चली जाती है। महाराज अंगूठी विदूषक को संभाल कर रखने के लिये देते हैं। इतने में रानी आ जाती हैं। वह बंधेरे को मारने की खुशी में राजा का स्वागत करती है और विदूषक को गले का हार देती है। विदूषक खुशी में अंगूठी भी पहन लेता है। रानी अंगूठी पहचान लेती हैं और क्रोधित होकर राजा के मनाने पर भी चली जाती हैं। महाराज विदूषक को उसकी गल्ती बताते हैं और विदूषक रानी को प्रसन्न करने की प्रतिज्ञा करता है।

तृतीय अङ्क --

रानी ने चन्द्रकला को सुनन्दना के घर छिपा दिया है ऐसा विदूषक को ज्ञात होने पर वह सुनन्दना की सहायता से प्रमदोद्यान में चन्द्रकला और राजा के मिलन की योजना बनाता है किन्तु दुर्भाग्यवश वह रानी की विश्व-सनीय परिचारिका माधविका को इस योजना से अवगत करा देता है। राजा जब प्रमदोद्यान में जाकर वहाँ पर चन्द्रकला को नहीं पाते तो वे उन्मत्त विरही की भाँति प्रलाप करते हैं। इतने में मित्र रसालक प्रमदोद्यान के मणि-मण्डप में चन्द्रकला के आगमन की सूचना देता है। राजा का चन्द्रकला से मिलन होता है किन्तु इसी बीच राजा का पीछा करती हुई रानी भी अपनी सखियों के साथ वहाँ पहुँच जाती है। और विदूषक एवं सुनन्दना को बाँध कर ले जाती है एवं चन्द्रकला कारागार में डाल देती है। राजा अत्यन्त दु:खी होकर अकेले राजमहल में लौट जाते हैं।

चतुर्थ अङ्क :--

चन्द्रकला के बन्दी बनाये जाने के दु:ख से राजा अत्यन्त व्याकुल रहने लगते हैं। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर रानी के पितृगृह पाण्ड्यप्रदेश से दो बन्दीगण राजा के पास समाचार लेकर आते हैं। अपने पितृगृह का समाचार सुनने के लिये व्याकुल रानी विदूषक को बुलाकर पुरस्कृत करती है और विदूषक से राजा के साथ बन्दीगण से मिलने की प्रार्थना करती है। विदूषक द्वारा निवेदित किये जाने पर राजा रानी की प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं और रानी तथा विदूषक के साथ मणिमन्दिर में बन्दीगण से मिलते हैं। बन्दीगण समाचार सुनाते हैं -- पाण्ड्य देश के राजा की छोटी कन्या मनोरंजनार्थ विहार के लिये निकली थी। मार्ग भूल जाने से अरण्य में वह भटक गई। शबरराज ने उसे विन्ध्यवासिनी देवी की बलि के लिये उपयुक्त समझ कर बन्दी बना लिया। कृष्णाचतुर्दशी की रात्रि को देवी के मन्दिर में बलि देने के लिये खड्ग उठाते ही सेनापति विक्रमाभरण के एक सैनिक ने शबरराज का वध करके उस निरपराध कन्या को लेकर सेनापति विक्रमाभरण को सौंप दिया। विक्रमाभरण ने उस कन्या को महामन्त्री सुबुद्धि को सौंप दिया और सुबुद्धि ने उसे आपके संरक्षण में सौंप दिया है। कन्या के भाग्यवती होने के कारण राजा उसका विवाह अपने जामाता चित्ररथदेव से ही करना चाहते हैं। अत: महारानी की सम्मति होने पर आप उस कन्या के साथ पाणिग्रहण कर लें।

महाराजा और महारानी दोनों जब इस समाचार को सुनते हैं तो महामन्त्री सुबुद्धि को अन्त:पुर में बुलवाया जाता है। महामन्त्री सुबुद्धि बताते हैं कि जब सेनापति विक्रमाभरण ने यह कन्या सुबुद्धि को सौंप दी थी तभी सुबुद्धि को यह दिव्य वाणी सुनाई दी थी कि जिसका इस कन्या के साथ पाणिग्रहण होगा, महालक्ष्मी स्वयं आकर उसको अभीष्ट वर प्रदान करेंगी। अत: मैंने उसको अपनी सम्बन्धिनी बताकर महारानी के संरक्षण में रख दिया था।

महारानी समस्त घटना को सुन लेने पर चन्द्रकला को वहाँ पर बुलवाती हैं। बन्दीगण उसे पहचान लेते हैं। पाण्डयराज की द्वितीय कन्या चन्द्रकला के ऊपर किये गये कठोर व्यवहार पर पश्चाताप करती हुई महारानी बसन्तलेखा महाराज और चन्द्रकला का पाणि-ग्रहण करा देती हैं। जैसे ही विवाह सम्पन्न होता है तुरन्त महालक्ष्मी प्रकट होकर सभी को दर्शन देती है और राजा को अभीष्ट वर प्रदान करती हैं। इस प्रकार भरतवाक्य के साथ नाटिका समाप्त हो जाती है।

चन्द्रकला की कथावस्तु का मूल स्रोत एवं उसमें किये गये परिवर्तन —

चन्द्रकला नाटिका के कथानक का कोई ऐतिहासिक या पौराणिक स्रोत स्थापित करना निराधार कल्पना है। इस नाटिका की कथावस्तु कवि कल्पित है। नाटिका के कल्पित कथानक को ही प्रस्तुत करने में आचार्य विश्वनाथ प्रयत्नशील रहे। अतः इस नाटिका के कथानक का कोई ऐतिहासिक या पौराणिक आधार नहीं मानना चाहिये। आचार्य विश्वनाथ जिन भानुदेव राजा के आश्रित थे और सभापण्डित थे, यदि हम इस नाटिका के नायक चित्ररथदेव की तुलना, उन भानुदेव से करें तो भानुदेव की पत्नी रत्नजुला देवी पाण्ड्य (उड़ीसा) देश की ही थीं या नहीं, यह निश्चित न होने के कारण इस कथानक को ऐतिहासिकता सिद्ध करना एक दुरारूढ़ कल्पना होगी। इस प्रकार यदि हम इसके उत्पाद्य कथानक को स्वीकार नहीं करते तो हम इसके अन्य स्वरूप को भी नहीं स्पष्ट कर सकेंगे। क्योंकि सेनापति के विक्रमाभरण या सुबुद्धि के अभिधानों को भी प्रतीक मानकर उनको स्पष्ट करना होगा। इस प्रकार चन्द्रकला नाटिका की कथावस्तु के मूल-स्रोत एवं मूलस्रोत में किये गये परिवर्तन के विषय में कुछ निश्चयपूर्वक कहना युक्तिसंगत न होगा। इसकी कथावस्तु को शास्त्रीय नियमानुसार कल्पित रखा गया है ऐसा स्वीकार कर लेना ही अधिक उचित होगा।

चन्द्रकला नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव -

चन्द्रकला नाटिका की कथावस्तु पर रत्नावली, स्वप्नवासवदत्त एवं मालविकाग्निमित्र आदि पूर्ववर्ती रचनाओं का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। इस नाटिका में घटित घटनायें, कहीं मालविकाग्निमित्र के, कहीं स्वप्नवासवदत्त के तो कहीं रत्नावली या प्रियदर्शिका में घटित घटनाओं के आस पास मंडराती रहती हैं।

'मालविकाग्निमित्र' का अनुकरण करते हुये विरहीजन की करुणादशा का वर्णन किया गया है और वसन्त के सारे आलम्बन और उद्दीपन बताये गये हैं। चन्द्रिका का भी वर्णन किया गया है किन्तु पात्रों के व्यवहार अधिक प्रभावशाली नहीं बन सके।

'विक्रमोर्वशीय' के पुरुरवा प्रलाप की अनुकृति करते हुये इस नाटिका में राजा के विरह-प्रलाप का वर्णन किया गया है।

'रत्नावली' में जिस प्रकार 'वानर प्रसङ्ग' की उद्भावना की गई है उसी प्रकार प्रस्तुत नाटिका में 'तरङ्ग प्रसङ्ग' की कल्पना की गई है किन्तु इस अनुकरण में नाटिकाकार को अधिक सफल नहीं कहा जा सकता क्योंकि नकली तरङ्ग को भी महारानी पहचान नहीं पातीं। इस नाटिका की प्रस्तावना भी रत्नावली नाटिका की तरह रखी गई है। इस नाटिका की नायिका 'चन्द्रकला' 'रत्नावली' की नायिका रत्नावली की भाँति और 'वासवदत्ता' की नायिका वासवदत्ता की भाँति अन्तःपुर में रही और वहीं पर राजा और नायिका का अनुराग हुआ। किन्तु तरङ्ग प्रसंग की कल्पना, राजा और नायिका का अनुराग आदि इन सब बातों को यदि हम रत्नावली आदि नाटिकाओं का अनुकरण न कहकर नाट्यशास्त्रीय लक्षणानुसारी कहें तो अधिक तर्कसङ्गत होगा - 'अन्तपुरादिसम्बन्धादासन्ना श्रुतिदर्शनैः।' दशरूपक प्रकाश। रत्नावली की नायिका के लिये सिद्ध पुरुष द्वारा घोषणा की गई है कि इसके साथ पाणिग्रहण करने वाला चक्रवर्ती राजा होगा, चन्द्र-

कला नाटिका में नायिका के लिये यस्तु भूमिपतिर्भूमौ .... प्रदास्यति ऐसी आकाशवाणी की गई है । दोनों नायिकाओं के महत्व के कथन में अन्तर है । इसी प्रकार दोनों नाटिकाओं में वानर और तरक्षु की जो घटना उपस्थित की गई है, उसके कारण और कार्य काफी अन्तर है । रत्नावली में द्वितीय अङ्क में सागरिका अपनी सुसङ्गता के साथ वार्तालाप करती रहती है । तभी बन्दर बन्धन तोड़कर उन दोनों की ओर भागता है । वे दोनों वहाँ से भाग जाती हैं । इतने में राजा और विदूषक का प्रवेश होता है । इस प्रकार की घटना तरक्षु के आगमन की भी है किन्तु वहाँ पर नायिका के स्थान पर महारानी स्वतः अपनी सखियों के साथ भयभीत होकर पलायन कर जाती हैं । राजा तरक्षु को मारने की तैयारी करता है । अतः रत्नावली में बन्दर की घटना सहज है और चन्द्रकला में तरक्षु की घटना रहस्यात्मक है ।

इस प्रकार रत्नावली, मालविकाग्निमित्र विक्रमोर्वशीय आदि पूर्ववर्ती कृतियों का प्रभाव इस नाटिका पर अवश्य पड़ा है किन्तु यदि हम इस कृति को नाट्यशास्त्रीय लक्षणानुसारी भी कहें तो यह कथन अनुचित न होगा ।

चन्द्रकला नाटिका में दोष -

चन्द्रकला नाटिका की नायिका मालविकाग्निमित्र की तरह नृत्य-विशारदा, स्वप्नवासवदत्तम् की तरह वीणावादन-कुशला या रत्नावली की तरह चित्रकर्मविशारदा नहीं है ।

नाटिका में सर्वत्र शास्त्रीय लक्षणों के अनुसरण करने के उद्योग में उनकी नाटिका रत्नावली आदि कृतियों के आसपास मंडराती रह जाती है और विश्वनाथ जी की मौलिकता समाप्त सी होने लगती है ।

रत्नावली में 'वानर प्रसङ्ग' की तरह तरङ्ग प्रसङ्ग की जो कल्पना की गई है उसे तर्कसङ्गत नहीं माना जा सकता क्योंकि महारानी होकर भी तरङ्ग को नहीं पहचान पाती हैं।

महारानी अपनी ही छोटी बहन को नहीं पहचान पातीं जबकि पितृगृह से आने वाले बन्दीगण चन्द्रकला को तुरन्त पहचान लेते हैं।

इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ की यह कृति कई स्थलों पर मौलिकता एवं नूतनता से विहीन हो गई है। कथानक के सङ्गठन में भी अनेक स्थलों पर त्रुटियाँ प्रतीत होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कृति को नाट्यशास्त्रीय लक्षणानुसारी बनाने की ओर विश्वनाथ जी का अध्यान अधिक रहा है अत: उसकी मौलिकता में कमी आ गई है।

मृगाङ्कलेखा –

कथानक –

मृगाङ्कलेखा नाटिका में कलिङ्गराज कर्पूरतिलक और कामरूपेश्वर की तनजा मृगाङ्कलेखा के प्रणय-व्यापार का वर्णन कवि विश्वनाथ द्वारा किया गया है। राजा कर्पूरतिलक को इस नाटिका के प्रधान नायक के रूप में कल्पित किया गया है। वह शृङ्गारिक चेष्टाओं से युक्त होने के कारण धीरललित रूप में वर्णित हैं। देवी विलासवती राजा की अग्रमहिषी हैं। राजा का प्रधान अमात्य रत्नचूड सिद्ध के कथनानुसार कामरूपेश्वर की तनजा मृगाङ्कलेखा को सार्वभौमपतिका समझकर अपने नायक कर्पूरतिलक से मिला देना चाहता है। राजा की सिद्धयोगिनी नाम की हितकारिणी परिव्राजिका नायिका को राजा के अन्त:पुर में ले जाती है। वहाँ पर नायक और नायिका दोनों परस्पर प्रणय-पाश में बँध जाते हैं। नायिका का अपनी सखियों के साथ नायक से मिलते रहने के कारण यह अनुराग दिन-प्रतिदिन अभिवर्द्धित होता जाता है।

तदुपरान्त दानवाधिप शङ्खपाल मृगाङ्कलेखा का अपहरण करके उसको श्मशान में अपने कालिकायतन में रख देता है। उसके विरह में क्षुब्ध हृदय वाला राजा अपने प्राण-त्याग की इच्छा से श्मशान जाता है। वहाँ पर उदार जादूगर की सहायता से राजा उस दानवाधिप को मारकर मृगाङ्कलेखा को लेकर लौट जाता है। दूसरी बार शङ्खपाल का भाई जङ्गली हाथी के रूप में पुनः आक्रमण करता है किन्तु राजा उसे भी पराजित कर देता है।

इसी अन्तराल में कामरूपेश्वर कलिङ्गराज कर्पूरतिलक के पास आते हैं। कामरूपेश्वर मृगाङ्कलेखा को पहचान लेते हैं। सब लोग परस्पर मिलकर प्रसन्न होते हैं। भरत वाक्य के साथ नाटिका समाप्त हो जाती है।

मृगाङ्कलेखा नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव -

विश्वनाथ जी की यह कृति हर्ष की रत्नावली कालिदास के मालविकाग्निमित्र, राजशेखर की कर्पूरमंजरी, भवभूति के मालती-माधव आदि कृतियों के अनुकरण पर आधारित है। शङ्खपाल के भाई गजेन्द्र का हाथी के रूप में भागना रत्नावली के वानर-प्रसङ्ग से समानता रखता है।

मृगाङ्कलेखा नाटिका में दोष -

विश्वनाथ जी की यह कृति अन्य कृतियों पर अधिकांशतः आधारित होने से पूर्णतः मौलिक नहीं है।

रचना च प्रायो निरूपकरचनाभिनिवेश समानकारा प्रतिभाति।

अधिकांश स्थलों पर कवि की नाट्य-रचना चातुरी में अकुशलता प्रतीत होती है।

नवमालिका -

कथानक - विश्वेश्वर-विरचित नवमालिका नाटिका में अवन्तिदेश के राजा विनयसेन के साथ अङ्गराज-हिरण्यवर्मन की पुत्री नवमालिका के परिणय का

वर्णन है। नाटिका की कथावस्तु कविकल्पित है।

प्रथम अङ्क - राजा विजयसेन का मन्त्री नीतिनिधि दिग्विजय के लिये जाता है। वह दण्डक वन में दो सखियों के साथ आई हुई नवमालिका को देखता है। वह उसको अवन्तिदेश में लाता है। राजा के सार्वभौमत्व की इच्छा से नवमालिका में तीनों लोकों की सम्राज्ञी के लक्षणों को देखकर वह उसको सखियों के साथ पट्टमहिषी चन्द्रलेखा के संरक्षण में अन्त:पुर में रख देता है।

रानी चन्द्रलेखा नवमालिका के लोकोत्तर सौन्दर्य से आकर्षित होकर राजा की दृष्टि से नवमालिका को छिपाकर रखती है। किसी समय राजा विदूषक के साथ उपवन में घूमती हुई रानी चन्द्रलेखा से मिलने जाता है। राजा के नवमालिका का दर्शन न हो सके अत: रानी चन्द्रलेखा उसको छिपाने की इच्छा से अपने पीछे करके चन्द्रिका नाम की दासी को आदेश देती है कि वह नवमालिका को कहीं अन्यत्र ले जाय, परन्तु देवी के नासिका-रत्न में नवमालिका के प्रतिबिम्ब को देखकर राजा उसके प्रति आसक्त हो जाता है।

द्वितीय अङ्क -

नाटिका के द्वितीय अङ्क में राजा नवमालिका के प्रेम में उन्मादित रहता है। वह विदूषक और सारसिका से अपनी वियोगावस्था का चित्रण करता है। देवी चित्रफलक की रखवाली के लिये नवमालिका को चन्द्रिका के साथ भेजती है।

तृतीय अङ्क -

तृतीय अङ्क में नवमालिका और राजा का मिलन होता है। देवी वहाँ जाकर नवमालिका और राजा के प्रणय व्यापार को देखकर क्रोधित होती है। राजा देवी से क्षमा-याचना करता है किन्तु देवी चन्द्रिका के साथ नवमालिका को कारागार में डाल देती है।

चतुर्थ अङ्क --

चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में अङ्गराज हिरण्यवर्मण का सुमति नाम का अमात्य आकर देवी और राजा को यह सूचना देता है कि अङ्गराज की महिषी के एक कन्या ने जन्म लिया था किन्तु वह मन्दाकिनी के तट पर सखियों के साथ खेलती हुई किसी राक्षस द्वारा कहीं ले जाई गई । इस समय अङ्गराज के घर में एक पुत्र उत्पन्न हुआ है ।

तदुपरान्त कंचुकी के प्रवेश द्वारा प्रभाकर नाम के किसी तपस्वी के आगमन की सूचना दी जाती है । वह तपस्वी राजा को एक दिव्य-रत्न प्रदान करते हुये कहता है - इस रत्न के द्वारा राक्षसों आदि के उत्पात असफल हो जाते हैं । वह किसी समय दण्डक वन में तपस्या कर रहा था । उसी समय उस रत्न के प्रभाव से किसी राक्षस के द्वारा अपहरण की गई तीन कन्यायें नीचे दण्डकारण्य की भूमि में गिर पड़ीं जो नारी पति-प्रतिकूला होती है वह उस रत्न को नहीं उठा सकती । महिषी चन्द्रलेखा कौतूहलपूर्वक उस रत्न को उठाने का प्रयास करती है किन्तु असफल होकर अत्यन्त लज्जा का अनुभव करती है । वह उस दोष को दूर करने के लिये राजा का विवाह नवमालिका के साथ कर देती है ।

चन्द्रिका और सारसिका नाम की सखियों के साथ नवमालिका अङ्गराज हिरण्यवर्मण के अमात्य सुमति को पहचान लेती है । सुमति भी नव-मालिका को पहचान कर राजा से कहते हैं - यही नवमालिका राजा हिरण्यवर्मण की खोई हुई कन्या है । देवी चन्द्रलेखा नवमालिका से क्षमा माँगती है । नीति-निधि नवमालिका की उपलब्धि का वृत्तान्त बताता है । भरतवाक्य के साथ नाटिका समाप्त हो जाती है ।

मलयजा० के कथानक का मूल स्रोत एवं आख्यान में किये गये परिवर्तन -

प्रस्तुत नाटिका का आधार सम्भवत: तेलङ्गाना या तोण्डीर देश में प्रचलित लोककथा है । नाटिका में तोण्डीर तथा सतियपुर का उल्लेख भी है वैसे नाटिका की कथावस्तु कवि-कल्पित ही मानना चाहिये ।

मलयजा० नाटिका पर अन्य कृतियों का प्रभाव -

प्रस्तुत नाटिका पर रत्नावली, प्रियदर्शिका आदि नाटिकाओं का प्रभाव परिलक्षित होता है ।

इसके अतिरिक्त कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् तथा अभिज्ञान शाकुन्तलम् का भी स्पष्ट प्रभाव है ।

भाषा के प्रयोगों पर भवभूति की भाषा का प्रभाव है जो उनकी कृतियों के व्याख्यान और अनुशीलन के परिणाम के अतिरिक्त लेखक की गम्भीर प्रकृति का भी परिचय देता है ।

भवभूति की दीर्घसमासावली का अनुसरण करने की अपेक्षा उसके भावगाम्भीर्य का अनुसरण किया गया है ।

इसके अतिरिक्त मणिमाला, श्रीकृष्णलीला, वनमाला आदि नाटिकायें अनुपलब्ध होने के कारण उनके कथानक का विवेचन नहीं किया जा सकता । नाटिका-साहित्य में समस्त नाटिकाओं के कथानक का स्वरूप लगभग एक जैसा ही है । नाटिकाकारों ने कहीं-कहीं केवल अपनी लेखन-शैली द्वारा परिवर्तन कर दिया है । रत्नावली की नायिका पोत-भङ्ग हो जाने से कौशाम्बी लाई गई है तो चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला अरण्य में मार्ग भूल जाती है और शबरराज द्वारा उसकी बलि चढ़ाये जाते समय विक्रमाभरण का सैनिक उसकी रक्षा करके विक्रमाभरण को सौंप देता और विक्रमाभरण उसे अन्त:पुर में रख देता है । इस प्रकार समस्त नाटिकाओं के कथानक का स्वरूप एक जैसा ही है ।

अध्याय --४

'सन्धि सन्ध्याङ्गादि का विवेचन'

संस्कृत उपरूपकों का आश्रय रस है । नाटिकाओं में रस की अभिव्यक्ति के लिये किसी सरस कथा का सहारा लिया जाता है । उसके कथानक तथा व्यापार को गति और सहृदय की सरसता को बनाये रखने के लिये कथानक के क्रमिक विकास की ओर नाटिकाकार को ध्यान देना आवश्यक होता है । रस और कथानक के सम्यक् विकास के प्रयोजन से नाटिकाकारों के मार्ग प्रदर्शन के लिये नाटिका में नान्दी सूत्रधार, प्रस्तावना, अर्थ प्रकृति, कार्यावस्था और सन्धि तथा सन्ध्यङ्गों का सन्निवेश किया गया है जिससे नाटिकाकार उनका ज्ञान प्राप्त करके रसाभिव्यक्ति के लिये उनका यथोचित सन्निवेश कर सकें ।

रत्नावली - नान्दी -

नाटिका आरम्भ करने के पूर्व उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिये आशीर्वाद के वचनों से युक्त देवता आदि की जो स्तुति की जाती है उसे नान्दी कहते हैं ।[१] अलङ्कार-ज्ञाताओं के अनुसार नान्दी में नाटिका के कथानक की संक्षिप्त सूचना दी जानी चाहिये । किन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार

---

१. आशीर्वचन संयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते । देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता, ।। सा०द० ।

नान्दी के कथानक की संक्षिप्त सूचना देना नाटिकाकार की स्वतन्त्रता पर है। यह ८, १२, ८ और २२ पंक्तियों की होनी चाहिए,

रत्नावली नाटिका के प्रथम नान्दी श्लोक `पादाग्रस्थितया....` में कथानक के प्रथम अङ्क की सूचना दी गई है। नायिका राजा को छिपकर देखती है और पुष्पों द्वारा दूर से उनकी आराधना करती है क्योंकि रानी ईर्ष्यावश मदनमहोत्सव के स्थान पर आने के लिए मना कर दी गई है। द्वितीय नान्दी श्लोक `औत्सुक्येन कृतत्वरा.....` राजा के प्रेम में सागरिका की उत्सुकता को सूचित करता है। सागरिका का लज्जित होना, भयभीत होना, राजा द्वारा प्रथम स्पर्श आदि समस्त सूचनायें द्वितीय नान्दी श्लोक में हैं। तृतीय नान्दी श्लोक `सम्प्राप्ते......` में वासवदत्ता के क्रोध का वर्णन है उस (क्रोध का कारण राजा का सागरिका के प्रति प्रेम है। `क्रोधद्वैः.........` आदि नान्दी श्लोक में तृतीय और चतुर्थ दोनों अङ्क, की सूचना दी गई है - वासवदत्ता का क्रोधित होना सागरिका, सुसंगता और विदूषक का भयभीत होना राजा द्वारा वासवदत्ता को प्रसन्न किया जाना, सागरिका का विलाप, जादूगर द्वारा अग्नि-काण्ड का उपस्थित किया जाना आदि सूचनायें हैं। `जितमुडुपतिना ........` आदि श्लोक में युद्ध में कोसलराजा के साथ वत्सराज की विजय सागरिका के साथ पाणिग्रहण बताया गया है।

सूत्रधार -

सूत्रधार वह प्रमुख नट होता है जो किसी रूप का रंगमंच पर दिखलाने का प्रबन्ध करता है। नान्दी-श्लोकों के पूर्व रङ्गमंच पर सूत्रधार की उपस्थिति होने पर उसे `नान्दी सूत्रधार` कहते हैं और प्रस्तावना में सूत्रधार की उपस्थिति होने पर उसे `स्थापना -सूत्रधार` कहते हैं। संस्कृत नाटिकाओं में सूत्रधार केवल प्रस्तावना में आता है। यह अभिनेय रचना और नाटककार का परिचय

लेता है और नटी या विदूषक के साथ वार्तालाप में ऐसा अवसर उपस्थित कर देता है कि जिससे मंच पर किसी मुख्य पात्र के प्रवेश की अथवा नाट्य सम्बन्धी किसी घटना की सूचना मिल जाती है।

रत्नावली नाटिका में सूत्रधार के 'सूत्रधार:- ((आर्ये एष मम यवीयान्भ्राता गृहीत यौगन्धरायणभूमिक: प्राप्त एव। तदेहि। आवामपि नेपथ्यग्रहणाय सज्जीभवाव:।' इन शब्दों से यौगन्धरायण के प्रवेश की सूचना दी जाती है।

प्रस्तावना -

जहाँ नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक सूत्रधार के साथ अपने कार्य के विषय में निर्विघ्न विचित्र वाक्यों से इस प्रकार बातचीत करे जिससे प्रस्तुत कथा का सूचन हो जाय, उसे प्रस्तावना (आमुख, स्थापना) कहते हैं। प्रस्तावना के तीन स्वरूप हैं - प्रयोगातिशय, कथोद्घात और प्रवर्तक।

जब नाटिका सम्बन्धी कथा की सूचना दी जाय तो कथोद्घात नामक प्रस्तावना होती है। संस्कृत नाटिकाओं में अधिकांशत: कथोद्घात प्रस्तावना ही है।

रत्नावली नाटिका में यौगन्धरायण सर्वप्रथम 'एवमेतत् क: सन्देह:' यह कहते हुये सूत्रधार के वचनों को प्रमाणित करता है और शीघ्र ही सूत्रधार के 'द्वीपादन्यस्मात् ....' आदि वचनों को कहता हुआ रङ्गमंच पर प्रवेश

---

१. सूचयेत् वस्तु बीजं वा मुखं पात्रमथापि वा। दश रू० ३।३१

२. सूत्रधारो नटीं ब्रूते मारिषं व विदूषकम् १३।६१ दशरूपक।
स्वकार्यप्रस्तुताक्षेपिचित्रोक्त्यायत्तदामुखम् ।। प्रस्तावना वा -शे०

करता है । अतः कथोद्घात नामक प्रस्तावना है ।

अर्थ प्रकृति –

कार्य(प्रयोजन) की अपेक्षा में बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य इन पाँच को अर्थप्रकृति माना जाता है ।[1]

कार्य का हेतुभूत जो कुछ थोड़ा सा कह दिया जाता है, बीज के समान अनेक प्रकार से विस्तार वाला होता है, इसलिये बीज कहलाता है ।[2] रत्नावली नाटिका में सागरिका-प्राप्ति रूप कार्य का हेतु विष्कम्भक में उपनिबद्ध 'द्वीपाद-न्यस्मादु' से लेकर 'प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनः' इत्यादि में कहा गया योगन्धरायण का व्यापार बीज है ।

अवान्तर प्रयोजन की समाप्ति कर छिन्न भिन्न होती हुई कथा को जोड़ने वाले भाग को बिन्दु कहते हैं ।[3] रत्नावली में प्रथम अङ्क में कामदेव पूजन की समाप्ति पर कथा विच्छिन्न हो जाती है परन्तु 'उदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते' से लेकर 'कथं अयं सो राजा उदअणो जस्स अहं तादेण दिण्णा' (पृ० ३८) तक का भाग सागरिका के हृदय में प्रथमानुराग का हेतु होकर कथा को फिर से जोड़ देता है इसलिये यह बिन्दु हुआ ।

रत्नावली में पताका नहीं है ।

प्रसङ्गात तथा एकदेशस्थित चरित्र को प्रकरी[4] कहते हैं । रत्नावली में विजय वर्मा द्वारा वर्णित समण्वान् को कोसलच्छेद प्रकरी कहते हैं ।

---

१. बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः ।
अर्थप्रकृतयः पंच ता एताः परिकीर्तिताः ।। १८ ।। दश०रु०

२. स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा । दश०रु० ।

३. अवान्तरार्थविच्छेदे बिन्दुरच्छेदकारणम् ।। १।१७।१

४. सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च पदेशभाक् ।। दश०रु० ।। १।१३।१

जो प्रधान साध्य है, सब उपायों का आरम्भ जिसके लिये किया गया है, जिसकी सिद्धि के लिये सब समापन इकट्ठा हुआ है उसे कार्य कहते हैं।[१] जैसे रत्नावली नाटिका में वत्सराज और सागरिका का मिलन ही प्रधान साध्य है।

अवस्था -

फलार्थी द्वारा प्रारब्ध कार्य की पाँच अवस्थायें होती हैं - आरम्भ, प्रयत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, फलागम।[२]

कार्य की पहली अवस्था आरम्भ होती है जिसमें फलप्राप्ति की इच्छा प्रकट की जाती है[३]। रत्नावली में प्रारम्भेऽस्मिन् स्वामिनो वृद्धिहेतौ इत्यादि से यौगन्धरायण के द्वारा का आरम्भ दिखाया जाता है।

फल की प्राप्ति न होने पर उसे प्राप्त करने के लिये जो उपाय किये जाते हैं उसे प्रयत्न कहते हैं[४]। रत्नावली में वत्सराज से मिलन का उपाय सागरिका द्वारा उदयन का चित्र-लेखन प्रयत्न है।

कार्य की वह अवस्था जब उपाय और विघ्न की आशङ्का होने पर फलप्राप्ति होना सम्भव हो जाय, प्राप्त्याशा कहलाती है[५]। रत्नावली में तृतीय अङ्क में वेष-परिवर्तन करके अभिसरण आदि उपाय होने पर वासवदत्ता के रूप में विघ्न की आशङ्का एव्वं णेदं जइ अआलवादावली भविअ न आआदि देवी वासवदत्ता (पृ० १२२) विदूषक के इस वचन से दिखलाई गई है इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है।

---

१. कार्यं त्रिवर्गस्तच्छुद्धमेकानेकानुबन्धि च ।। १।१६।१ दश०

२. अवस्थाः पंच कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।

आरम्भयत्नप्राप्त्याशानियताप्तिफलागमाः ।। १।१६।। दश०

३. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे।

४. प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः ।।१।२०।

जब अपाय के दूर हो जाने पर फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है, कार्य की वह अवस्था `नियताप्ति` कहलाती है ।[1] धनिक के अनुसार रत्नावली के तृतीय अङ्क में विदूषक के `साअरिआ उण दुक्करं जीविस्सदि` (पृ० ११६) इस वचन से लेकर राजा की `देवीप्रसादं मुक्त्वा नान्यमत्रोपायं पश्यामि` (पृ० ११८) इस उक्ति तक के भाग में देवी रूपी विघ्न (अपाय) के प्रसादन द्वारा निवारण से फलप्राप्ति की सुनिश्चितता सूचित हो रही है, इसलिये यह कार्य की नियताप्ति अवस्था है ।

जब समग्र फलप्राप्ति हो जाय, कार्य की उस अवस्था को फलागम या फलयोग कहते हैं ।[2] रत्नावली में सागरिका लाभ द्वारा चक्रवर्तित्व प्राप्ति की सूचना वासवदत्ता की उक्ति `अज्जउत्त पडिच्छ एदं` (पृ० १७२) से लेकर यौगन्धरायण की `इदानीं सफलपरिश्रमो ऽस्मि संवृत्त:` (पृ० १७२) इस उक्ति तक के भाग में मिलती है, इसलिये यह कार्य की फलागम अवस्था है ।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग -

नाट्य-शरीर का पाँचों अर्थप्रकृति और पाँचों अवस्थाओं के सम्मिश्रण द्वारा सन्धि नामक तीसरे प्रकार का वर्गीकरण किया गया है । एक सन्धि में एक प्रयोजन से अन्वित कथांशों का अवान्तर प्रयोजन से सम्बन्ध होता है । सन्धि पाँच प्रकार की होती है - मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण सन्धि ।[3]

इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्रियों ने पाँचों सन्धियों के भी सूक्ष्म विभाग किये हैं जिन्हें सन्ध्यङ्ग कहते हैं । इनकी संख्या ७४ है ।

---

१. अपायाभावत: प्राप्तिर्नियताप्ति: सुनिश्चिता ।। १।२१ । १ दशरूपक

२. समग्रफलसंपत्ति: फलयोगो यथोदित: ।

३. अर्थप्रकृतय: पंच पंचावस्था समन्विता: ।।१।२२।। दशरूपक
यथा संख्येन जायन्ते मुखाद्या: पंच संधय: ।
अन्तरैकार्थसम्बन्ध:संधिरेकान्वये सति ।। १।२३।। दशरूपक
मुखप्रतिमुखे गर्भ: सावमर्शोपसंहृति: ।

मुखसन्धि –

मुखसन्धि में नाना प्रकार के रस को उत्पन्न करने वाली बीजोत्पत्ति पाई जाती है ।[१] (डी०आर०) (जहाँ अनेक अर्थ और अनेक रसों के व्यंजक बीज (अर्थ प्रकृति विशेष) की आरम्भ नामक दशा के साथ संयोग से उत्पत्ति हो उसे मुखसन्धि कहते हैं स०औ०) । रत्नावली नाटिका में विष्कम्भक में यौगन्धरायण के 'प्रभुत्व । क:सन्देह.........' इत्यादि (पृ० १०) इस वचन से लेकर द्वितीय अङ्क में कदली-गृह में चित्रफलक और लेखन-सामग्री लेकर गई हुई सागरिका के चित्र बनाकर वत्सराज के दर्शन के प्रयत्न से पहले तक 'मुख' सन्धि है ।

मुखसन्धि में बीज के आरम्भ के लिये प्रयुक्त द्वादश अङ्ग होते हैं - उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान, परिभावना, उद्भेद भेद तथा करण ।

रूपक के आरम्भिक अंश में जब कवि बीज का न्यास करता है तो उसे उपक्षेप कहते हैं ।[२] रत्नावली नाटिका में मंच पर प्रवेश करने के पहले ही यौगन्धरायण अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है । यौगन्धरायण का कार्य वत्सराज उदयन तथा रत्नावली को मिला देना है तथा वह इनके मिलाप के लिये व्यापार में संलग्न है, जिसमें दैव की अनुकूलता भी प्राप्त है । इस बीज रूप व्यापार की सूचना यौगन्धरायण ने निम्ननेपथ्योक्ति द्वारा दी है –

'द्वीपादन्यस्मादपि मध्यादपि जलनिधेर्दिशोऽप्यन्तात्
आनीय झटिति घटयति विधिरभिमतमभिमुखीभूत: ।।

---

१. मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा ।। १।२४। द०रू०
अङ्गानि द्वादशैतस्य बीजारम्भसमन्वयात् ।

२. बीजन्यास उपक्षेप: - द०रू०

जब बीजन्यास का बाहुल्य पाया जाय तो उसे परिकर या परिक्रिया कहते हैं। रत्नावली नाटिका में यौगन्धरायण अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है। इसकी सूचना यौगन्धरायण की इन उक्तियों से होती है - अन्यथा सिद्धादेशप्रत्ययप्रार्थितायाः सिंहलेश्वरदुहितुः समुद्रप्रवहणभङ्गमग्नोत्थितायाः फलकासादनम् तथा 'सर्वथा स्पृशन्ति स्वामिनमभ्युदयाः' ।

बीजन्यास के बाहुल्य रूप परिकर की सिद्धि या परिपक्वावस्था (निष्पत्ति) परिन्यास कहलाती है।[2] जैसे यौगन्धरायण को अपने व्यापार तथा दैव दोनों पर यह पूर्ण विश्वास है कि उसे सिद्धि अवश्य होगी, उसका बीज अवश्य निष्पन्न होगा। इसकी सूचना वह निम्नपद्य के द्वारा देता है -

'प्रारम्भेऽस्मिन्स्वामिनो वृद्धिहेतौ दैवे चेत्थं दत्तहस्तावलम्बे ।
सिद्धेर्भ्रान्तिर्नास्ति सत्यं तथापि स्वेच्छाचारी भीतएवास्मि भर्तुः ।।

जब (फल से सम्बद्ध किसी वस्तु के) गुणों का वर्णन किया जाय तो उसे विलोभन कहते हैं।[3] रत्नावली नाटिका में वैतालिक चन्द्रमा तथा वत्सराज के समान गुणों के वर्णन के द्वारा सागरिका का विलोभन करते हैं, जो समागम (व उदयन-रत्नावली मिलन) के हेतुरूप अनुराग बीज को सागरिका के हृदय में बढ़ा रहे हैं। इस प्रकार निम्न पद्य में विलोभन पाया जाता है -

'अस्तापास्तसमस्तभासि नभसः पारं प्रयाते रवा-
वास्थानीं समये समं नृपजनः सायंतने संपतन् ।
संप्रत्येष सरोरुहद्युतिमुषः पादांस्तवासेवितुम्
प्रीत्युत्कर्षकृतो दृशामुदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते ।। १।२३।। रत्ना०

----

१. तद्बाहुल्यं परिक्रिया ।
२. तन्निष्पत्तिः परिन्यासः -

जहाँ अर्थों का (पात्र के अभीष्ट तथ्यों का) अवधारण या समर्थन किया जाय, वहाँ युक्ति होती है ।[१] रत्नावली में अन्तःपुर में स्थित सागरिका बड़े मजे से वत्सराज के दृष्टिपथ में आ सकती है, इस प्रयोजन का समर्थन करने से तथा बाभ्रव्य एवं सिंहलेश्वर के मंत्री वसुभूति के सागरिका (रत्नावली) तथा वत्सराज के समागम के प्रयोजन के समर्थन करने के कारण वहाँ इस युक्ति की व्यंजना इन पंक्तियों में की गई है - 'यद्यपि मैनां देवीहस्ते सबहुमानं निक्षिप्ता युक्तमेवानुष्ठितम् । कथितं च मया यथा बाभ्रव्यः कंचुकी सिंहलेश्वरामात्येन वसुभूतिना सह कथं कथमपि समुद्रादुत्तीर्य कोशलोच्छित्तये गतस्य रुमण्वतो घटितः ।'

जहाँ (फल की प्राप्ति की आशा में) सुख का आगम हो, वहाँ प्राप्ति नामक मुखाङ्ग होता है ।[२] रत्नावली में वैतालिकों की उक्ति सुनकर सागरिका हर्ष के साथ इधर उधर सस्पृह दृष्टि से देखती हुई कहती है - 'सागरिका- (श्रुत्वा सहर्षं परिवृत्य सस्पृहं पश्यन्ती) कथमयं स राजोदयनो यस्याहं तातेन दत्ता तत्परप्रेषणादूषितं मे जीवितमेतस्य दर्शनेन बहुमतं संजातम् ।' यहाँ सागरिका को सुख की प्राप्ति हुई है ।

बीज का उपादान, फिर से बीज का युक्ति के द्वारा व्यवस्थापन समाधान कहलाता है ।[३] रत्नावली में सागरिका उदयन को देखने की इच्छा से मदन पूजा के स्थान पर आ जाती है, उसकी यह इच्छा बीजागम के रूप में इन

---

१. संप्रधारणमर्थानां युक्तिः - दश० ५०

२. प्राप्तिः सुखागमः । दश० ३०

३. बीजागमः समाधानम् - दश० ०

पंक्तियों में स्पष्ट है - 'वासवदत्ता तेन ह्युपनय में उपकरणानि ।' सागरिका-
'भर्त्रि । एतत्सर्वं सज्जनम् ।' वासवदत्ता-(निरूप्यात्मगतम्) अहो प्रमाद: परिजनस्य
यस्यैव दर्शनपथात्प्रयत्नेन रक्ष्यते तस्यैव अर्थं दृष्टिगोचरमागता, भवतु एवं तावत्)
चेटि सागरिके । कथं त्वमद्य पराधीने परिजने मदनोत्सवे सारिकां मुक्त्वेहागता
तस्मात्तत्रैव गच्छ ।' इत्युपक्रमे सागरिका-(स्वगतम्) सारिका तावन्मया सुसंगतायाः
हस्ते समर्पिता प्रेक्षितुं च मे कुतूहलं तदलक्षिता प्रेक्षिष्ये ।' यहाँ एक ओर
वासवदत्ता रत्नावली तथा वत्सराज के परस्पर दर्शन का प्रतीकार करती है तथा
दूसरी ओर सागरिका मैना को सुसङ्गता के हाथों सौंप कर छिपकर उसे (राजा
को) देखती है । यहाँ रत्नावली । सुसंगता की इस चेष्टा में वत्सराजसमागम के हेतु
रूप बीज का उपादान किया गया है । अत: यहाँ समाधान नामक मुखाङ्ग है ।

विधान -[१]

जहाँ अद्भुत आवेश हो अर्थात् आश्चर्य की भावना पात्र में पाई जाती
हो, वहाँ परिभाव या परिभावना होती है ।[२] रत्नावली नाटिका में मदनपूजा के
समय स्वयं उदयन को उपस्थित देखकर छिपकर देखती हुई सागरिका आश्चर्य के साथ
कहती है - सागरिका-'कथं प्रत्यक्ष एवानङ्ग: पूजां प्रतीच्छति । तत् अहमपीह
स्थितैवैनं पूजयिष्यामि ।' यहाँ वत्सराज को कामदेव बनाकर उसकी स्वयं की
सत्ता का निराकरण (अपह्नव) किया गया है तथा प्रत्यक्ष अनङ्ग के द्वारा
पूजाग्रहण अलौकिक है इसलिये सागरिका की उक्ति में अभिव्यंजित अद्भुत रस के
आवेश के कारण यहाँ परिभावना नामक मुखाङ्ग है ।

जहाँ अब तक छिपे हुये (गूढ़) बीज को प्रकट कर दिया जाय अर्थात् गूढ़
का भेदन हो, उसे उद्भेद कहते हैं ।[३] रत्नावली में कुसुमायुध के व्याज से वत्सराज

---

१. विधानं सुखदु:खकृत् ।। १।२८ । दशा०
२. परिभावोऽद्भुतावेश: , दश०क० ।
३. उद्भेदो गूढभेदनम् । दश०क०

की वास्तविक सत्ता छिपी थी किन्तु वैतालिक की उक्ति में `उदयन` शब्द के द्वारा उस गूढ़ वस्तु का भेदन होने से यह उद्भेद है । यह गूढ़भेद बीज का ही सहायक या साधन है ।

रूपक की कथा के अनुरूप प्रकृतकार्य का जहाँ आरम्भ हो वहाँ करण होता है ।[1] रत्नावली में `नमस्ते कुसुमायुधतदमोघदर्शनो में भविष्यसीति । दृष्टं यत्प्रेक्षितव्यं तथावन्नको पि मां प्रेक्षते तदुगमिष्यामि ।` रत्नावली की इस उक्ति के द्वारा भावी अङ्क में वर्णित निर्विघ्न दर्शन प्रयत्न के आरम्भ की व्यंजना कराई गई है अतः करण नामक मुखाङ्ग है ।

प्रतिमुख सन्धि –

उस बीज का कुछ कुछ दिखाई देना और कुछ दिखाई न देना और इस लक्ष्यालक्ष्य रूप में फूट पड़ना (उद्भिन्न होना) प्रतिमुख सन्धि का विषय है ।[3] द्वितीय अङ्क में सागरिका के ` जाव ण को वि इह आअच्छदि ताव आलेक्ख-समप्पिदं तं अहिमदं जणं पेक्खिअ जधासमोहिदं करिस्सं` (पृ० ४४) इस वचन से लेकर अङ्क की समाप्ति तक प्रतिमुख सन्धि है ।

प्रतिमुख सन्धि के तेरह अङ्ग होते हैं – विलास, परिसर्प, विधूत, शम, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन निरोध, पर्युपासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास तथा वर्णसंहार ।

---

१. करणं प्रकृतारम्भः

२. भेदः प्रोत्साहना मता ।।१/२६ ।। दश०रू०

३. लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत् ।
   बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्य त्रयोदश ।। १।३० । दश०रू०

रति की इच्छा को विलास अङ्ग कहते हैं ।[१] रत्नावली में सागरिका वत्सराज समागम रति की इच्छा को लेकर चित्रादि के द्वारा ही उसे प्राप्त करने की चेष्टा करती है । यह चेष्टा प्रयत्न की अवस्था से सम्बद्ध है तथा यहाँ रत्नावली का अनुरागरूपी बीज साथ साथ व्यंजित हो रहा है अत: रति की इच्छा से यहाँ विलास है । इसकी व्यंजना सागरिका की निम्नउक्ति से होती है - सागरिका 'हृदय, प्रसीद प्रसीद किमनेनायासमात्रफलेन दुर्लभजनप्रार्थनानुबन्धेन ।' इत्युपक्रम्य 'तथाप्यालेख्यगतं तं जनं कृत्वा यथासमीहितं करिष्यामि । तथापि तस्य नास्त्यन्यो दर्शनोपाय: ।'

जब बीज एक बार दृष्ट हो गया हो किन्तु फिर दिखाई देकर नष्ट हो जाय और उसको खोज की जाय तो यह खोज परिसर्प कहलाती है ।[२] रत्नावली में मैना के वचन तथा चित्रदर्शन द्वारा सागरिका का अनुराग बीज क्रम से दृष्ट तथा नष्ट हो गया है, उसी को 'क्वासौ क्वासौ' कह कर वत्सराज के द्वारा खोज की जाती है अत: यहाँ परिसर्प अङ्ग है ।

जहाँ अरति हो, वहाँ विधूत नामक अङ्ग होता है ।[३] रत्नावली में सागरिका का अनुराग बीज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है । काम-पीड़ा संतप्त सागरिका अपनी सखी सुसंगता से कहती है -'सागरिका-' सखि ! अधिकं मे संतापो बाधते ।' (सुसंगता दीर्घिकातो नलिनीदलानि मृणालिकाश्चानीयास्या अङ्गे ददाति) । सागरिका -(तानि क्षिपन्ती)' सखि ! अपनयैतानि किमकारण

---

१. रत्यर्थेहा विलास: स्याद् - दश०

२. दृष्टनष्टानुसर्पणम् ।। १।३२ परिसर्प: -दश०

३. विधूतं स्यादरति: - दश ०० ।

आत्मानमायासयसि । ननु भणामि -

दुर्लभजनानुरागो लज्जा गुर्वी परवश आत्मा । (२।७)
प्रिय सखि विषमं प्रेम मरणं शरणं केवलमेकम् ।।२०६।।

यहाँ सागरिका ने बीजान्वय से शीतोपचार को हटा दिया अत: यह विधुत है ।

जब उस अरति की शान्ति हो जाती है, वह शम नामक प्रतिमुखाङ्ग है ।[१] रत्नावली में जब सागरिका अपने प्रति राजा की रति जान लेती है तो उसकी अरति शान्त हो जाती है, (क्योंकि उसे वत्सराज की प्राप्ति की आशा हो जाती है ।) यह शम नामक प्रतिमुखाङ्ग इन पंक्तियों से स्पष्ट है -`राजा - `वयस्य ! अनया लिखितो हमिति यत्सत्यमात्यन्यर्थिमे बहुमानस्तत्कथं न पश्यामि ।` इति प्रक्रमे सागरिका (आत्मगतम्) `हृदय ! समाश्वसिहि मनोरथो पि त एतावतीं भूमिं न गत: ।`

नर्म से तात्पर्य परिहास के वचनों से है ।[२] रत्नावली नाटिका में इस वार्तालाप से नर्म की व्यंजना हो रही है -`सुसंगता - `सखि ! यस्य कृते त्वमागता सोऽयं पुरस्तिष्ठति ।` सागरिका-(सासूयम्) `सुसङ्गते ! कस्य कृतेऽहमागता ।` सुसंगता -`अयि आत्मशङ्किते ! ननु चित्रफलकस्य तद् गृहाणैतत् । यह परिहास वचन यहाँ बीज से सम्बद्ध है, यह नर्म नामक प्रतिमुखाङ्ग है ।

धैर्य की स्थिति नर्मधुति कहलाती है ।[३] रत्नावली की निम्नपंक्तियों में धृति के द्वारा अनुराग बीज उद्घाटित हो रहा है, यहाँ परिहास से उत्पन्न धुति (नर्मधुति) पाई जाती है -`सुसङ्गता - `सखि ! अतिनिष्ठुरेदानीमसि त्वं यैवमपि भर्त्रा हस्तावलम्बिता कोपं न मुञ्चसि ।` सागरिका- (सभ्रूभङ्गमीषद्विहस्य)

---

१. तस्या अरतेरुपशम: शमो । दश० ६०

२. परिहास वचो नर्म- दश०

३. धृतिस्तज्जा धुतिर्मता ।। १।३३। दश०

`सुसङ्गते ! इदानीमपि न विरमसि ।

जहाँ पात्रों में परस्पर उत्तरोत्तर वचन पाये जायें (जिनसे बीज का उत्साहयुक्त प्रतिपादित हो) वहाँ प्रगमन होता है ।[१] रत्नावली में विदूषक व राजा, सागरिका एवं सुसङ्गता के परस्पर उत्तरोत्तर वचन अनुराग बीज को प्रकट करते हैं, अत: वहाँ प्रगमन है । प्रगमन की व्यंजना विदूषक व राजा की इस बातचीत से हो रही है -`विदूषक- भो वयस्य ! दिष्ट्या वर्धसे ।` राजा - (सकौतुकम्) `वयस्य ! किमेतत् ।` विदूषक: - `भो: । एतत्खलु यत्त्वया भणितं त्वमेवालिखित: को न्य: कुसुमायुधव्यपदेशेन निह्नूयते) इत्यादिना ।

राजा - परिच्युतस्तत्कुचकुम्भमध्यात् किं शोषयामासि मृणालहार ! ।
न सूक्ष्मतन्तोरपि तावकस्य तत्रावकाशो भवत: किमुस्यात् ।` २।१५

हित को रोक (रोध) हो जाने पर निरोधन होता है ।[२] रत्नावली में सागरिकासमागम वत्सराज का अभीष्ट हित है, किन्तु वासवदत्ता के प्रवेश की सूचना देकर विदूषक उसमें अवरोध उत्पन्न कर देता है । अत: इ यहाँ निरोधन है, जिसकी व्यंजना राजा की निम्न उक्ति से होती है -`राजा - धिङ्मूर्ख !

प्राप्ता कथमपि दैवात्कण्ठमनीतैव सा प्रकट रागा ।
रत्नावलीव कान्ता मम हस्ताद् भ्रंशिता भवता ।। २।१६ ।।

----

१. उत्तरा वाक्प्रगमनम् ।। दश०

२. हितरोधो निरोधनम् ।
दश० ।

(नायकादि के द्वारा किसी का) अनुनय-विनय पर्युपास्ति या पर्युपासन कहलाता है ।[१] रत्नावली नाटिका में वत्सराज व सागरिका का एकचित्र में आलेखन देखकर वासवदत्ता क्रुद्ध हो जाती है । राजा उसका अनुनय करता है । यह अनुनय उन (वत्सराज-सागरिका) दोनों के प्रेम को प्रकट कर उसका साहाय्य सम्पादित करता है अत: यह पर्युपासन है । इसकी व्यंजना राजा की उक्ति के निम्नपद्य में हुई है -

`राजा --

प्रसीदेति ब्रूयामिदमसति कोपे न घटते

करिष्याम्येवं नो पुनरिति भवेदभ्युगम: ।

न मे दोषोऽस्तीति त्वमिदमपि हि ज्ञास्यसि मृषा

किमेतस्मिन् वक्तुं क्षममिति न वेद्मि प्रियतमे ।।२।२०

जहाँ विशिष्ट वाक्यों द्वारा बीजोद्घाटन हो, अथवा जहाँ पर वाक्य विशेष रूप से बीजोद्घाटन करे, वह पुष्प कहलाता है ।[२] रत्नावली में उदयन व सागरिका का अनुराग परस्पर दर्शन आदि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है, इस पुष्प को सूचना विदूषक व वत्सराज का निम्नकथोपकथन देता है -

`(राजा सागरिकां हस्ते गृहीत्वा स्पर्शं नाटयति) विदूषक: - भो ! एषापूर्वा श्रीस्त्वया समासादिता ।` राजा- वयस्य ! सत्यम् !

श्रीरेषा पाणिरप्यस्या: पारिजातस्य पल्लव: ।

कुतोऽन्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रव: ।।२।१८

उपाययुक्त या हेतु प्रदर्शक वाक्य उपन्यास कहलाता है ।[३] रत्ना० में सुसङ्गता यह बताकर कि चित्र में सागरिका मैंने आलिखित की है और सागरिका

----

१. पर्युपास्तिरनुनय:- दश०

२. पुष्पं वाक्यं विशेषवत् ।। १।३६ ।। दश०

३. उपन्यासस्तु सोपायम् - दश०

तुमने इस वाक्य में प्रसन्नता (हेतु) का उपन्यास कर बीज का उद्भेद किया है । अत: सुसंगता की इस उक्ति में उपन्यास है —`सुसङ्गता- भर्त: । अलं शङ्कया मयापि भर्तु: प्रसादेन क्रीडितमेव तत्किं कर्णाभरणेन, अतो पि मे गुरु: प्रसादो यत्कथं त्वयाहमत्रालिखितेति कुपिता मे प्रियसखी सागरिका तत्प्रसाद्यताम् ।`

यहाँ नायकादि के प्रति कोई पात्र प्रत्यक्ष रूप में निष्ठुर वचन का प्रयोग करे वह (वज्र के समान तीक्ष्ण व मर्मभेदी) वाक्य वज्र कहलाता है ।[१] रत्नावली में वासवदत्ता उन दोनों के प्रेम को जानकर क्रुद्ध होती हुई निम्न कटु-वचनों को वत्सराज से कहती है, यहाँ वज्र प्रतिमुखाङ्ग है -`वासवदत्ता - (फलकं निर्दिश्य)`आर्यपुत्र । एषापि या तव समीपे एतत्किं वसन्तकस्य विज्ञानम् । पुन: `आर्यपुत्र । ममाप्येतच्चित्रकर्म पश्यन्त्या: शीर्षवेदना समुत्पन्ना ।`

गर्भसन्धि —

उस बीज के दिखने के बाद फिर से नष्ट हो जाने पर उसका बार बार अन्वेषण किया जाता है तो गर्भसन्धि होती है[२]। इसमें वैसे तो पताका (अर्थ-प्रकृति) तथा प्राप्तिसम्भव अवस्था) का मिश्रण पाया जाता है किन्तु पताका का होना अनिवार्य नहीं, वह हो भी सकती है, नहीं भी, किन्तु प्राप्तिसम्भव का होना बहुत जरूरी है । रत्नावली के तृतीय अङ्क में गर्भसन्धि है क्योंकि यहाँ वेष-परिवर्तन द्वारा कुछ समय के लिये सागरिका प्राप्ति सम्भव हुई है लेकिन वासवदत्ता के जाने और सागरिका तथा वसन्तक को पकड़ ले जाने से उसमें विघ्न पड़ा है और राजा देवी के प्रसादन द्वारा फिर उपाय निवारण के उपाय का अन्वेषण करता है ।

---

१. वज्रं प्रत्यक्षनिष्ठुरम् । दश०

२. गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहु: ।
द्वादशाङ्ग: पताका स्यान्न वा स्यात्प्राप्ति संभव: । दश०

यह गर्भसन्धि बारह अङ्गों वाली होती है । अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, संग्रह, अनुमान, तोटक, अधिबल, उद्वेग, सम्भ्रम, आक्षेप ।

जहाँ छद्म या कपट हो वहाँ अभूताहरण होता है ।[१] रत्ना० में वासवदत्ता का वेष बनाकर सागरिका वत्सराज के समीप अभिसरण करती है इस छद्म की सूचना प्रवेशक द्वारा विदूषक तथा कांचनमाला बनी हुई सुसङ्गता के कथोपकथन से दी गई है -`साधु रे अमात्य वसन्तक साधु अतिशयितस्त्वयामात्यो यौगन्धरायणो नया सन्धिविग्रहचिन्तया ।`

जहाँ निश्चित तत्व का (अभीष्ट प्राप्तिरूप तत्व का) कीर्तन हो वह मार्ग है ।[२] रत्ना० में वासवदत्ता के वेष में सागरिकाभिसरण की सूचना देकर विदूषक सागरिकासमागम का निश्चय राजा को दिला देता है । इस प्रकार तत्वार्थनिवेदन के कारण निम्न पंक्तियों में मार्गनाम गर्भाङ्ग है -`विदूषक: -`दिष्ट्यावर्धसे समीहिताभ्यधिकया कार्यसिद्ध्या । राजा-`वयस्य कुशलं प्रियाया: । विदूषक: -`अचिरेण स्वयमेव प्रेक्ष्य ज्ञास्यसि ।
राजा -`दर्शनमपि भविष्यति ।` विदूषक: - (सगर्वम्) कथं न भविष्यसि यस्य त उपहसितबृहस्पतिबुद्धिविभवोऽहममात्य: ।`राजा-`तथापि कथमिति श्रोतुमिच्छामि ।
विदूषक: --(कर्णे कथयति)`एवम् ।`

जहाँ प्राप्ति की प्रतीक्षा करते समय नायकादि तर्कवितर्कमय वाक्यों का प्रयोग करें उसे रूप कहते हैं ।[३] रत्ना० में यह वितर्क कि कहीं वासवदत्ता ने इस बात को न जान लिया हो, रत्नावली -समागम की प्राप्त्याशा का ही साहाय्य प्राप्ति-

----

१. अभूताहरणं छद्म -

२. मार्गस्तत्वार्थकीर्तनम् ।। १।३८। दश०

३. रूपं वितर्कवद्वाक्यम् - दश०

पादित करता है। यह वितर्क इन पंक्तियों में सूचित है - राजा - अहो किमपि कामिजनस्य स्वगृहिणीसमागमपरिभाविनो भिनवं जनं प्रति पक्षपातस्तथाहि -

'प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता
घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्नपयोधरौ।
वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो
रमयतितरां सङ्केतस्थ, तथापि हि कामिनी ।। ३।६

उत्कर्ष या उन्नति से युक्त वाक्य उदाहृति या उदाहरण कहलाता है[१]। रत्नावली में विदूषक रत्नावली प्राप्ति की बात को कोशाम्बी राज्य-लाभ से भी बढ़कर बताता है अत: निम्न वाक्य सोत्कर्ष होने से उदाहरण का सूचक है - विदूषक: - ही ही भो: कोशाम्बीराज्य लाभेनापि न तादृशो वयस्यस्य परितोष आसीत् यादृशो मम सकाशात्प्रियवचनं श्रुत्वा भविष्यतीति तर्कयामि।

जहाँ आप्ति (इष्ट वस्तु की प्राप्ति) का चिन्तन किया जाय, तथा वह वस्तु प्राप्त हो जाय, वहाँ क्रम नामक गर्भसन्धि का ग्रहण होता है।[२] रत्नावली में निम्नपंक्तियों में वत्सराज सागरिका के समागम की अभिलाषा ही कर रहा का भ्रान्त सागरिका (सागरिका के रूप में वासवदत्ता) आ जाती है। अत: क्रम है - राजा - उपनतप्रियासमागमोत्सवस्यापि मे किमिदमत्यर्थमुत्ताम्यति चेत:,
अथवा -

तीव्र: स्मरसंतापो न तथादौ बाधते यथासन्ने।
तपन्ति प्रावृषि सुतरामभ्यर्णजलागमे दिवस: ।। ३।१०

विदूषक: (आकर्ण्य) भवति सागरिके। एष प्रियवयस्यस्त्वा मेवोद्दिश्योत्कण्ठानिर्भरं मन्त्रयति तन्निवेदयामि तस्मै तवागमनम्।

---

१. सोत्कर्षं स्यादुदाहृति: । दश० ।
२. क्रम: संचिन्त्यमानाप्ति: - दश ०।

जहाँ नायकादि अनुकूल आचरण करने वाले पात्र को साम व दान से प्रसन्न करें, वहाँ साम व दान की उक्ति संग्रह कहलाती है ।[१] रत्नावली में राजा सागरिका का समागम कराने वाले विदूषक को साम व दान से संगृहीत करता है अतः संग्रह है - 'साधु वयस्य साधु इदं ते पारितोषिकं कटकं ददामि ।

जहाँ किन्हीं हेतुओं (लिङ्गों) के आधार पर नायकादि के द्वारा तर्क किया जाय, वहाँ अनुमा या अनुमान होता है ।[२] रत्नावली में सागरिका से प्रेम करने से राजा प्रकृष्ट प्रेम से स्खलित हो जाता है इसलिये इस बात को जानकर वासवदत्ता जिन्दी न रह सकेगी, इस प्रकार प्रकृष्ट प्रेम स्खलन हेतु के द्वारा वासवदत्तामरण का तर्क अनुमान है जिसकी सूचना निम्न पद्य में हुई है - 'राजा 'धिङ्मूर्ख ! त्वत्कृत एवायमापतितो स्माकमनर्थः । कुतः --

> समारूढा प्रीतिः प्रणयबहुमानात् प्रतिदिनं
> व्यलीकं वा वीक्ष्येदं कृतमकृतपूर्वं खलु मया ।
> प्रिया मुञ्चत्यद्यस्फुटमसहना जीवितमसौ
> प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति ।। ३।१५

विदूषक :--भो वयस्य ! वासवदत्ता किं करिष्यतीति न जानामि सागरिका पुनर्दुष्करं जीविष्यतीति तर्कयामि ।' यहाँ राजा व विदूषक दोनों की उक्ति में अनुमान पाया जाता है ।

जहाँ किन्हीं पात्रों के द्वारा नायकादि का अभिप्राय जान लिया जाय वहाँ अधिबल होता है ।[३] रत्नावली के वासवदत्ता व काँचनमाला सागरिकाभिसरण की बात जानकर सागरिका तथा सुसङ्गता का वेष बनाकर संकेत स्थल (

----

१. संग्रहः सामदानोक्तिः - दश० ।

२. अभ्यूहो लिङ्गतो नुमा । दश० ।

३. अधिबलमभिसन्धिः - दश० ।

(चित्रशाला) को जाती हैं। यहाँ वे दोनों राजा व विदूषक से मिलती हैं तथा उनका अभिप्राय जान लेती हैं, अत: अधिबल है। काँचनमाला की इस उक्ति से इसकी सूचना दी गई है - काँचनमाला - भत्रि इयं सा चित्र शालिका तद्वसन्तकस्य संज्ञां करोमि (छोटिकां ददाति)।

क्रोध से युक्त वचन तोटक कहलाता है।[१] रत्ना० में सागरिका समागम में विघ्न उपस्थित करते हुए वासवदत्ता क्रुद्ध वचन के द्वारा उदयन की इष्टप्राप्ति को अनिश्चित बना देती है अत: यह तोटक है। वासवदत्ता की इस उक्ति में तोटक है - 'वासवदत्ता - आर्यपुत्र! युक्तमिदं सदृश मिदम्। आर्यपुत्र उत्तिष्ठ किमधाप्याभिजात्या सेवादु:खमनुभूयते एतामपि दुष्टपाशेन बद्ध्वाआनय एताम् अपि दुष्ट-कन्यकामग्रत: कुरु।'

दूसरे नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में अधिबल व तोटक दोनों के लक्षण भिन्न बताये गये हैं। इन विद्वानों के मतानुसार तोटक का उलटा ही अधिबल है। ये दूसरे नाट्यशास्त्री दीन-वचनों को अधिबलमानते हैं।[२] रत्नावली में राजा की इस उक्ति में - राजा - देवि एवमपि प्रत्यक्षदृष्टव्यलीक: किं विज्ञापयामि -

'आताम्रतामपनयामि विलक्ष एव
लाक्षाकृतां चरणयोस्तवदेवि मूर्ध्ना।
कोपोपरागजनितां तु मुखेन्दुबिम्बे
हर्तुं समो यदि परं करुणा यदि स्यात्॥ ३।१४१

इन दूसरे पण्डितों के मत से संरब्ध (उद्विग्न) वचन तोटक है।[३] रत्नावली में राजा - 'प्रिये वासवदत्ते! प्रसीद प्रसीद।' वासवदत्ता (अश्रूणिधारयन्ती)

---

१. संरब्धं तोटकं वच:॥ १।४०॥ दश० ।
२. तोटकस्यान्यथाभावं ब्रुवतेऽधिबलं बुधा:। दश०
३. संरब्ध वचनं यत्तु तोटकं तदुदाहृतम्॥

`आर्यपुत्र मैवं भण। अन्य संक्रान्तानि खल्वेतान्यक्षराणीति।`

शत्रुओं के द्वारा किया गया भय उद्वेग कहलाता है।[1] रत्नावली में वासवदत्ता सागरिका का अपकार करने वाली है अतः उसकी शत्रु है। जब वह सागरिका को पकड़कर ले जाती है तो सागरिका को भय होता है। अतः यह उद्वेग है। सागरिका की इस उक्ति में इसी का सङ्केत है - सागरिका-(आत्मगतम्) कथमकृतपुण्यैरात्मन इच्छया मर्तुमपि न पार्यते।`

जहाँ पात्रों में शङ्का एवं भय का संचार हो, वहाँ संभ्रम माना जाता है।[2] रत्ना० में वासवदत्ता की बुद्धि से गृहीत सागरिका के मरने की आशङ्का निम्न उक्ति में पाई जाती है अतः यहाँ सम्भ्रम है - विदूषकः - (पश्यन्) का पुनरेषा। (ससंभ्रमम्) कथं देवी वासवदत्तात्मानं व्यापादयति। `राजा (ससम्भ्रममुपसर्पन्) क्वासौ क्वासौ।`

जहाँ गर्भ एवं बीज, अथवा गर्भ के बीज का उद्भेद हो, जहाँ बीज को विशेष रूप से प्रकट किया जाय, वहाँ आक्षेप कहलाता है।[3] रत्नावली में राजा की निम्न उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि सागरिका प्राप्ति वासवदत्ता की प्रसन्नता पर ही आश्रित है। उसके द्वारा उदयन गर्भबीज को प्रकट कर देता है अतः यहाँ आक्षेप है - राजा - वयस्य। देवीप्रसादनं मुक्त्वा नान्यमत्रोपायं पश्यामि। पुनः क्रमान्तरे सर्वथा देवी प्रसादनं प्रति निष्प्रत्याशीभूताः स्मः पुनः। तत्किमिह स्थितेन देवीमेव गत्वा प्रसादयामि।

---

१. उद्वेगोऽरिकृता भीतिः - दश० ।

२. शङ्कात्रासौ च संभ्रमः। दश० ।

३. गर्भबीजसमुद्भेदादाक्षेपः परिकीर्तितः ।। १।४२।। दश०

अवमर्श सन्धि –

जहाँ क्रोध से, व्यसन से या विलोभन (लोभ) से फलप्राप्ति के विषय में विचार या पर्यालोचन किया जाय तथा जहाँ गर्भसन्धि के द्वारा बीज को प्रकट कर दिया गया हो वहाँ अवमर्श सन्धि कहलाती है।[१] चौथे अङ्क में ऐन्द्रजालिक द्वारा प्रकट कृत्रिम अग्नि से अन्त:पुर दाह तक विमर्श सन्धि समाप्त हो गई है क्योंकि अन्त:पुर में अग्निदाह से वासवदत्ता का सागरिका के प्रति अनुराग हो गया है (ऐसा क्खु मए णिग्घिणाए दुध निअड्ढिदा सअरिआ विविादि। ता तं परित्ताअदु अज्जउत्तो) (पृ० १५८) इसलिये देवी रूप अपाय के अभाव के फलप्राप्ति निश्चित हो गई है।

अवमर्श सन्धि के तेरह अङ्ग होते हैं --अपवाद, संफेट, विद्रव, द्रव, शक्ति, धुति, प्रसङ्ग, छलन, व्यवसाय, विरोधन, प्ररोचना, विचलन और आदान।

जहाँ किन्हीं पात्रों के दोषों का वर्णन किया जाय वहाँ अपवाद होता है।[२] रत्नावली में राजा सागरिका के प्रति वासवदत्ताकृत व्यवहार को सुनकर वासवदत्ता के दोष का वर्णन करता है अत: यहाँ अपवाद है -`सुसंगता सा खलु तपस्विनी भर्त्रुत्योज्जयिनीं नीयत इति प्रवादं कृत्वोपस्थितेऽर्धरात्रे न ज्ञायते कुत्रापि नीतेति।`विदूषक: (सोद्वेगम्)-`अतिनिर्घृणं खलु कृतं देव्या।` पुन: -`भो वयस्य! मा खल्वन्यथा संभावय सा खलु देव्योज्जयिन्यां प्रेषिता अतो प्रियमिति कथम्।`राजा -`अहो निरनुरोधा मयि देवी।` संफेट विमर्शाङ्ग नहीं है।[३]

---

१. क्रोधेनावमृशेयत्र व्यसनाद्वा विलोभनात्। दश०
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थ: सो वमर्श: इति स्मृत:।। दश० ४३

२. दोषप्रख्यापवाद: स्यात् - दशरूपक।

३. संफेटोभाषणम्। दशरूपक।

किसी पात्र का मारा जाना, बँध जाना (बन्दी हो जाना) आदि (अर्थात् भय से पलायन आदि करना) विद्रव कहलाता है।[1] रत्नावली में सागरिका के बन्धन, मरण की आशङ्का तथा अग्निरूप भय के वर्णन के कारण निम्नस्थल में विद्रव नामक विमर्शाङ्ग है -

'हर्म्याणां हेमश्रृङ्गश्रियमिव शिखरैरर्चिषामादधानः
सान्द्रोद्यान द्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः।
कुर्वन्क्रीडामहीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातै -
रेष प्लोषार्त्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्तः पुरेऽग्निः ॥
४।१४

द्रव विमर्शाङ्ग नहीं है।

विरोध का शान्त हो जाना/कहलाता है।[2] रत्नावली में निम्न पद्य में सागरिकालाभ का विरोध करने वाली वासवदत्ता के क्रोध की शान्ति का सङ्केत मिलता है अतः यह शम है - 'राजा -

'सव्याजैः शपथैः प्रियेण वचसा चित्तानुवृत्याधिकं
वैलक्ष्येण परेण पादपतनैर्वाक्यैः सखीनां मुहुः।
प्रत्यासत्तिमुपागता नहि तथा देवी रुदत्या यथा
प्रक्षाल्यैव तयैव बाष्पसलिलैः कोपोऽपनीतः स्वयम् ॥ ४।११)

द्युति विमर्शाङ्ग नहीं है।[3]

जहाँ पूज्य व्यक्तियों (गुरुओं) माता-पिता आदि का संकीर्तन हो, वहाँ प्रसङ्ग नामक विमर्शाङ्ग होता है।[4] (अथवा जहाँ महत्वपूर्ण (गुरु) वस्तु की चर्चा हो, वहाँ प्रसङ्ग होता है) रत्ना० में यौगन्धरायण निम्न उक्ति

---

१. विद्रवो वधबन्धादिः - दश०

२. विरोधशमनं शक्तिः - दशरूपक

३. तर्जनोद्वेजने द्युतिः। दश०।

४. गुरुकीर्तनं प्रसङ्गः - दश०

के द्वारा प्रसङ्ग से गुरु (पूज्य सिद्धेश्वर) का संकीर्तन करता है (अथवा) राजा के प्रति महत्वपूर्ण समाचार कहता है) इसे गुरु-कीर्तन के द्वारा रत्नावली के लाभ के अनुकूल सम्बन्धियों का प्रकाशन किया गया है अत: यह प्रसङ्ग है - देव या सौ सिंहलेश्वरेण स्वदुहिता रत्नावली नामायुष्मती वासवदत्तां दग्धामुपश्रुत्य देवाय * पूर्वप्रार्थिता सती प्रतिदत्ता । [१]

जहाँ कोई पात्र किसी दूसरे की अवज्ञा (अपमान) करे, वह छलन कहा जाता है । [२] जैसे-रत्नावली में वासवदत्ता रत्नावली-समागम में उपस्थित करती है । इस प्रकार वह वत्सराज की ईप्सित वस्तु का सम्पादन न करने के कारण * उसकी अवज्ञा करती है अत: अपमान के कारण यहाँ छलन नामक अवमर्शाङ्ग है । इसकी व्यंजना राजा की इस उक्ति से होती है - राजा - अहो निरनुरोधा मयि देवी ।

जहाँ कोई पात्र अपने सामर्थ्य के विषय में कहे, (जहाँ स्वशक्त्युक्ति पायी जाय) वहाँ व्यवसाय नामक अवमर्शाङ्ग होता है । [३] रत्नावली के चतुर्थ अङ्क में ऐन्द्रजालिक झूठी आग फैलाकर वत्सराज के हृदय में स्थित सागरिका के दर्शन अनुकूल अपनी शक्ति को प्रकट करता है । इसकी सूचना इन दो गाथाओं से हुई है । ऐन्द्रजालिक की उक्तियाँ -

किं धरण्यां मृगाङ्क आकाशे महीधरो जले ज्वलन: ।
मध्याह्ने प्रदोषो दर्श्यतां देह्याज्ञप्तिम् ।। ४।८ ।।

अथवा किं बहुना जल्पितेन -

---

१. तर्जनोद्वेजने धुति: । दश० ० ।
छलनं चावमाननम् ।। १।४७।दश०
३. व्यवसाय: स्वशक्त्युक्ति: । दश० ०

मम प्रतिलैषा श्रणामि हृदयेन यत्कच्छिसि दुष्टुम् ।
तं दर्शयामि स्फुटं गुरोर्मन्त्रप्रभावेण ।। ४।१६ ।।

निरोधन[1] तथा प्ररोचना[2] नहीं है ।

जहाँ कोई पात्र आत्मश्लाघा करे तथा डींग मारे, वहाँ विचलन नामक विमर्शाङ्ग होता है ।[3] रत्नावली में यौगन्धरायण निम्नलिखित उक्ति में वत्सराज के प्रति मेरा कितना उपकार है, इस बात की व्यंजना करते हुये अपने गुणों का कीर्तन करता है, अतः विचलन नामक विमर्शाङ्ग है -

'यौगन्धरायण :-

'देव्याः मद्वचनात्यथा भ्युपगतः पत्युर्वियोगस्तदा
सा देवस्य कलत्रसंघटनया दुःखं मया स्थापिता ।
तस्याः प्रीतिमयं करिष्यति जगत्स्वामित्वलाभः प्रभोः
सत्यं दर्शयितुं तथापि वदनं शक्नोमि नो लज्जया ।। ४।२०।।

जब नाटककार उपसंहार की ओर बढ़ने की कामना से नाटक या रूपक की वस्तु के कार्य को संगृहीत करता है, अर्थात् समेटने की चेष्टा करता है तो वह अवमर्शाङ्ग आदान कहलाता है ।[4] रत्नावली में दुःखी सागरिका जलती आग को देखकर यह समझती है कि उसके दुःख का अवसान हो जायगा । यहाँ दुःखावसान रूप कार्य का संग्रह है - सागरिका-'दिष्ट्या समन्तात् प्रज्वलितो भगवान् हुतवहो य करिष्यत दुःखावसानम् ।' यथा च -'जगत्स्वामित्वलाभः प्रभोः ।'

---

१. संरब्धानां विरोधनम् । दश० ।
२. सिद्धमन्त्रणातो भावदर्शिका स्यात्प्ररोचना ।। १।४७। दश०
३. विकत्थना विचलनम् - दश० ।
४. आदानं कार्यसंग्रहः । दश० ।

निर्वहण सन्धि -

रूपक की कथावस्तु के बीज से युक्त मुख आदि अर्थ, जो अब तक इधर-उधर बिखरे पड़े हैं, जब एक अर्थ के लिये एक साथ समेटे जाते हैं या एकत्रित किये जाते हैं तो वह निर्वहण सन्धि होती है।[1] रत्नावली नाटिका में चतुर्थ अङ्क में अन्त:-पुर दाह के बाद से शेष भाग में निर्वहण सन्धि है।

निर्वहण सन्धि के १४ अङ्ग होते हैं - सन्धि, विबोध, ग्रन्थन, निर्णय, परिभाषण, प्रसाद, आनन्द, समय, कृति, भाषण, उपगूहन, पूर्व भाव, उप-संहार तथा प्रशस्ति।

जब बीज की उद्भावना की जाती है, तो वह सन्धि नामक निर्वहणाङ्ग होता है।[2] रत्नावली नाटिका के चतुर्थ अङ्क में वसुभूति तथा बाभ्रव्य सागरिका को पहचान लेते हैं। यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की गई है अत: सन्धि है - वसुभूति:-बाभ्रव्य। सुसदृशीयं राजपुत्र्या। बाभ्रव्य: - ममाप्येवमेव प्रतिभाति।

जहाँ नायक अब तक छिपे हुये अपने कार्य की फिर से खोज करने लगता है उसे विबोध कहते हैं।[3] रत्नावली के चतुर्थ अङ्क में वसुभूति व बाभ्रव्य सागरिका को पहचान कर उसके विषय में उदयन से पूछते हैं, यहाँ निम्नवार्तालाप के द्वारा रत्नावली रूप कार्य की फिर से खोज होने के कारण विबोध नामक निर्वहणाङ्ग है वसुभूति - (निरूप्य) देव कुत इयं कन्यका राजा - देवी जानाति। वासव-दत्ता - आर्यपुत्र। एषा सागरात्प्राप्तेति भणित्वाऽमात्ययौगन्धरायणेन मम

---

१. बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्॥ १।४८
ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्। दश०

२. संधिर्बीजोपगमनम् - दश० ।

३. विबोध: कार्यमार्गणम्। दश०

हस्ते निक्षिप्ता अतएव सागरिकेति शब्द्यते । राजा - (आत्मगतम्)यौगन्धरायणेन न्यस्ता, कथमसौ ममानिवेद्य करिष्यति ।

उस कार्य का उपसंहार (उपक्षेप) करना ग्रन्थन कहलाता है । [१] रत्नावली में यौगन्धरायण की निम्न उक्ति वत्सराज के कार्य रत्नावली-लाभ का उपसंहार कर देती है -यौगन्धरायण - देव ! क्षम्यतां यद्देवस्यानिवेद्य मयैतत्कृतम् ।

जब नायकादि अपने द्वारा विचारित या सम्पादित (अनुभूत) कार्य के विषय में वर्णन करते हैं, तो यह निर्णय कहलाता है । [२] रत्नावली में यौगन्धरायण निम्न उक्ति के द्वारा कार्य सम्बद्ध अपने अनुभवों को या कार्यसम्बद्ध कार्यों को राजा से वर्णित करता है अतः यहाँ निर्णय है - यौगन्धरायणः - (कृताञ्जलिः) देव श्रूयताम्, इयं सिंहलेश्वरदुहिता सिद्धादेशेनोपदिष्टा - यो अस्याः पाणिं ग्रहीष्यति स सार्वभौमो राजा भविष्यति, तत्प्रत्ययादस्माभिः स्वाम्यर्थे बहुशः प्रार्थ्यमानापि सिंहलेश्वरेण देव्या वासवदत्तायाश्चित्तखेदं परिहरता यदा न दत्ता तदा लावाणके देवी दग्धेति प्रसिद्धिमुत्पाद्य तदन्तिकं बाभ्रव्यः प्रहितः ।

जहाँ पात्रों में परस्पर जल्प पाया जाय, उसे परिभाषण कहते हैं । [३] रत्नावली में इस स्थल पर अन्योन्य वचन के कारण परिभाषण नामक निर्वहणाङ्ग है ।

रत्नावली -- (आत्मगतम्) कृतापराधा देव्यै न शक्नोमि मुखं दर्शयितुम् ।
वासवदत्ता- (साश्रं पुनर्बाहू प्रसार्य) एहि अयि निष्ठुरे ! इदानीमपि बन्धुस्नेहं दर्शय ।

---

१. अनुभूताख्या तु निर्णयः । १।५१ ।। दश०

२. परिभाषा मिथो जल्पः - दश० ।

३. प्रसादः पर्युपासनम् । दश० ।

(अपवार्य) आर्य पुत्र ! लज्जे खल्वहमनेन नृशंसत्वेन तल्लध्वपन यास्या बन्धनम् ।`
राजा - यथाह देवी ! (बन्धनमपनयति) वासवदत्ता- (वसुभूतिं निर्दिश्य)`आर्य !
अमात्य यौगन्धरायणेन दुर्जनो कृतास्मि येन जानतापि नाचक्षितम् ।`

किसी पात्र द्वारा नायिकादि का प्रसादन (पर्युपासन)प्रसाद कहलाता है ।[1]
रत्नावली में यौगन्धरायण वत्सराज उदयन से क्षमा माँगता हुआ उसे प्रसन्न करता
है -`देव ! क्षम्यताम् इत्यादिना दर्शितम् ।`

ईप्सित वस्तु की प्राप्ति होना आनन्द कहलाता है ।[2] रत्नावली में
वासवदत्ता की अनुमति मिलने पर राजा-`यथाह देवी (रत्नावलीं गृह्णाति) इतना
कहकर ईप्सित रत्नावली के पाणि का ग्रहण करता है ।

नायकादि के दु:ख का समाप्त हो जाना समय कहलाता है ।[3]
रत्नावली में वासवदत्ता रत्नावली का आलिङ्गन करके उससे कहती है -`वासवदत्ता -
(रत्नावलीमालिङ्ग्य)समाश्वसिहि समाश्वसिहि भगिनिके ।

लब्ध अर्थ के शमन करने को कृति कहते हैं ।[4] रत्नावली में रत्नावली के
प्राप्त हो जाने पर राजा को खुश करने के लिये वासवदत्ता तथा वासवदत्ता को
खुश करने के लिये राजा परस्पर वचनों के द्वारा उपशमन करते हैं, अत: यहाँ कृति
है - राजा -`को देव्या: प्रसादं न बहु मन्यते ? । वासवदत्ता-`आर्यपुत्र ! दूरे-
इस्या मातृकुलं तत्क कुरुष्व यथा बन्धुजनं न स्मरति ।

---

१. प्रसाद: पर्युपासनम् । दश० ।

२. आनन्दो वांछितावाप्ति: - दश० ।

३. समयो दु:खनिर्गम: ।। १।५२।१ दश० ।

४. कृतिर्लब्धार्थशमनम् - दश० ।

जहाँ नायकादि को मान आदि की प्राप्ति हो, उसका व्यंजक वाक्य भाषण कहलाता है।[1] रत्नावली में वत्सराज की यह उक्ति उसके काम, अर्थ, मान आदि के लाभ की द्योतक है - राजा - अत:परमपि प्रियमस्ति ?

'नीतो विक्रमबाहुरात्मसमतां प्राप्तेयमुर्वीतले
सारं सागरिका ससागरमहीप्राप्त्येकहेतु: प्रिया।
देवी प्रीतिमुपागता च भगिनीलाभाज्जिता:कोशला:
किं नास्ति त्वयि सत्यमात्यवृषभे यस्मैकरोमि स्पृहाम् ।४।२१।

नायकादि को अद्भुत वस्तु की प्राप्ति उपगूहन कहलाता है तथा कार्य का दर्शन पूर्वभाव कहलाता है।[2] रत्नावली में यौगन्धरायण अपनी निम्न उक्ति के द्वारा वत्सराज को रत्नावली दे दी जानी चाहिये इस कार्य का - जिसकी अभिव्यक्ति यौगन्धरायण का अभिप्राय है वासवदत्ता के द्वारा दर्शन है अत: पूर्वभाव है - यौगन्धरायण:- एवं विज्ञायभगिन्यां सम्प्रति करणीये देवी प्रमाणम्।' वासवदत्ता -स्फुटमेव किं न भणसि ? प्रतिपादयास्मै रत्नमालामिति।'

काव्यसंहार निर्वहणाङ्ग रत्नावली में नहीं है।[3]

शुभ (कल्याण) का आशंसा प्रशस्ति कहलाती है।[4] (इसी प्रशस्ति को भरत-वाक्य भी कहते हैं)। रत्नावली में -

'उर्वीमुद्दामसस्या जनयतु विसृजन् वासवो वृष्टिमिष्टा-
मिष्टैस्त्रैविष्टपानां विदधतु विधिवत्प्रीणनं विप्रमुख्या:।

---

१. मानाद्याप्तिश्च भाषणम्। दश०।
२. कार्यदृष्ट्यद्भुतप्राप्ती पूर्वभावोपगूहने।। १।५३।। दश०
३. वराप्ति: काव्यसंहार: - दश०।
४. प्रशस्ति: शुभशंसनम्। दश०।

आकल्पान्तं च भुनात्समुपचितसुख: संगम: सज्जनानां
नि:शेषं यान्तु शान्तिं पिशुनजनगिरो दुर्जयानज्ञलेपा: ।।४।२२

अर्थोपक्षेपक -

संस्कृत रूपकों तथा उपरूपकों में जिन अर्थों को साक्षात् अभिनय द्वारा दिखाया जाता है उसे दृश्य अर्थ कहते हैं। रूपकों तथा उपरूपकों में अधिकांश भाग दृश्य होता है इसी से इसे दृश्य-काव्य भी कहते हैं। किन्तु कुछ ऐसे भी अर्थ होते हैं जिन्हें मंच पर दिखलाना शास्त्रीय नियमों के अनुसार अनुचित है। उन अर्थों को केवल सूचना मात्र दे दी जाती है, उसे सूच्य अर्थ कहते हैं।[१] ये सूच्य अर्थ या तो अभिनय द्वारा दिखलाना सम्भव नहीं होते और या तो कवि को अभीष्ट नहीं होते। सूच्य अर्थ दो प्रकार के होते हैं - एक नीरस तथा दूसरे विस्तीर्ण तथा अनुपयोगी। अनुपयोगी विस्तृत अर्थांशों को मंच पर दिखलाने से रूपक तथा उपरूपक अतिविस्तीर्ण हो जायगा इसलिये उन अर्थों को पात्रों के वार्तालाप द्वारा सूचना मात्र दे दी जाती है। इसी प्रकार नीरस अर्थों की भी सूचना मात्र दे दी जाती है इसी से इन अर्थों को सूच्य अर्थ कहते हैं। इन अर्थों के लिये रूपकों तथा उपरूपकों में विशेष भागों की नियोजना की जाती है। उन भागों को अर्थोपक्षेपक कहते हैं। इस प्रकार सूच्य अर्थों को सूचना पाँच प्रकार के अर्थोपक्षेपकों द्वारा दी जाती है - विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अङ्कास्य, अङ्कावतार।[२]

---

१. द्वेधा विभाग: कर्तव्य: सर्वस्यापीह वस्तुन: ।
सूच्यमेव भवेत् किंचिद् दृश्यश्रव्यमथापरम् ।। १।५६ दश०

१. नीरसोऽनुचितस्तत्र संसूच्यो वस्तुविस्तर: ।
दृश्यस्तु मधुरोदात्तरसभावनिरन्तर: ।। १।५७ दश०

२. अर्थोपक्षेपकै: सूच्यं पञ्चभि: प्रतिपादयेत् ।
विष्कम्भचूलिकाङ्कास्याङ्कावतारप्रवेशकै: ।। १।५८ दश०

विष्कम्भक -

विष्कम्भक द्वारा रूपकों तथा उपरूपकों में घटित घटनाओं अथवा भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं की सूचना दी जाती है । इसमें मध्यम श्रेणी के पात्रों द्वारा संक्षेप में कथांशों की सूचना दी जाती है ।

दशरूपककार के अनुसार विष्कम्भक नामक सूच्य अर्थोपक्षेपक द्वारा अतीत तथा भावी कथांशों की सूचना एक मध्यम पात्र अथवा दो मध्यम पात्रों द्वारा दी जाती है किन्तु आ० भरत के नाट्यशास्त्र के अनुसार दो से अधिक पात्र भी हो सकते हैं ।[१]

विष्कम्भक शुद्ध तथा सङ्कीर्ण दो प्रकार का होता है । जिसमें एक या एक से अधिक मध्यम श्रेणी के पात्र हों वह शुद्ध तथा जिसमें मध्यम तथा अधम दोनों श्रेणी के पात्र हों वह सङ्कीर्ण विष्कम्भक कहलाता है । विष्कम्भक में मध्यम - श्रेणी के पात्र का होना जरूरी है । यदि दोनों पात्र अधम हो जायेंगे तो वह विष्कम्भक नहीं रह जायगा ।

रत्नावली नाटिका में नाटिकाकार ने प्रथम अङ्क मे प्रस्तावना के अनन्तर विष्कम्भक की योजना की है । इसमें यौगन्धरायण नामक मध्यम पात्र का प्रयोग हुआ है । मध्यम श्रेणी का पात्र होने से यहाँ शुद्ध विष्कम्भक है और संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

इसमें राजा के अमात्य यौगन्धरायण द्वारा नाटिका की पूर्व कथा का आभास दिया है । कौशाम्बीनरेश उदयन के मन्त्री यौगन्धरायण को ज्योतिषियों से ज्ञात होता है कि सिंहलेश्वर की दुहिता रत्नावली जिसे परिणीत होगी उसे

----

१. वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षेपार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ।। १।५९ ।।
[illegible] । दशरूपक ।

चक्रवर्तित्व की प्राप्ति होगी । वह सिंहलेश्वर के समीप उदयन के निमित्त रत्नावली को प्रदान करने का संदेश भेजता है किन्तु उदयन की रानी वासवदत्ता के कारण वह इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता । तब योगन्धरायण लावाणक में वासवदत्ता के दग्ध होने के असत्य समाचार को प्रसारित करके सिंहलेश्वर से उदयन रत्नावली को प्राप्त कराने में सफल हो जाता है । किन्तु अभाग्यवश रत्नावली को लाने वाला जलयान टूट जाता है और रत्नावली प्रवाहित हो जाती है । सौभाग्य-वश कौशाम्बी के व्यापारियों द्वारा एक तख्ते पर बहती हुई निकाली जाती है और यौगन्धरायण के पास लाई जाती है । यौगन्धरायण उसका नाम सागरिका रखकर उसे अन्त:पुर में देवी के संरक्षण में रख देता है जिससे राजा उसे देखकर उसके प्रति आकर्षित हो ।

इसप्रकार भूत तथा भावी अर्थांशों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के आरम्भ में विष्कम्भक की योजना की गई है ।

प्रवेशक -

दशरूपककार के अनुसार प्रवेशक की योजना दो अङ्कों के मध्य होनी चाहिये । इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं होती । नीच पात्रों का प्रयोग होता है और शेष अर्थों की सूचना दी जाती है ।[१]

पहला प्रवेशक -

रत्नावली नाटिका में प्रथम अङ्क के बाद और द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है । इसमें सुसङ्गता और निपुणिका नामक

---

१. अथ प्रवेशक: -

तद्वदेवानुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजित: ।।६०।।

प्रवेशो ङ्कद्वयस्यान्त: शेषार्थस्योपसूचक: । (डी०आर०)

दशो- ६०

दो नीच स्त्रियों की योजना की गई है। नीच श्रेणी का पात्र होने से यहाँ प्रवेशक है और प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

द्वितीय अङ्क के प्रवेशक से ज्ञात होता है कि सागरिका पूजा की सामग्री और सारिका दोनों ही अपनी सखी सुसंगता को सौंपकर मकरन्दोद्यान में छिपकर राजा की सुन्दरता का अवलोकन करती है। सुसंगता उसकी खोज करती है। इतने में विस्मययुक्त निपुणिका आती हुई दिखाई दे जाती है। सुसङ्गता उससे पूछती है कि विस्मित होकर किधर जा रही हो जो मुझे नहीं देखती हो। निपुणिका उसे सूचित करते हुये कहती है - निपुणिका - कधं सुसंगदा। हला सुसंगदे सुट्ठु तुए जाणिदं। एदं क्खु मम विम्हअस्स कारणम्। अज्ज मिल भट्टा सिरि पव्वतादो आअदस्स सिरिखण्डदासणामधेअस्स धम्मिअस्स सआसादो अकाल कुसुमसंजणण दोहलअं सिक्खिअ अत्तणो परिग्गहीदं णोमालिअं कुसुमसमिद्धिसोहिदं करिस्सदित्ति तहिं एदं वुत्तान्तं जाणिदुं देवीए पेसिदम्हि। तुमं उण कहिं पत्थिदा। (क्या सुसंगता है। सखी सुसंगता, तुमने ठीक समझ लिया, मेरे विस्मय का यही कारण है कि आज महाराज श्रीपर्वतनिवासी श्रीखण्डदासनामक महात्मा से असमय में फूल पैदा करने की कला सीखकर अपनी नवमालिका को फूल से समृद्ध बना देंगे इसी का पता लगाने के लिये देवी ने मुझे वहाँ भेजा था। तुम किधर जा रही हो? सुसंगता बताती है कि वह सागरिका को खोजने जा रही है। निपुणिका उसे बताती है कि उसने सागरिका को चित्रकारी के लिये पट्टिका और कूँची लेकर कदली-गृह में उद्विग्न दशा में प्रवेश करते देखा है। सुसंगता कदलीगृह में चली जाती है और निपुणिका देवी के पास चली जाती है। प्रवेशक समाप्त हो जाता है।

<u>दूसरा प्रवेशक</u> -

रत्नावली नाटिका में द्वितीय अङ्क के अन्त और तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है। इसमें मदनिका और कांचनमाला नामक दो नीच स्त्री पात्रों की योजना की गई है। नीच श्रेणी का पात्र होने से यहाँ प्रवेशक है और प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

तृतीय अङ्क के प्रवेशक से ज्ञात होता है कि मदनिका कांचनमाला की खोज करती हुई प्रवेश करती है और इतने में ही कांचनमाला दिखाई पड़ जाती है। कांचनमाला द्वारा अमात्य वसन्तक की प्रशंसा किये जाने पर मदनिका ने प्रशंसा का कारण पूछा। तब कांचनमाला उसे सूचित करती है कि आज राजकुल से लौटते हुये उसने चित्रशालिका के द्वार पर वसन्तक और सुसंगता में होने वाली बातें सुन ली हैं। साथ ही कांचनमाला यह भी सूचित करती है कि सुसंगता ने कहा है कि चित्रफलक वृत्तान्त से शङ्कित होकर सागरिका को मेरा रखवाली में सौंपती हुई देवी ने जो कपड़े मुझे पारितोषिक में दिये हैं, उन्हीं कपड़ों से सागरिका देवी का रूप देकर और स्वयं कांचनमाला बनकर सन्ध्या समय चित्रशालिका के द्वार पर आऊँगी। इस तरह सागरिका से राजा की भेंट माधवीलता मण्डप में हो सकेगी। तदुपरान्त मदनिका और कांचनमाला दोनों मिलकर राजा और सागरिका के मिलन की सूचना देवी को देने चली जाती हैं। प्रवेशक समाप्त हो जाता है।

तीसरा प्रवेशक --

तृतीय अङ्क के अन्त और चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है। इसमें सुसंगता और विदूषक नामक दो नीच स्त्री तथा पुरुष पात्रों का प्रयोग हुआ है। नीच पात्र होने से प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

तृतीय अङ्क के अन्त में जब वासवदत्ता सागरिका को लतापाश से बाँध कर ले जाती है तब चतुर्थ अङ्क के प्रवेशक में सागरिका का सखी सुसंगता का प्रवेश होता है। सागरिका के प्रति खेद प्रकट करते हुये वह सागरिका की रत्नमाला किसी ब्राह्मण को देने के लिये ढूंढ़ती है। इतने में वसन्तक का प्रवेश होता है। वह अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक यह सूचित करता है कि देवी ने उसे बन्धनमुक्त कर दिया और कर्णाभूषण आदि दिये हैं। किन्तु सुसंगता जब यह सूचित करती है कि सागरिका को देवी ने न जाने कहाँ भेज दिया है और कहला दिया है कि वह उज्जयिनी भेजी जा रही है तब विदूषक रत्नमाला को ग्रहणकर उससे अपने मित्र का मनोरंजन करना चाहता है किन्तु वह आश्चर्यपूर्वक सुसंगता से पूछता है कि सागरिका

को यह माला कहाँ से प्राप्त हुई । सुसंगता बताती है कि उसने भी सागरिका से जब यह पूछा था तब सागरिका ने उत्तर दिया था - "ततः सोर्ध्वप्रेक्ष्य दीर्घं निःश्वस्य सुसंगते किमिदानीं तवैतया कथयेति भणित्वा रोदितुं प्रवृत्ता । (तदो सा उद्धं पेक्खिअ दीहं णिस्ससिअ सुसंगदे किं दाणिं तुह एदाए कधाएत्ति भणिअ रोदिदुं पउत्ता ।) विदूषक सागरिका की रत्नमाला द्वारा उसके उच्च कुलोत्पन्न होने का अनुमान करता है और स्फटिक शिला मण्डप में अपने मित्र उदयन के पास चला जाता है और सुसंगता भी देवी के पास चली जाती है । प्रवेशक समाप्त हो जाता है ।

प्रियदर्शिका नाटिका :-

नान्दी -

प्रियदर्शिका नाटिका के आरम्भ करने के पूर्व उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिये गौरी और शिव की स्तुति की गई है । इसमें कथानक की संक्षिप्त सूचना भी दी गई है । इसमें आठ पंक्तियों वाली नान्दी है ।

नान्दी के प्रथम श्लोक 'धूमव्याकुलदृष्टिः' द्वारा तालाब में मधुमक्खियों द्वारा नायिका के सताये जाने की सूचना दी गई है । 'इन्दुकिरणैराह्लादिताक्षीं' द्वारा नायिका की प्रसन्नता की सूचना दी गई है जबकि राजा नायिका की प्रसन्नता की सूचना दी गई है जबकि राजा नायिका को मधुमक्खियों द्वारा सताये जाने से रक्षा करता है । पुनः 'पश्यन्ती वामुत्सुका' के द्वारा राजा के साथ नायिका के द्वितीय मिलन की सूचना दी गई है । 'नतमुखी' द्वारा नायिका के भ्रम की सूचना दी गई है जबकि नाटक करते समय वह राजा को ही उपस्थित देखती है । 'ईर्ष्यां पादनखेन्दुदर्पणगते गङ्गा दधाने' द्वारा या तो नायिका की निराशा की सूचना दी गई जब वह मनोरमा से कहती है कि राजा तो स्वतः रानी के प्रेमपाश में आबद्ध है अतः नायिका का स्मरण कैसे रखेगा और या तो रानी के क्रोध की सूचना दी गई है जबकि उसे राजा और

आरण्यिका के प्रेम के विषय में ज्ञात हो जाता है । 'स्पर्शादुत्पुलकाकरग्रहविधौ' द्वारा नायिका की प्रसन्नता की सूचना दी गई है जबकि रानी द्वारा नायक-नायिका का वास्तविक मिलन करा दिया जाता है ।

नान्दी के द्वितीय श्लोक द्वारा विजयसेन के आक्रमण का कुछ कुछ आभास मिलता है ।

सूत्रधार —

'प्रियदर्शिका' नाटिका में सूत्रधार के 'अये कथं प्रस्तावनाभ्युपेते मयि विदितास्मदभिप्रायो दृढवर्मणा अन्त:पुरिकञ्चुकिभूमिकामादाय अस्मद्भ्रात इत स्वामिभक्तेति' इन शब्दों द्वारा कंचुकी के प्रवेश की सूचना हो जाती है ।

अर्थप्रकृति —

बीज—प्रियदर्शिका नाटिका के नृप का कार्य उदयन व सागरिका का मिलन करा देना है जो कंचुकी को अभीष्ट है । नाटिका के विष्कम्भक में ही कंचुकी की यह चेष्टा बीज के रूप में रखी गई है । कंचुकी की निम्न उक्ति में बीज का संकेत है । कंचुकी ' ' तदधुन स्वामिनमेव गत्वा पादपरिचर्यया जीवितशेष-मात्मन: सफलयिष्यामि ।

विन्दु —

प्रियदर्शिका नाटिका में वासवदत्ता के द्वारा अगस्त्य को अर्घ्य देना एक अवान्तर वृत्त है, इससे एक अर्थ समाप्त हो जाता है और कथा में विशृंखलता आ जाती है । इसे शृङ्खलाबद्ध करने के लिये आरण्यिका के रूप में रहती हुई प्रिय-दर्शिका के द्वारा 'अयं स महाराज: । यस्याहं तातेन दत्ता । स्थाने खलु तातस्य पक्षपात:' यह उक्ति कथाकार कथा का सन्धान कर दिया है अत: विन्दु है ।

प्रकरी —

विजयसेन के द्वारा कलिङ्गराज की मृत्यु प्रकरी है ।

कार्य -

प्रियदर्शिका नाटिका में उदयन और प्रियदर्शिका का मिलन प्रधान साध्य होने से यहाँ कार्य है ।

अवस्था -

आरम्भ - प्रियदर्शिका में तदधुना स्वामिनमेव गत्वा पादपरिचर्यया जीवितशेषमात्मनः सफलयिष्यामि' कंचुकी के द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है ।

प्रियदर्शिका नाटिका के तृतीय अङ्क में मनोरमा (प्रियदर्शिका की सखी) तथा विदूषक की युक्ति से राजा उदयन तथा आरण्यका (प्रियदर्शिका) के सम्मिलन का प्रयत्न किया जाता है अतः यहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है ।

प्रियदर्शिका के तृतीय अङ्क में वेष-परिवर्तन करके अभिसरण आदि उपाय होने पर वासवदत्ता के रूप में विघ्न की आशङ्का 'अथ पुनः वासवदत्तायाः वेषं कृत्वा तथा नर्तितं देव्याः कोपो भविष्यति' मनोरमा के इस वचन से दिखलाई गई है । इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है ।

फलागम -प्रियदर्शिका नाटिका में राजा उदयन को आरण्यका (प्रियदर्शिका) का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्व की प्राप्ति नाटिका का फलागम है । अतः यह कार्य की फलागम अवस्था है ।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग --

मुख-सन्धि -

प्रियदर्शिका नाटिका के विष्कम्भक में कंचुकी की निम्न उक्ति में बीजोत्पत्ति होने से नाटिका के प्रथम अङ्क में मुख सन्धि है -

'राज्ये विपद्बन्धुवियोगदुःख
देशच्युतिर्दुर्गममार्गखेदः ।

आस्वाद्यते स्याः कटुनिष्फलायाः
फलं मयैतच्चिरजीविताया: ।।४१ ।

मूल्याङ्कन -

उपक्षेप- प्रियदर्शिका नाटिका में मंच पर प्रवेश करने पर कंचुकी अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है । उसका कार्य उदयन व प्रियदर्शिका को मिला देना है । बीजरूप व्यापार की सूचना कंचुकी की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है -
'राज्ञो विपद्बन्धु .... जीवितायाः । ४१ ।।

परिकर या परिक्रिया - प्रियदर्शिका नाटिका में कंचुकी अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये राजोत्पत्ति को पल्लवित करता है । इसकी सूचना कंचुकी की निम्न उक्ति से होती है -'तादृशस्यापि नाम अप्रतिहतशक्तित्रयस्य रघुदिलीपनहुषतुल्यस्य दृढवर्मणो मत्प्रार्थनेनैव स्वदुहिता वत्सराजाय देयेति बद्धानुशयेन वत्सराजोऽपि दृढबन्धने वर्तत इति लब्धरन्ध्रेण कलिङ्गहतकेन सहसागत्य विपर्यासो दृशो क्रियते । इति यत् सत्यमुत्पन्नमपि न बुद्धं ।'
परिन्यास -प्रियदर्शिका नाटिका में कंचुकी की निम्न उक्ति में परिन्यास है -

'घनबन्धनमुक्तो यं कन्याग्रहणात् परं तुलांप्राप्य ।
रविरधिगतस्वधामा प्रतयति खलु वत्सराज इव ।।५ ।।
विलोभन -प्रियदर्शिका नाटिका में वैतालिक वत्सराज के गुणों के वर्णन द्वारा प्रियदर्शिका का विलोभन करते हैं जो समागम के हेतु रूप अनुराग बीज को प्रियदर्शिका के हृदय में बढ़ा रहे हैं । इस प्रकार निम्नपद्य में विलोभन है -

लीलामङ्गलमंजनोपकरणास्नानीयसम्पादिनः
सर्वान्ति: पुरवारविभ्रमवतीलोकस्य ते सम्प्रति ।
आयासस्खलदंशुकव्यवहितच्छायावदातैःस्तनैः
उत्क्षिप्ताः परशातकुम्भकलशैरालङ्कृता स्नानभुः

युक्ति -

प्रियदर्शिका नाटिका में कंचुकी की निम्न उक्ति में युक्ति की व्यंजना हुई है - येन सापि राजपुत्री यथाकथंचिदेनां वत्सराजायोपनीय स्वामिमनृणां करिष्यामीति मत्वा मया तादृशादपि प्रलयकालदारुणादवस्कन्दसम्भ्रमादपवाह्य देवस्य दृढवर्मणो मित्रभावान्विततया आरण्यकस्य नृपतेर्विन्ध्यकेतोर्गृहे स्थापिता सतो स्नानाय नातिदूरमित्यगस्त्यतीर्थं गते मयि कश्चित् वैरपि निपत्य हते विन्ध्यकेतौ रक्षोभिरिव निर्मानुषीकृते दग्धे स्थाने सापि न ज्ञायते कस्यामवस्थायां वर्तत इति। निपुणं विचितमेतन्मया सर्वं स्थानं न च ज्ञातं किं तैरेव दस्युभिर्नीता, अथवा किमिंतैव दग्धेति। तत् किं करोमि मन्दभाग्यः। (विचिन्त्य) अये श्रुतं मया बन्धनात् परिभ्रष्टः प्रद्योततनयामपहृता वत्सराजः कौशाम्बीमागत इति। कि तत्रैवगच्छामि। (निःश्वस्यात्मनो वस्थां पश्यत्) अहह राजपुत्र्या विना तत्र गत्वा किं कथयिष्यामि। अये कथितं चाथ मम विन्ध्यकेतुना - मा वैषा। जीवति तत्रभवान् महाराजो दृढवर्मा परन्तु गाढप्रहारजर्जरीकृतवपुर्बद्धस्तिष्ठति इति।

प्राप्ति -

प्रियदर्शिका नाटिका में आरण्यका कहती है - अयं स महाराजः। यस्यार्हं तातेन दत्ता। स्थाने खलु तातस्य पक्षपातः यहाँ आरण्यका को सुख की प्राप्ति हुई है अतः प्राप्ति नामक मुखाङ्ग है।

समाधान-विधान - ×

परिभाव - प्रियदर्शिका नाटिका में विदूषक की निम्नउक्ति में परिभावना नामक मुखाङ्ग है - विदूषकः - भो वयस्य, पश्य पश्य। आश्चर्यम् आश्चर्यम्। एषा रक्तलिवलयकरपल्लवप्रभाविच्छुरितेन अपहसितशोभं करोति कमलमपचिन्वती।

उद्भेद - प्रियदर्शिका नाटिका में आरण्यका राजा को इन्दीवरिका समझती है परन्तु विदूषक की निम्न उक्ति में-विदूषकः - भवति सकलभुवनपरित्राणसमर्थेन वत्सराजेन परिधायमाणापि किं करोमि आक्रन्दसि। [handwritten:] उसी गूढ वस्तु का भेदन होने से
[handwritten:] उद्भेद है।

करण, भेद - ४ x

प्रतिमुख सन्धि –

प्रियदर्शिका नाटिका के प्रथम अङ्क में उदयन व आरण्यिका के (भावी) समागम के हेतु रूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है उसे द्वितीय अङ्क में विदूषक तथा मनोरमा (मनोरमा) तृतीय अङ्क) इन्दीवरिका जान जाते हैं और वासवदत्ता उदयनचरित से सम्बद्ध नाटक का अभिनय करना चाहती है जिसमें मनोरमा को उदयन बनना है और आरण्यिका प्रियदर्शिका) को वासवदत्ता। के कौशल से मनोरमा के स्थान पर स्वयं उदयन ही पहुंच जाता है अत: वासवदत्ता को सन्देह हो जाता है। इस प्रकार बीज के अङ्कुर का दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है।

विकास –

प्रियदर्शिका में आरण्यिका की निम्न उक्ति में इसकी व्यंजना हो रही है - आरण्यिका- 'हृदय दुर्लभजनं प्रार्थयतत्व कस्मात् मांदुखितां करोषि।'

परिसर्प- x विधूत - प्रियदर्शिका में आरण्यिका का अनुराग बीज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है - आरण्यिका- .... सर्वथा मरणं वर्जयित्वा कुत: मे हृदयस्य अन्या निर्वृति:।'

शम- x

नर्म- प्रियदर्शिका में इस वार्तालाप से नर्म की व्यंजना हो रही है - मनोरमा (सस्मितम्) आर्य वसन्तक, तव दर्शनेनैव अपगत: प्रियसख्या: सन्ताप:। येन स्वयमेव नलिनीपत्राणि अपनयति। तदनुगृह्णातु आर्य इमानि।

आर० -- (सावेगम्) अयि परिहासशीले, किं मां लज्जापयसि।

विदू० -(सविषादम्) तिष्ठन्तु तावत् नलिनीपत्राणि। अतिलज्जालु: ते प्रियसखी तत् कथमेतयो: समागमो भविष्यति।

नर्मद्युति, प्रगमन, निरोधन- x।

पर्युपासन - प्रियदर्शिका में राजा वासवदत्ता का अनुनय करता है - राजा-कथं न
कुपितासि -

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रा । तथापि द्युति :
माधुर्येऽपि सति स्खलत्यनुपदं ते गद्गदा वागियम् ।
निश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिता:
कोपस्ते प्रकटप्रसादविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते ।। १४१ ।

(पादयोर्निपत्य) प्रसीद प्रिये प्रसीद ।

पुष्प- प्रियदर्शिका नाटिका में पुष्प की सूचना विदूषक व राजा का निम्न-
कथोपकथन देता है -

विदूषक- भो वयस्य पूर्णा: ते मनोरथा: । < < < ।

राजा - साधु वयस्य साधु । कालानुरूपमुपदिष्टम् ।

उपन्यास - प्रियदर्शिका नाटिका में राजा ने निम्न वाक्य में प्रसन्नता (हेतु) का
उपन्यास बीज का उद्भेद किया है अत: मनोरमा की निम्न उक्ति में उपन्यास
है -

राजा- (मनोरमामुपसृत्य) मनोरमे सत्यमिदं यद्वसन्तकोऽभिधत्ते ।

मनोरमा- भर्त: सत्यम् । मण्डय स्वैराभरणैरात्मानम् ।

वज्र - प्रियदर्शिका में वासवदत्ता राजा तथा आरण्यका के प्रेम को जानकर क्रुद्ध
होती हुई निम्न कटुवचनों को कहती है, यहाँ वज्र प्रतिमुखाङ्ग है- वासवदत्ता-(
ससम्भ्रममुपसृत्य) आर्यपुत्र, प्रतिहतममङ्गलम् । < < मर्षयतु आर्यपुत्र: । त्वं
मनोरमेति कृत्वा नीलोत्पलदाम्ना बद्धोऽसि । < < कोऽत्र कुपित: ।

वर्णसंहार -

गर्भसन्धि -

प्रियदर्शिका के तृतीय अङ्क में आरण्यका के अपसरण के उपाय से
राजा को फलप्राप्ति की आशा हो जाती है किन्तु वासवदत्ता के द्वारा पुन:
विघ्न उपस्थित होता है अत: एक बार फलप्राप्ति के बाद पुन: विच्छेद होता

है फिर विघ्न के निवारण के उपाय तथा फलहेतु का अन्वेषण किया जाता है। इस अन्वेषण की व्यंजना राजा की निम्न उक्ति से होती है -

राजा - तथापीदानीं शयनीयं गत्वा देव्याः प्रसादनोपायं चिन्तयामि।

अद्भुताहरण -

प्रियदर्शिका में वासवदत्ता का वेष धारण की हुई आरण्यका के साथ राजा उदयन कपटपूर्वक अभिसरण करते हैं। इस छद्म की सूचना मनोरमा की निम्न उक्ति से मिलती है - मनोरमा-चिरयति महाराजः। किं न कथितं वसन्तकेन अथवा देव्या बिभेति यदिदानी आगच्छेत् तदा रमणीयमभवेत्।

मार्ग - प्रियदर्शिका में आरण्यका के अभिसरण की सूचना देकर विदूषक आरण्यका के समागम का निश्चय राजा को दिलवा देता है। इस प्रकार तत्वार्थनिवेदन के कारण निम्न उक्ति में मार्गनामक गर्भांङ्क है -

विदूषक- यदि मां न प्रत्येषि। एषा मनोरमा तव वेषं धारयन्ती तिष्ठति। तदुपसर्प्य स्वयमेव पृच्छ।

राजा - (मनोरमामुपसृत्य) मनोरमे सत्यमिद यद्वसन्तकोऽभिधत्ते।

मनो० - भर्तः सत्यम्। मण्डय एतैराभरणैरात्मानम्।

वितर्करूप -×

उदाहृति× - क्रम - प्रियदर्शिका में राजा आरण्यका के समागम की अभिलाषा कर रहा था कि आरण्यका आ जाती है अतः क्रम है - राजा-

'सन्तापं प्रथमं तथा न कुरुते शीतांशुरेव मे
नि:श्वासा ग्लपयन्त्यजस्रमधुनैवोष्णास्तथा नाधरम्।
सम्प्रेत्यैव मनो न शून्यमलसान्यङ्गानि नो पूर्ववत्-
दुःखं याति मनोरथैस्तनुतां संचिन्त्यमानेष्वपि ॥७॥

संग्रह -×

अनुमान -×

अधिबल - प्रियदर्शिका में इन्दीवरिका जब वासवदत्ता को बताती है कि वह चित्र-

शाला के द्वार पर सोया है तब वासवदत्ता। विदूषक तथा मनोरमा के द्वारा राजा तथा आरण्यिका के अभिसरण की बात जान लेती है। इसकी सूचना इन्दीवरिका की निम्न उक्ति से मिलती है -

इन्दी॰ - भट्टिनि, वसन्तकश्चित्रशालाद्वारे प्रसुप्तस्तिष्ठति।

तोटक --प्रियदर्शिका में आरण्यिकासमागम में विघ्न उपस्थित करते हुये वासवदत्ता क्रुद्ध वचन के द्वारा उदयन की इष्टप्राप्ति को अनिश्चित बना देती है अतः यह तोटक है।

वासवदत्ता- (सरोषं हसन्ती) साधु मनोरमे साधु। शोभनं त्वया नर्तितम्। ×
× मर्षयतु आर्यपुत्रः। त्वं मनोरमेति कृत्वा नीलोत्पलदाम्ना बद्धोऽसि। ×
× आरण्यके, त्वं कथं न जानासि। इदानीं ते शिक्षये। इन्दीवरिके गृहाणैनाम्।

उद्वेग - प्रियदर्शिका में वासवदत्ता आरण्यिका का अपकार करने वाली है। अतः उसकी शत्रु है जब वह आरण्यिका को पकड़कर ले जाती है तो आरण्यिका को भय होता है अतः यह उद्वेग है। आरण्यिका की इस उक्ति में इसी का सङ्केत है -

आर॰-(सभयं) भट्टिनि, अहं किमपि न जानामि।

सम्भ्रम - प्रियदर्शिका में मनोरमा की निम्न उक्ति में सम्भ्रम है - मनोर॰ - कथमन्यथैव हृदये कृत्वा देव्या मन्त्रितम्। एतेन मूर्खवटुकेनान्यथैव बुद्ध्वा सर्वमाकुलीकृतम्।

आक्षेप--

प्रियदर्शिका में राजा की निम्न उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि आरण्यिका प्राप्ति वासवदत्ता की प्रसन्नता पर ही आश्रित है। इसके द्वारा राजा गर्भबीज को प्रकट कर देता है अतः यहाँ आक्षेप है। राजा- भीतस्योत्सुकमानस्य महति क्लिष्टोऽस्म्यहं सङ्कटे। तथापि इदानीं शयनीयं गत्वा देव्याः प्रसादनोपायं चिन्तयामि।

निर्वहण सन्धि --

प्रियदर्शिका नाटिका में प्रियदर्शिका कंचुकी आदि के कार्यों (अर्थों) का जो मुखसन्धि आदि में इधर उधर छिटके पड़े थे, वत्सराज के ही कार्य के लिये

समाहार होता है । इसकी सूचना कंचुकी की इस उक्ति के द्वारा दी जाती है -

कंचुकी-(विलोक्य) सुसदृशी खल्वियं राजपुत्र्याः प्रियदर्शनायाः ।

निर्वहणाङ्ग -

सन्धि - प्रियदर्शिका के चतुर्थ अङ्क में कंचुकी प्रियदर्शिका को पहचान लेते हैं । यहाँ नाटिका रूप बीज को उद्भावना की गई है अतः सन्धि है । कंचुकी की निम्न-उक्ति इसकी सूचक है -

कंचुकी-सुसदृशी खल्वियं राजपुत्र्याः प्रियदर्शनायाः ।

विबोध- प्रियदर्शिका के चतुर्थअङ्क में कंचुकी प्रियदर्शिका को पहचानकर उसके विषय में वासवदत्ता से पूछते हैं, यहाँ पर निम्न उक्ति के द्वारा प्रियदर्शिका रूप कार्य की फिर से खोज होने के कारण विबोध नामक निर्वहणाङ्ग है -

कंचुकी - (वासवदत्ता निर्दिश्य) राजपुत्रि कुत इयं कन्यका ।

वास0- आर्य,विन्ध्यकेतोर्दुहिता । तं व्यापाद्य विजयसेनेन आनीता ।

ग्रथन -

निर्णय -प्रियदर्शिका नाटिका में यौगन्धरायण निम्न उक्ति के द्वारा कार्य से सम्बद्ध अपने अनुभवों या कार्यसम्बद्ध अपने कार्यों को राजा से वर्णित करता है अतः यहाँ निर्णय है-कंचुकी-राजपुत्रि, तस्मिन् कलिङ्गहतकावस्कन्दे विद्रुतेष्वितस्ततो न्तः पुरजनेषु दिष्ट्या दृष्टामिदानीं न युक्तमत्र स्थातुमिति तामहं गृहीत्वा वत्सराजा न्तिकं प्रस्थितः । ततः संचिन्त्य तां विन्ध्यकेतोर्हस्ते निक्षिप्य निर्गतो स्मि । यावत् प्रतीपमागच्छामि तावत्कैरपि तत्स्थानं सह विन्ध्यकेतुना स्मर्तव्यतां नीतम् ।

परिभाषण-प्रसाद-आनन्द -

समय- प्रियदर्शिका में वासवदत्ता कहती है -

वास0 -(सास्रं) हंहे अलीकशीले । इदानीमपि तावत् भगिनी स्नेहं दर्शय । इदानीं

समाश्वसितास्मि ।

कृति -

प्रियदर्शिका में वासवदत्ता को खुश करने के लिये राजा निम्न वचनों के द्वारा उपशमन करते हैं अत: यहाँ कृति है -

राजा - देवी प्रभवति - कोऽन्यथाकर्तुं विभव: ।

भाषण - प्रिय० में राजा की यह उक्ति उसके काम, अर्थ, मान आदि के लाभ को द्योतक है -

राजा - किमत: परं प्रियं । पश्य -

निश्शेषं दृढवर्मणा पुनरपि स्वं राज्यमध्यासितं
त्वं कोपेन सुदूरमप्यपकृता सद्य: प्रसन्ना मम ।
जीवन्ती प्रियदर्शिका च भगिनी भूयस्त्वया सङ्गता
किन्तु स्यादपरं प्रियं प्रियतमे यत्सांप्रतं प्रार्थ्यते ।।४।११ ।।

काव्यसंहार -

प्रियदर्शिका में वासवदत्ता की निम्न उक्ति के द्वारा नाटिका के काव्यार्थ का उपसंहार किया गया है अत: काव्यसंहार है -

वास० -

आर्यपुत्र, अतो पि परं किं प्रियं क्रियताम् ।

प्रशस्ति - प्रियदर्शिका में राजा की इस उक्ति के द्वारा कल्याण का कथन किया गया है अत: प्रशस्ति है ।

`उर्वीमुद्दामसस्यां जनयतु विसृजन्वासवो वृष्टिमिष्टा -
मिष्टैस्त्रैविष्टपानां विदधतु विधिवत्प्रीणनं विप्रमुख्या: ।
आकल्पान्तं च भूयात् स्थिरतरमुचिता सङ्गतिस्सज्जनानां
निश्शेषं यान्तु शान्तिं पिशुनजनगिरो दुर्जया वज्रलेपा: ।।

अर्थोपक्षेपक -

विष्कम्भक - प्रियदर्शिका नाटिका में प्रथमाङ्क के प्रारम्भ में प्रस्तावना के बाद

हुआ है अत: शुद्ध विष्कम्भक है । और संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

इसमें राजा दृढ़वर्मा के कंचुकी विनयवसु द्वारा नाटिका की पूर्वकथा का आभास दिया गया है । कलिङ्गनरेश दृढ़वर्मा की पुत्री के साथ विवाह का प्रस्ताव रखता है किन्तु दृढ़वर्मा इन्कार कर देता है क्योंकि वह अपनी पुत्री का विवाह उदयन के साथ करने का सङ्कल्प कर चुका है । उदयन जब प्रद्योत के यहाँ बन्दी हो जाता है तो कलिङ्गनरेश दृढ़वर्मा को परास्त कर देता है किन्तु दृढ़वर्मा का कंचुकी दृढ़वर्मा की पुत्री को लेकर विन्ध्यकेतु के यहाँ उसकी सुरक्षा के लिये चला जाता है । उदयन का सेनापति विजयसेन विन्ध्यकेतु पर आक्रमण करता है, विन्ध्यकेतु मारा जाता है । प्रियदर्शिका वत्सराज को उपहार रूप में दे दी जाती है । उदयन उसको वासवदत्ता के संरक्षण में रख देते हैं ।

इन्हीं भूत तथा भावी अर्थांशों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में शुद्ध विष्कम्भक की योजना की गई है ।

<u>प्रवेशक</u> —

शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में दो अङ्कों के मध्य तृतीय अङ्क के बाद और चतुर्थ अङ्क के पूर्व प्रवेशक की योजना की गई है । इसमें मनोरमा और कांचनमाला नामक दो स्त्री पात्रों का प्रयोग हुआ है । इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है । नीच-पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी प्रसंगों की सूचना दी गई है । तृतीय अङ्क में अन्त में राजा द्वारा देवी को प्रसन्न करने का प्रयास किये जाने पर भी देवी जब प्रसन्न नहीं होती तब चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में मनोरमा द्वारा यह सूचना मिलती है कि रानी आरण्यका को कारागार में बन्द कर देती हैं । कांचनमाला साङ्कृत्यायनी की खोज करती हुई मनोरमा से मिलती है और दोनों के परस्पर वार्तालाप द्वारा यह ज्ञात होता है कि उसके मातृस्वसा-पति दृढ़वर्मा कलिङ्गनरेश के कारागार में बन्द हैं और उनको उदयन की सहायता की अपेक्षा

है। अतः वासवदत्ता भी चिन्तित हो जाती है। यह सूचना देकर काँचनमाला भट्टिन चिह्नित (देवी) के पास और मनोरमा आरण्यका के पास चली जाती हैं।

चूलिका –

प्रथम अङ्क के अन्त में नेपथ्य द्वारा वैतालिक सूर्योदय की सूचना देता है–

विद्धशालभंजिका –

नान्दी –

विद्धशालभंजिका नाटिका के तीन श्लोकों में नाटिका की निर्विघ्न समाप्ति के लिये देवता की स्तुति किये जाने के कारण निम्न श्लोकों में नान्दी है –

कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने
परमसुहृदनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता
जयति सुरतलीलानाटिकासूत्रधारः।।

अपि च।

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः।।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुमो वामलोचनाः।।२।।

(समाध्याय)

गोनासाय नियोजितागदरजाः सर्पाय बद्धौषधिः
कण्ठस्थाय विषाय वीर्यमहतः पाणौ मणीन् बिभ्रती।
भर्तुर्भूतगणाय गोत्रजरती निर्दिष्टमन्त्राक्षरा
रक्षत्वद्रिसुता विवाहसमये प्रीता च भीता च वः।।३।।

सूत्रधार –

विद्धशालभंजिका नाटिका में सूत्रधार के (आकर्ण्य) अये यायावरेण दौहित्रिकेन कविराजशेखरेण विरचितायां विद्धशालभंजिकानाम्न्यां नाटिकायां वस्तूपक्षेपो गीयते। (विमृश्य) तन्मन्ये तदभिनये श्रीयुवराजदेवस्य परिषदादेशः।' इन शब्दों

से अभिनेय रचना और नाटककार का परिचय मिलता है ।

अर्थप्रकृति --

बीज -- विद्धशालभंजिका नाटिका के नृप का कार्य राजा तथा मृगाङ्कलेखा का मिलन करा देता है जो भागुरायण को अभीष्ट है । नाटिका के विष्कम्भक में अस्ति किंचन बीजं तच्च कार्यसिद्धावाविर्भविष्यति इस वाक्य में बीज नामक अर्थ-प्रकृति है ।

बिन्दु - विद्धशालभंजिका नाटिका में राजा स्वप्नदृष्ट सुन्दरी को राजकीय चित्र-शाला में प्रकृति देखता है तथा उसके कण्ठ में माला डाल देता है । इतने में वैतालिक मध्याह्न की सूचना देता है और कथा विच्छिन्न हो जाती है । इसे संश्लिष्ट कराने के लिये उपवन में कन्दुक-क्रीड़ा के व्याज से मृगाङ्कावली को उपस्थित किया जाता है तथा विदूषक और राजा द्वारा - विदूषकः - प्रियवयस्य विनोदार्थं महामन्त्रिकारिता रत्नावली नाम चतुष्किका । किं पुनः क्यापि सदेवतैवेषा । राजा- (विलोक्य स्वागतम्) हृदय । दृष्ट्या वर्धसे । स्वप्नदृष्टजनप्रत्यभिज्ञा दर्शनेन । यह उक्ति कहलाकर कथा का सन्धान कर दिया है अतः यहाँ पर बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है ।

पताका-प्रकरी --

कार्य - विद्धशालभंजिका में राजा विद्याधरमल्ल और नायिका मृगाङ्कावली का मिलन ही प्रधान साध्य होने से कार्य है ।

अवस्था -- आरम्भः

विद्धशालभंजिका में - तदहमपि सुषिरस्तम्भसंचारं वासगृहं निर्मितवतीं तथाविधां रत्नवतीं चतुष्किकां च करिष्यतां शिल्पवतां मन्त्रिसमादिष्टौ कनकरत्नादिसामग्री दापयितुं महाराजभाण्डागारं यास्यामि । (इति निष्क्रान्तः) हरदास के इस वाक्य द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है ।

प्रयत्न –

विद्धशालभंजिका में प्रथम अङ्क में वैतालिक द्वारा सन्ध्योपासना की सूचना दिये जाने के कारण राजा की फलप्राप्ति में व्यवधान होने पर द्वितीय अङ्क में विदूषक के साथ राजा पुन: मृगाङ्कावली मिलन रूप फलप्राप्ति के लिए उपाय ढूंढ़ता है। इस प्रकार द्वितीय अङ्क में विदूषक की युक्ति से राजा तथा मृगाङ्कावली के सम्मिलन का प्रयत्न किया जाता है। अत: वहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है।

प्राप्त्याशा –

विद्धशाल के तृतीय अङ्क में मृगाङ्कावली अपनी सखी विचक्षणा के साथ माधवीलतामण्डप में प्रवेश करती है। उस समय राजा के साथ प्रियवयस्य का संगम आदि उपाय होने पर भी देवी के रूप में विघ्न की आशङ्का (नेपथ्य) मुच्यन्तां लतामण्डपप्रभृतीनि विलासस्थानानि।...... एषा वारविलासिनीजनगृहीतहस्त दीपिकोद्योतजनितदिवसेवदेवी सिद्धनरेन्द्रदत्तौषधसंस्थितमाञ्जिष्ठस्त बकसहस्रालंकृतं माधवीलतामण्डपं दृष्टुमागता।" नेपथ्य द्वारा दिखाई गई है। इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है।

नियताप्ति –

फलागम – विद्धशालभंजिका में राजा विद्याधरमल्ल को मृगाङ्कावली का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्वप्राप्ति नाटिका का फलागम है। इसलिये यह कार्य की फलागम अवस्था है।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग –

मुख-सन्धि – विद्धशालभंजिका नाटिका के आमुख में नेपथ्य द्वारा निम्न उक्ति कहलाकर बीजोत्पत्ति की गई है –

(नेपथ्ये गीयते)

कुन्दलतायां विमुक्तमकरन्दरसायां अपि चंचरीकः ।
प्रणयप्रकर्षप्रेमभरमस्खलनकातरभावभीतः ।। ४।।
तरुणप्रगल्भां निजप्रियामिव चारुप्रसूनदृष्टिम् ।
रञ्जति नयति धुनोति परिरभते चुम्बति चूतलताम् ।।५।।

उपक्षेप -

विद्धशालभंजिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही हरदास अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है । उसका कार्य राजा और मृगाङ्कावली को मिला देना है । बीज रूप व्यापार की सूचना हरदास की निम्नउक्ति द्वारा दी गई है -

श्रियः प्रसूते विपदो रुणद्धि
यशांसि दुग्धे मलिनं प्रमार्ष्टि ।
संस्कारशौचेन परं पुनीते
शुद्धा हि बुद्धिः किलकामधेनुः ।।८।।

परिकर -

विद्धशाल०में हरदास अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये कहता है (आकाशे) आर्य चारायण । किमात्थ अंतपुरिका सप्रपरिवारस्य महाराजस्य किं तथा विना रिक्षत इति । (तं प्रति) मा मैवम् अत्रास्ति किंचन बीजं तच्च कार्यसिद्धावाविर्भविष्यति ।

परिन्यास - x

विलोभन - विद्धशालभंजिका में राजा तथा मृगाङ्कावली के समागम के प्रयोजन के कारण इस युक्ति की व्यंजना हरदास की निम्नपंक्तियों में की गई है :-

लाटेन्द्रश्चन्द्रवर्मा नरपतितिलकः कल्पिता तेन पुत्री
निष्पुत्रेणैवपुत्रः कथितमपि तथा मन्त्रिणास्तस्य चौरः ।
कामं पुत्राविकल्पच्छलत इव महाराजसंदर्शनार्थं
तेनाप्यानायितासौ निरुपधि दधता साधुषाड्गुण्यचक्रः ।।९ ।।

< < < तदहमपि सुणिरत्नस्तम्भसंचारं वासगृहं निर्मितवतीं तथाविधां रत्नवतीं चतुष्किकां च करिष्यतीं शिल्पवतीं मन्त्रिसमादिष्टां कनकरत्नादिसामग्रीं दापयितुं महाराजभाण्डागारं यास्यामि ।'

प्राप्ति -

समाधान - विद्धशालभंजिका में राजा स्वप्नदृष्टमृगाङ्कावली को सत्य समझकर उसे देखने की इच्छा करता है । उसकी यह इच्छा बीजागम के रूप में निम्न पंक्तियों में स्पष्ट है -

'जाने स्वप्नविधौ ममाद्य चुलकोत्सेकेयं पुरस्तादभूत-

प्रत्यूषे परिवेषमण्डलमिल ज्योत्स्नासपत्नं महः ।

तस्यान्तर्नैशनिस्तुषीकृतशरच्चन्द्रप्रभैरङ्गकै-

र्दृष्टा काप्यबलाबलात्कृतवती सामन्मयं मन्मथम् ।।१५।।

विधान -

परिभावना- विद्धशालभंजिका में राजा स्वप्न में सुन्दरी अबला को देखकर आश्चर्यचकित हो जाता है - राजा - (तदभिमुखमवलोक्य) अये चारायण सखे । कथं न कथयामि । सुहृत्संचारितारहस्यं हि चेत: संविभक्तचिंताभारमिवलघुभवति ।

उद्भेद -

करण - विद्धशालभंजिका में (यज्ञोपवीतं परिमृश्य)शुष्कशरज्जु हास्य में महाब्राह्मणस्य भणितेन सत्य: स्वप्नो भवतु । विदूषक की इस उक्ति के द्वारा भावी अङ्क में राजा और मृगाङ्कावती के निर्विघ्न दर्शन प्रयत्न के आरम्भ की व्यंजना कराई गई है ।

भेद -

प्रतिमुख सन्धि -

विद्धशालभंजिका के प्रथम अङ्क में विद्याधरमल्ल और मृगाङ्कावली के (भावी) समागम के हेतुरूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है, उसे द्वितीय

अङ्क में विदूषक तथा कुरङ्गिका (मृगाङ्कावली की सखी) जान जाते हैं और नेपथ्य द्वारा संध्योपासना की सूचना दिये जाने के कारण उसमें व्यवधान हो जाता है। इस प्रकार बीज के अङ्कुर का कुछ दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में फूट पड़ना प्रतिमुख सन्धि है।

विलास – विद्धशालभंजिका नाटिका में राजा की निम्न उक्ति में इसकी व्यंजना हो रही है -(विलोक्य स्वगतम्) हृदय। दृष्ट्यावर्धसे स्वप्नदृष्टजनप्रत्यक्ष-दर्शनेन।'

परिसर्प- विद्धशालनाटिका के प्रथम अङ्क में राजा स्वप्न में एक सुन्दरी देखता है किन्तु वह बीज दिखाई देकर नष्ट हो जाता है। द्वितीय अङ्क में राजा पुन: उद्यान में मृगाङ्कावली की खोज करता है और दिखाई दे जाने पर कहता है -'सखे चारायण। सैवेयमस्मन:शिखण्डताण्डवयित्री वर्षालक्ष्मी:।'

विधूत-शम –

नर्म – विद्धशाल नाटिका के द्वितीय अङ्क में रानी मदनवती ने मजाक में राजा के विदूषक चारायण का विवाह एक पुरुष दास को वस्त्र पहनाकर उससे कर दिया। इससे आर्य चारायण क्रुद्ध हो जाता है। तबकुरङ्गिका परिहास से युक्त वचन कहती है - (किंचिदुपसृत्य) भो अम्बरमालावल्लभ। देवी व्याहरति। विदूषक: आ० दुष्टदासि भविष्यत्कुट्टिनि त्वमपि मामुपहससि। तद्युष्मादृशजनहृदयकुटिलेन दण्डकाष्ठेनाझटिति ताडयिष्ये।

नर्मद्युति –

प्रगमन – विद्धशालभंजिका में विदूषक चारायण और राजा के परस्पर उत्तरोत्तर वचन अनुराग बीज को प्रकट करते हैं अत: वहाँ प्रगमन है। प्रगमन की व्यंजना विदूषक और राजा की इस बातचीत से हो रही है - विदूषक:-प्रियवयस्य विनादार्थं महा मन्त्रिकारिता रत्नवती नाम चतुष्किका:। किं पुन: क्यापि सदेवतैवेषा।

राजा- (विलोक्य स्वगतम्) हृदय। दृष्ट्या वर्धसे। स्वप्नदृष्टजनप्रत्यक्षदर्शनेन। (तंप्रति) सखे चारायण। सैवेयमस्मन:शिखण्डताण्डवयित्री वर्षालक्ष्मी:। इदमन्य

विद्धशालभंजिका नाटिका में मृगाङ्कावली समागम राजा का अभीष्ट-फल है किन्तु विदूषक द्वारा सन्ध्योपासना की सूचना देकर उसमें अवरोध उत्पन्न कर दिया जाता है अत: यहाँ निरोधन है -
राजा- सैवेयमस्मन्मनसि मन्मथेनेदानीमुदीयति मृगाङ्कावलीति पंचाशरी ।.....
विदूषक:- अहं पुनर्जानि अनुप्रविश्यास्मान् छलितुमिह सुरगैवतुष्कक्कार्सकान्ता: केऽपि ब्रह्मराक्षसा जल्पन्ति । पूर्वाप्रिया च संध्या संनिहिता वर्तते तदवतराम: ।
पर्युपासन -

पुष्प - विद्धशाल नाटिका में विद्याधरमल्ल एवं मृगाङ्कावली का अनुराग परस्पर दर्शन आदि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है । इस पुष्प की सूचना राजा एवं विदूषक का निम्नकथोपकथन देता है - विदूषक-स्वप्नदृष्टा दोलान्दोलिनी विद्धसर्वांगरितशालभंजिकात्वेन परिज्ञाता गेन्दुकेलिनी कृतकाव्यबन्धरचना सैवेषा त्वयालक्षिता तव चित्रमारोपयति ।.......... राजा- सैवेयमस्मन्मनसि मन्मथेनेदानीमुदीयति मृगाङ्कावलीति पंचाशरी ।
उपन्यास -
वज्र -
वर्णसंहार -
गर्भ-सन्धि -

विद्धशालभंजिका नाटिका के तृतीय अङ्क में गर्भसन्धि है क्योंकि यहाँ गोपनीय ढंग से माधवीलतामण्डप में मृगाङ्कावली को उपस्थित करने के द्वारा अभिसरण का उपाय होने से राजा कुछ समय के लिये फलप्राप्ति की आशा हो जाती है किन्तु नेपथ्य द्वारा देवी के आगमन की सूचना देकर पुन: विच्छेद उपस्थित कर दिया जाता है - (नेपथ्ये)मुच्यन्तां लतामण्डपप्रभृतीनि विलासस्थानानि ।............ एषा वारविलासिनीजनगृहीतहस्तदीपिकोद्योतजनितदिवसेव देवी सिद्धनेन्द्रदत्तौषधसंस्थमाज्जिष्ठस्तबकसवप्रालंकृतं माधवीलतामण्डपं द्रष्टुमागता ।' इस प्रकार एक बार फल प्राप्ति के बाद पुन: विच्छेद होता है फिर विघ्न के निवारण के उपाय तथा फलहेतु का अन्वेषण किया जाता है । अत: तृतीय अङ्क में गर्भसन्धि है ।

अभूताहरण -

विद्धशालभंजिका नाटिका में मृगाङ्कावली को गोपनीय ढंग से माधवी-लतामण्डप में उपस्थित करके राजा का सङ्गम उसके साथ कराया जाता है, इस छद्म की सूचना विचक्षणा तथा सुलक्षणा के कथोपकथन द्वारा तृतीय अङ्क के प्रवेशक में ही दे दी गई है।

मार्ग - विद्धशालभंजिका में गोपनीय ढङ्ग से होने वाले मृगाङ्कावलीसमागम की सूचना देकर विदूषक मृगाङ्कावलीसमागम का निश्चय राजा को करा देता है। इस प्रकार तत्वार्थनिवेदन के कारण निम्नपंक्तियों में मार्ग नामक गर्भाङ्क है विदूषक: - भो मृगाङ्कवल्येवेषा। न खलु एक चन्द्रस्य एतावान् कान्ति-विस्तार:। राजा- तत: कदलीलतान्तरिताविव शृणुवस्तावदस्याविश्रम्भजल्पितानि। आतृप्ति पिबेतां श्रवसोरसायनम्। (तथा कुरुत:) (तत: प्रविशति मृगाङ्कावली विचक्षणा च।)

रूप -

विद्धशालभंजिका नाटिका में यह वितर्करूप राजा तथा विदूषक की निम्न उक्तियों में सूचित है - राजा (सखेदम्) अहो मदनमन्त्राक्षराणीव सुभाषित-वचनान्यस्या:।
विदूषक: - अहं पुनर्जाने हतमदनस्य हस्तभल्य:। राजा-कण्ठे मौक्तिकमालिका: स्तनतटे कर्पूरमच्छं रज:।

सान्द्रं चन्दनमङ्गके वलयिता: पाणौ मृणालीलता:।।
तन्वी नक्तमियं चकास्ति तनुनी चीनांशुके बिभ्रती।
शीतांशोरधिदेवतेव गलिताव्योमाग्रमारोहत:।। १७।।

उदाहृति - विद्धशालभंजिका नाटिका में मंत्री भागुरायण विचक्षणा से यह बताता है कि मृगाङ्कावली के साथ परिणय होने पर राजा सम्पूर्ण महीतल का

चक्रवर्तित्व प्राप्त कर लेंगे। अतः विचक्षणा का निम्नवाक्य सोत्कर्ष होने से उदाहरण का सूचक है - विचक्षणा- ततस्तां परिणीय महाराजश्रीविद्याधरमल्लदेवेन महीतलचक्रवर्तिना भवितव्यम्।

क्रम - विद्धशालभञ्जिका में निम्नपंक्तियों में राजा मृगाङ्कावली के समागम की अभिलाषा हो कर रहा कि मृगाङ्कावली आ जाती है - राजा - (पुरोऽवलोक्य) सेवेयं मृगाङ्कावली। (ततःप्रविशतिमृगाङ्कावली विचक्षणा च)।

संग्रह --

अनुमान -- विद्धशालभंजिका में मृगाङ्कावली से प्रेम करने से राजा प्रकृष्ट प्रेम से संवलित हो गया है इसलिये प्रकृष्ट प्रेम सवलनहेतु के द्वारा देवी के क्रोध का तर्क अनुमान है जिसकी सूचना निम्नउक्ति में मिलती है - राजा- अभ्यर्थये हृदयं यदि प्रार्थनाभङ्गं न करोति। विदूषकः - वयस्य, त्वरितं विसृज्यताम् अन्यथा पारावतशकुन्ता इव पंजरनिरुद्धा स्थास्यामः। यहाँ राजा और विदूषक की उक्ति में अनुमान है।

अधिबल - x

तोटक - दूसरे पण्डितों के मत से संरब्ध (उद्विग्न) वचन तोटक है (पी०आर०) विद्धशालभंजिका नाटिका में राजा मृगाङ्कावली समागम की प्रतीक्षा करते करते निराशा से उद्विग्न होकर कहता है -

राजा- - भगवन्यामिनीनाथस्तवायं विरुद्धो विधिः।

उद्वेग - x

सम्भ्रम - विद्धशाल० में देवी की बुद्धि से गृहीत विदूषक के स्वतः पंजरनिरुद्ध होने की आशङ्का निम्न उक्ति में पाई जाती है अतः यहाँ सम्भ्रम है - विदूषकः- अन्यथा पारावतशकुन्ता इव पंजरनिरुद्धा स्थास्यामः।

आक्षेप -

निर्वहण -

विद्धशालभंजिका नाटिका में मृगाङ्कावली, देवी प्रतीहारी, दूत, राजा, विदूषक, भागुरायण(मंत्री) आदि के कार्यों (अर्थों) का, जो मुख-सन्धि आदि में इधर-उधर बिखरे पड़े थे, राजा के ही कार्य के लिये समाहार होता है। इसकी सूचना दूत की इस उक्ति के द्वारा दी गई है - दूत:- अन्तरात्मापि विस्मयते। (देवीं प्रति) मातुलपुत्रजन्मना दिष्ट्या वर्धसे। (सर्वे हर्षं नाटयन्ति) संदिष्टं चास्मत्स्वामिना-

निःसूनुना ......

देवशोदित चक्रवर्तिगृहिणीभावा मृगाङ्कावली

देया कस्य विदिन्दुसुन्दरयशःपूतस्य पृथ्वीपते: ।।१६ ।।

निर्वहणाङ्ग -

सन्धि- विद्धशालभंजिका में लाट देश से आया दूत मृगाङ्कावली के वास्तविक रूप के बारे में देवी से बताता है तब देवी को मृगाङ्कावली के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की जाती है अतःसन्धि नामक निर्वहणाङ्ग है - दूत- देवशोदित चक्रवर्ति - ४।१६।।

देवी - (जनान्तिकेन) प्रेक्षस्व देवदुर्ललितानि यन्मयाकेलि-क्रीडत्वेनालीकं परिकल्पितं तत्सत्यत्वेन परिणतम्।

विबोध -

ग्रथन -- विद्धशालभंजिका नाटिका में भागुरायण की निम्न उक्ति राजा के मृगाङ्कावली लाभ का उपसंहार कर देती है - भागुरायण(स्वगतम्)फलितं नो नीतिपादपलतया धिया।

निर्णय -- विद्धशालभंजिका नाटिका में भागुरायण निम्न उक्ति के द्वारा कार्य सम्बद्ध अपने कार्यों को राजा से वर्णित करता है अतः यहाँ निर्णय है - भागु०(गृहीत्वा वाचयति)

स्वस्तिश्रीमन्नुपर्यां .... ।४।१८।।

श्रेयो न्यत्कार्यं........ शेषं कुटुङ्गकमुखादेवावगन्तव्यम्।

परिभाषा-प्रसाद -

आनन्द - विद्धशालभंजिका में राजा मृगाङ्कावली की प्राप्ति हो जाने पर कहता है - अनुगुणं हि दैवं सर्वस्मै स्वस्ति करोति ।

समय-कृति -

भाषण - विद्धशाल भंजिका में विद्याधरमल्ल की यह उक्ति उसके काम, अर्थ, मान आदि के लाभ की द्योतक है - राजा अतः परमपि प्रियमस्ति ।

देवी कोपकषायितानुगमिता लब्धा मृगाङ्कावली
प्रागूढापि ममाथ कुन्तलपतेः पुत्री कलत्रीकृता ।
युष्मन्नीतिवशेन तस्य च महासेनापतेर्विक्रमैः
संजाता मम चक्रवर्तिपदवी किं नाम यत्प्रार्थ्यते ।।२२।।

उपगूहन -

काव्यसंहार - विद्धशालभंजिका नाटिका में - भागु० के (राजानं प्रत्यंजलिं बद्ध्वा) किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि । इस वाक्य के द्वारा नाटिका के काव्यार्थ का उपसंहार होने से यहाँ काव्यसंहार नामक निर्वहणाङ्ग है ।

प्रशस्ति - विद्धशालभंजिका में भरतवाक्य द्वारा शुभ की आशंसा होने से प्रशस्ति है - राजा - तथापीदमस्तु -

वामाङ्गं पृथुलस्तनस्तबकितं यावद्भवानीपते-
र्लक्ष्मीकण्ठग्रहव्यसनिता यावच्च दोष्णां हरेः ।
यावच्च प्रतिमाप्रसारणविधौ व्यग्रौ करौ ब्रह्मणः ।
स्थेयासुः श्रुतिशुक्तिलेह्यमधुरास्तावत्सतां सूक्तयः ।।२३।।

अर्थोपक्षेपक -

विष्कम्भक - विद्धशालभंजिका नाटिका में प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में प्रस्तावना के बाद विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें हरदास नामक मध्यम पात्र का प्रयोग हुआ है । मध्यम श्रेणी का पात्र होने से यहाँ पर शुद्ध विष्कम्भक है ।

संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है। नेपथ्य द्वारा दी गई सूचना में प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है।

इसमें हरदास द्वारा वर्तमान तथा भविष्य में घटित होने वाले कथांशों की सूचना दे दी गई है।

प्रस्तुत नाटिका के प्रथम अङ्क के विष्कम्भक में हरदास द्वारा रङ्गमंच पर आकर राजा विद्याधरमल्ल और नायिका मृगाङ्कावली के प्रणय की सूचना दी गयी है। लाट का राजा चन्द्रवर्मा अपनी कन्या मृगाङ्कावली को अपना मृगाङ्कवर्मन नामक पुत्र घोषित कर उसे बालक के वेष में सम्राट् विद्याधरमल्ल के पास भेजता है। मंत्री को ज्योतिषियों के कथनानुसार यह पता था कि मृगाङ्कवर्मन लड़का नहीं लड़की है और जिससे इसका विवाह होगा वह चक्रवर्ती राजा होगा। इन समस्त बातों की सूचना विष्कम्भक में दे दी गई है।

हरदास : ... एतदिदं चास्मद्गुरोर्व्यवहितेष परमुपलभ्यते। तथाहि -

लाटेन्द्रश्चन्द्रवर्मा नरपति तिलकः कल्पिता तेन पुत्री
निष्पुत्रेणैव पुत्रः कथितमपि तथा मन्त्रिणास्य चारैः।
कामं पुंस्त्वावकल्प्यच्छलत इह महाराजसंदर्शनार्थं
तेनाप्यानायितासा निरुपधि दधता साधु षाड्गुण्यचक्रम् ॥६॥

नाटिका में इसी स्थल पर शुद्ध विष्कम्भक में बीज का न्यास भी किया गया है जिससे यह सूचना मिलती है कि चन्द्रवर्मा द्वारा मृगाङ्कावली को अन्तः-पुर में भेजने का एकमात्र प्रयोजन दोनों का मिलन करा देता है।

नाटिका के विष्कम्भक में ही राजा को क्लेश न करने की तथा कार्य की सिद्धि अवश्य होगी, इस बात की सूचना भी आकाशे द्वारा दे दी गई है -
(आकाशे)-आर्य नारायण! विमात्य। अन्तःपुरिका सकलपरिवारस्य महाराजस्य किं तया विना रिक्त इति (तं प्रति) मा मवम्। अत्रास्ति किंचन बीजं तच्च का यैसिद्धावाविर्भविष्यति।

इन्हीभूत तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में शुद्ध विष्कम्भक की योजना की गई है ।

प्रवेशक –

पहला प्रवेशक – शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में प्रथम अङ्क के बाद तथा द्वितीय अङ्क के पूर्व प्रवेशक की योजना की गई है । इसमें कुरंगिका तथा तरङ्गिका नामक दो नीच स्त्री-पात्रों का प्रयोग हुआ है । इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है । नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी कथांशों की सूचना दी गई है । तरङ्गिका अपनी सखी कुरङ्गिका से बताती है कि कुन्तल के राजा चण्डमहासेन का राज्य नष्ट हो जाने से उनकी कुवलयमाला नाम की पुत्री यहाँ आ गई है । नर्मदा में स्नान करके उठी हुई वह राजा के द्वारा देख ली गई । राजा उससे प्रेम करने लगा है । रानी मदनवती को यह बात पता लग गई है । देवी ईर्ष्यावश उसका विवाह अपने मामा के लड़के मृगाङ्कवर्मन् से करना चाहती हैं अतः विवाह का उपकरण सजाने के लिये भेजी गई हूँ –

तर० -- णा सुणी अदु पिअसही । अत्थि एत्थ कुंतलेसो चंद्रमहासेणो णाम राआ । तस्स णिअरज्जपरिब्भट्ठस्स इह आगदस्स सुदा कुवलअमाला णाम । सा णम्म-दामज्जणुट्ठिण्णा देवेण दिट्ठा हिअए च से पविट्ठा तं च परोक्खिदवदो देवी णिअ-माडुलअस्स वम्मसुदस्स मिअंकवम्मस्स किदे । तण्णिमित्तं च विवाहोअअरणाइं सज्जोकादुं पेसिदम्हि । तग्गदमणाए मए ण तुमं पेक्खिदासि ।

इसी अङ्क के प्रवेशक में रानी मजाक में राजा के विदूषक नारायण का विवाह एक पुरुष दास को वस्त्र पहनाकर उसके साथ कर देती है इस बात की पूर्व सूचना भी दी गई है --

कुर० - अज्ज देवीए अलीअविवाहेण विडंबिदुं आरद्धो अज्जणाराअणो । तस्स विवाहसामग्गिं उप्पादेदुं अहं पेसिदा ता एहि दुवेवि अह्मे जधासमीहिदसिद्धीए गच्छ । (?)

दूसरा प्रवेशक --

शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका के द्वितीय अङ्क के बाद तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना दो अङ्कों के मध्य की गई है। इसमें सुलक्षणा तथा विलक्षणा नामक दो तीन स्त्री पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है। नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी कथांशों की सूचना दी गई है। विचक्षणा जब कहती है कि मन्त्री की राजा के कार्य में अतिशय भक्ति है तो उससे यह सूचना मिलती है कि राजा तथा नायिका का मिलन मंत्री के ऊपर निर्भर है-+ चेटी (स्वगतम्) अहोमहामन्त्रिणः प्रभुकार्ये निरतिशया भक्तिः। मंत्री ने इस कार्य की सिद्धि के लिये विचक्षणा से सहायता भी ली है। विचक्षणा ने जिस प्रकार मंत्री भागुरायण की सहायता की है और आगे करेगी, इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की सूचना प्रवेशक में दी गई है। ~~हरदास विचक्षणा से सहायता भी ली है। विचक्षणा ने किस प्रकार मंत्री भागुरायण की सहायता की है~~ और आगे करेगी, इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की ~~सूचना प्रवेशक में दी गई है~~। हरदास विचक्षणा से बताता है कि यह मृगाङ्कवर्मन् मृगाङ्कावली है और उससे परिणय हो जाने पर राजा चक्रवर्ती हो जायेंगे अतः किसी तरह तुम वासगृह में उसका दर्शन इस प्रकार कराओ जिससे राजा को स्वप्न दिखाई पड़े। विचक्षणा ने हरदास के कथनानुसार मृगाङ्कावली को सिखा दिया कि इस वासगृह में मकरध्वज अवतरित होंगे। उनको छूकर तुम उनके कण्ठ में हारलता डाल देना जिससे वे उसी प्रकार कान्तिमान हो जायँ। प्रथम अङ्क में मृगाङ्कावली ने विचक्षणा के पूर्व योजनानुसार ऐसा ही किया। प्रथम अङ्क में घटित हुई न समस्त भूत भूत कथांशों की सूचना प्रवेशक में दी गई है।

तत्काल से राजा नायिका के वियोग में चिन्तित रहने लगता है, इसकी सूचना भी विचक्षणा द्वारा दी गई है।

इसी प्रकार रानी तथा मेखला (दासी) द्वारा विदूषक के साथ किये गये भावी मजाक की पूर्व सूचना भी सुलक्षणा द्वारा दे दी गई है। वह विचक्षणा से बताती है कि रानी ने विदूषक नारायण का विवाह मजाक में एक पुरुष दास को वस्त्र पहनाकर उसके साथ कर दिया है। (द्वितीय अङ्क में ही विवाह हो गया है)। इसमें रानी की दासी मेखला ने मुख्य भाग लिया है। क्रोधित विदूषक रानी की दासी से बदला लेना चाहता है। राजा रानी की दासी सुलक्षणा को बुलाकर अपनी योजना समझा देता है और उसको किसी से न बताने को कहता है। योजनानुसार रात्रि के समय वह (सुलक्षणा) पेड़ पर चढ़ गई और नीचे घूमती हुई मेखला से नाक से बोलते हुये यह कहा कि वह वैशाख मास की पूर्णिमा को संध्या को मर जायेगी। मेखला भय से कांप उठी और उसने इस विनाश से बचने का उपाय बताने की प्रार्थना की। सुलक्षणा ने बताया कि यदि वह किसी गान्धर्व वेद निपुण ब्राह्मण की पूजा करे, उसके चरणों पर गिरे और उसकी टांगों के बीच से निकले तभी वह इससे बच सकती है। मेखला ने यह कथा रोते हुए रानी से कही। रानी सलाह के लिये राजा के पास गई। राजा ने मेखला को विदूषक नारायण की पूजा की सलाह दी जो ब्राह्मण है तथा गान्धर्व वेद में निपुण है। रानी ने आज पूर्णिमा है ऐसा कहकर मुझे पूजा -सत्कार की सामग्री सजाने के लिये भेजा है। इस प्रकार इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की योजना प्रवेशक में की गई है।

तीसरा प्रवेशक -

शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में तृतीय अङ्क के बाद, चतुर्थ अङ्क के पूर्व प्रवेशक की योजना की गई है। इसमें विदूषक तथा ब्राह्मणी नामक दो नीच पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है। नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान, भूत तथा भावी कथांशों की सूचना दी गई है। विदूषक प्रात:काल की सूचना देता है ब्राह्मणी द्वारा मृगाङ्कावली के साथ राजा के विवाह की सूचना दी गई है। यह भी सूचना मिलती है कि

मृगाङ्कावली देवी की ममेरी भगिनी है। यह भी सूचित किया गया है कि मृगाङ्कावली से विवाह कर लेने पर राजा चक्रवर्ती हो जायेंगे। कुवलयमाला के साथ मृगाङ्कावली के विवाह की योजना की भी सूचना विदूषक द्वारा दी गई है - विदूषक: - ... ... (विचिन्त्य) कुवलअमालाए उण महाविलंबणा जं महिआ महिलाए परिणीदा।

इस प्रकार इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की सूचना प्रवेशक में दी गई है।

चूलिका -

विद्धशालभंजिका नाटिका के द्वितीय अङ्क में चूलिका की योजना है। एक दिन जब राजा चाँदनी रात में उपवन विहार कर रहा था तो उसे मृगाङ्कावली द्वारा ताड़पत्र पर लिखा हुआ प्रेमपत्र मिलता है। राजा उसे पढ़कर विदूषक को सुनाता है। उसके बाद नेपथ्ये द्वारा विचक्षणा से अपनी विरहावस्था का हाल बताती हुई मृगाङ्कावली को सुनता है। इस प्रकार यहाँ पर नेपथ्ये द्वारा मृगाङ्कावली की विरहावस्था का वर्णन किया गया है-

यद्वालीदलपाक .... ।।१४।।

... ... कथं तत्क्षण - विकसन्ति कुसुमानि ।। १५ से१६तक

नाटिका के द्वितीय अङ्क में रानी मजाक में विदूषक का विवाह एक पुरुष दास को वस्त्र पहनाकर उससे कर देती है। विदूषक बदला लेने की योजना बनाता है और सुलक्षणा की भी सहायता लेता है। तृतीय अङ्क में वह मेखला को धमकी देता है। मेखला विदूषक से शरण की प्राथना करती है। नेपथ्ये द्वारा सुलक्षणा मेखला को और भी भयभीत कर देती है (नेपथ्ये) कुत्र कुत्रका दुष्टदासी। एते वयं कालपुरुषा: शृङ्खलाभिर्गाढंबद्ध्वा मेखलां नेतुमागता:।

तृतीय अङ्क के अन्त में राजा माधवी लतामण्डप में मृगाङ्कावली के गले में हार पहनाकर विदूषक के साथ खुशी मनाता है तभी नेपथ्ये द्वारा माधवी

लतामण्डप के देवी के आगमन की सूचना दी जाती है साथ ही राजा के विलास-स्थान को छोड़ने की सूचना भी दी जाती है (नेपथ्ये) मुच्यन्तां लतामण्डपप्रभृतीनि विलासस्थानानि । कृष्णा वारविलासिनीजनगृहीतउस्सदीपिकोद्योत-जनित दिवसेव देवी सिद्धनरेन्द्रदत्तौषधसौख्यमाञ्जिष्ठस्तबकलसत्प्रालङ्कृतं माधवी-लतामण्डपं द्रष्टुमागता ।

कर्णसुन्दरी –

नान्दी –

कर्णसुन्दरी नाटिका आरम्भ करने के पूर्व उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिये देवता आदि की स्तुति किये जाने के कारण निम्न श्लोकों में नान्दी पाठ है –

अर्हन्नार्हसि मामुपेक्षितुमपि क्षामां त्वदर्थे तनुं
किं नालोकयसे भविष्यति कुतः स्त्रीघातिनस्ते सुखम्
अङ्गे काञ्चनकान्तिभिः कुरु परिष्वङ्ग सुपर्वाङ्गना-
लोकैरित्थमुदीरितः क्षितिधरस्थायी जिनः पातु वः ।।१।।

अपि च ।

संतापं शमयन्तु वस्त्रिविधमप्युद्धूलनानन्तरं
विप्रस्ताः करतालिकाः पुररिपोर्निर्विघ्नसंध्यार्चनाः ।
देव्याः शैलभुवः क्षणं मदयता दृष्टिं यदाकर्णना-
कौमारेण शिखण्डिना निबिडतक्रीडार्सनृत्यते ।।२।।

अपि च ।

वक्रेन्दो: सदृशो भविष्यति लिपि: कण्ठे नुकण्ठोचिता
लक्ष्मी: किं कुचमण्डले कुचभुव: सर्वादि मर्घ्यं न किम् ।
श्राद्य क्रमश: कुतुहलरसप्रेमालसा दृष्टय:
श्रीकान्तस्य जयन्ति दुग्धजलधेरभ्युल्लसत्यामपि ।।३

सूत्रधार --

कर्णसुन्दरी नाटिका की प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा अभिनेय रचना श्रौर नाटककार का परिचय दिया गया है - सूत्रधार: - नन्वस्मिन्नणहिल्ल-पाटणकमुकुटमणौ श्रीशान्त्युत्सवदेवगृहे भगवतो नाभेयस्य महामात्यसंपत्करप्रवर्तित यात्रामहोत्सवे समुत्सुक: सामन्तजन: प्रत्यग्रप्रयोगदर्शनाय ।

कथमुपक्षिप्तेव नटैर्नाटिका कर्णसुन्दरी ।

हंहो भाग्यमहानिधिर्दयितया देवस्य दग्धु:पुरां
पात्रं पुत्र इव स्वयं विरचित: सारस्वतीनां गिराम् ।
साहित्योपनिषन्निषण्णहृदय: श्रीविल्हणो स्थाः कवि:
किं चैतत्किल भीमदेवतनय: साक्षात्कथानायक: ।।१।१०

साथ ही सूत्रधार नटी के साथ वार्तालाप करते हुये श्रमात्य प्रणिधि के प्रवेश की भी सूचना दे देता है - कथमयमस्मद्भ्राता महामात्यप्रणिधिभूमिकामाश्रित एव तदेहि । श्रनन्तरकरणीयाय सज्जीभवाव: ।

श्रर्थप्रकृति --

बीज --

कर्णसुन्दरी नाटिका के वृत्त का कार्य राजा त्रिभुवनमल्ल तथा कर्णसुन्दरी का मिलन करा देना है जो श्रमात्य प्रणिधि को श्रभीष्ट है । नाटिका के विष्कम्भक में प्रणिधि की 'यत्पुनर्देवो विश्राममण्डमुपमलंकृतवास्तन्नूनमेतद्दर्शनजन्या मन्मथा-

वेग एव विविक्तस्थानस्थितिमुपदिशति । तद्गत्वा यथोचितं विरचयामि ।' इस उक्ति में बीज नामक अर्थप्रकृति है ।

बिन्दु -

कर्णसुन्दरी नाटिका में विदूषक की 'अपप्रियतामस्यास्तरङ्गशालायास्त्वरितम् । कदापि देव्यत्रागच्छति' इस उक्ति को सुनकर राजा तरङ्गशाला से हट जाता है । उससे कथा में विशृङ्खलता आ जाती है । इसे संश्लिष्ट करने के लिये विदूषक और राजा द्वारा राजा - ((तत्कवयमात्मा विनोदयितव्य: । विदूषक: भो: तत्रैवोद्याने गम्यताम् । तत्र तरङ्गशालाभ्यन्तरे चित्रगतां प्रलोकयन्सुखं प्राप्स्यसि ।' यह उक्ति कहलाकर कथा का सन्धान कर दिया गया है अत: यहां पर बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है ।

पताका-प्रकरी - कर्णसुन्दरी नाटिका के चतुर्थ अङ्क में वीरसिंह द्वारा प्रतिपक्षियों के पराजय की जो सूचना दी गई है, वह प्रकरी है ।

कार्य -

कर्णसुन्दरी में चालुक्य देश के राजा त्रिभुवनमल्ल और कर्णसुन्दरी का मिलन ही प्रधान साध्य होने से कार्य है ।

अवस्था -

आरम्भ -

कर्णसुन्दरी नाटिका में 'यत्पुनर्देवो विश्राममण्डपमलङ्कृतवांस्तन्नूनमेतद्दर्शनजन्मा मन्मथावेग एव विविक्तस्थानस्थितिमुपदिशति । तद्गत्वा यथोचितं विरचयामि ।' अमात्य प्रणिधि द्वारा यह उक्ति कहलाकर कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है ।

प्रयत्न -

कर्णसुन्दरी के प्रथम अङ्क में विदूषक द्वारा देवी के आगमन की सूचना दिये जाने के कारण राजा की फलप्राप्ति में व्यवधान होने पर द्वितीय अङ्क

में विदूषक के साथ राजा पुन: कर्णसुन्दरी-मिलन रूप फलप्राप्ति के लिए उपाय ढूंढता है। राजा - ... तत्ववायमात्मा विनोदयितव्य: । विदूषक: - भो:, तत्रैवोधाने गम्यताम् । तत्र तरङ्गशालाभ्यन्तरे चित्रगतां प्रलोकयन्सुखं प्राप्स्यसि । इस प्रकार द्वितीय अङ्क में विदूषक की उक्ति से राजा तथा कर्णसुन्दरी के मिलन का प्रयत्न किया जाता है अत: वहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है।

प्राप्त्याशा -

कर्णसुन्दरी के द्वितीय अङ्क के अन्त में राजा उधान में लता की ओट में कर्णसुन्दरी से मिलने का उपाय करते हैं। इस प्रकार प्रियवयस्य का सङ्गम आदि उपाय होने पर भी देवी के रूप में विघ्न की आशङ्का - विदूषक: - भवति, एषा देव्यागता । विदूषक द्वारा दिखाई गई है। इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है।

नियताप्ति-फलागम -

कर्णसुन्दरी नाटिका में राजा त्रिभुवनमल्ल को कर्णसुन्दरी का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्वप्राप्ति नाटिका का फलागम है। अत: यह कार्य की फलागम अवस्था है।

सन्धि -सन्ध्यङ्ग -

मुख सन्धि -

कर्णसुन्दरी नाटिका की प्रस्तावना में नेपथ्य द्वारा निम्न उक्ति कहलाकर बीजोत्पत्ति की गई है -

(नेपथ्ये गीयते ।)

नवमाधव्या दृष्ट्वा सरसविलासान्परवशायित: ।

मन्दीकृतकुन्दलताचुम्बनतृष्णो भ्रमति भ्रमर: ।।१।६ ।।

अत: प्रथम अङ्क में मुख सन्धि है।

उपक्षेप --

कर्णसुन्दरी नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही सूत्रधार अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है। उसका कार्य राजा और त्रिभुवनमल्ल को मिला देता है। इस बीज रूप व्यापार की सूचना भी निम्न उक्ति द्वारा दी गई है --

नवमाधव्या दृष्ट्वा सरसविलासान्तरवशायित: ।
मन्दीकृतकुन्दलताचुम्बनतृष्णो भ्रमति भ्रमर: ।। १।६ ।।

परिकर --

कर्ण० नाटिका में प्रणिधि फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है। इसकी सूचना प्रणिधि की निम्न उक्ति द्वारा मिलती है --

उच्चञ्चुपंजरचकोरकचर्व्यमाणा -
पूर्णेन्दु सुन्दरतराननचन्द्रिकेयम् ।
देव्या: कथं परिजनप्रमदाजनेन
नीतैव मन्दिर ममन्दकुतूहलाया: ।।१।१६

परिन्यास --

प्रणिधि को अपने व्यापार पर पूर्ण विश्वास है कि उसे सिद्धि अवश्य होगी, उसका बीज अवश्य निष्पन्न होगा। इसको सूचना वह निम्न उक्ति द्वारा देता है - प्रणिधि: - यत्पुनर्देवो विभ्रममण्डपमलङ्कृतवांस्तन्नूनमेतद्दर्शनजन्मा मन्मथावेग एव विविक्तस्थानस्थितिमुपदिशति। तद्गत्वा यथोचितं विरचयामि।
विलोभन --कर्णसुन्दरी नाटिका में राजा की निम्न उक्ति में विलोभन है --

धातुस्तम्भुवर्तनाफलक:श्यामावधूवल्लभ-
स्तल्लेखोच्चतूलिकाग्रगलितास्तारा: सुधाविप्रुष: ।
तल्लावण्यरसस्य शेषममला सा शारदी कौमुदी
तद्भ्रूनिर्मितिमानसूत्रमपि तच्चापं मनोजन्मन: ।। १।२६ ।

मुक्ति - प्राप्ति --

समाधान -- कर्णसुन्दरी में राजा स्वप्नदृष्ट कर्णसुन्दरी को सत्य समझकर उसे देखने की इच्छा करता है । उसकी यह इच्छा बीजागम के रूप में निम्नपंक्तियों में स्पष्ट है --

त्रिवलिवलितलीलालोलवेणीकलापं
किमपि रसविभूतिस्त्यैंगाकैकराताम् ।
कलितकुटिलकण्ठं दर्शनोत्कण्ठयास्या
लिखितमिवममान्तस्तन्मूर्तं मन्मथेन ।।१।२८ ।।

विधान --

कर्णसुन्दरी नाटिका में राजा तरङ्गशाला में कर्णसुन्दरी का चित्र देखकर सुख का अनुभव करते हैं किन्तु देवी के आगमन की सूचना से वे दुःखी हो जाते हैं - राजा- कुपिता कथमागच्छति सौभाग्याभिमानखण्डनानुप्रवेशात् ।
परिभावना-उद्भेद-करण-भेद -।

प्रतिमुख सन्धि --

कर्णसुन्दरी नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में त्रिभुवनमल्ल एवं कर्णसुन्दरी के (भावी) समागम के हेतुरूप जिस अनुराग-बीज को बोया गया है, उसे द्वितीय अङ्क में तरङ्गावती (कर्णसुन्दरी की सखी) एवं विदूषक जान जाते हैं इसलिये वह कुछ कुछ प्रकट हो जाता है तथा देवी के आगमन के कारण वह देवी द्वारा कुछ कुछ गृहीत हो जाता है । इस प्रकार बीज के अङ्कुर का दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है ।

विलास --

कर्णसुन्दरी नाटिका में त्रिभुवनमल्ल कर्णसुन्दरी के सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और कर्णसुन्दरी भी उन पर आसक्त हो

जाती है। इस प्रकार परस्पर अनुराग होने से विलास है। कर्णसुन्दरी अतिशय अनुरक्ति के कारण मूर्च्छित हो जाती है और पुनः जीवन धारण करने पर वह कहती है -- ' अहो किमिति रसायनसिक्तेन निर्वृतिमुद्वहामि। एष: जीवन: आह्लादितो जन:। (इति किंचिद्दृष्ट्वा सलज्जमास्ते।)

परिसर्प -

कर्णसुन्दरी नाटिका के प्रथम अङ्क में राजा स्वप्न में कर्णसुन्दरी को देखता है किन्तु वह बीज दिखाई देकर नष्ट हो जाता है। उसी अङ्क में राजा पुनः उद्यान में उसको खोज करता है और तरङ्गशाला में दिखाई दे जाने पर वह कहता है - राजा - सैवेन्द्रसुन्दरमुखी लिखितेयमास्ते ।।१।५२

विधूत -

कर्णसुन्दरी नाटिका में नायिका का बीज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है। कामक्रीडासंतप्त कर्णसुन्दरी कहती है - नायिका-ईदृशानि मम भागधेयानि येमृत्युर्संभावना। (इति संस्कृतमाश्रित्य।)

गुर्वी धुरं दुरभियोगनिधिर्मनोभू-
    रूढवानविषये मनसो नुबन्ध:।
बन्धुर्न कोऽपि निपुणतया स्थितिश्च
    हा निश्चितं मरणमेव ममैकजातम् ।। २।३५ ।।

शम -

कर्णसुन्दरी में जब नायिका अपने प्रति राजा की रति जान लेती है तब उसकी अरति शान्त हो जाती है। यह शम नामक प्रतिमुखाङ्ग इन पंक्तियों से स्पष्ट है - नायिका (स्वगतम्) हृदय, मनोरथानामप्युपरि वर्तसे।

नर्म -

कर्णसुन्दरी में तरङ्गवती और कर्णसुन्दरी की निम्न उक्ति में नर्म नामक प्रतिमुखाङ्ग है-सखी(सहासम्) किमिति प्रतिपत्तिमूढता अङ्गीकृतेति । (एनां बलादानीय राजान्तिकमुपवेशयति ।) नायिका - (सकृतककोपम्) अपेहि परिहास-शीले (इति सासूयमवलोकयति ।)

नर्मद्युति-प्रगमन -

निरोधन -

कर्णसुन्दरी में कर्णसुन्दरीसमागम राजा का अभीष्ट हित है किन्तु विदूषक द्वारा देवी के आगमन की सूचना दिलवाकर उसमें अवरोध उत्पन्न कर दिया जाता है अत: यहाँ निरोधन है - विदूषक:- भो, तत्रभवतीं कर्णसुन्दरी मुद्दिश्य देव्युत्थान मलङ्करोतीति भणितम् ।

पर्युपासन -

कर्णसुन्दरी नाटिका में तरङ्गशाला मे चित्रित कर्णसुन्दरी के प्रति राजा द्वारा किये गये आत्मविनोद को देखकर देवी क्रुद्ध हो जाती हैं । राजा उसका अनुनय करता है । अनुनय उन (राजा तथा कर्णसुन्दरी) दोनों के प्रेम को प्रकट कर उसका सौख्य सम्पादित करता है, अत: यह पर्युपासन है । इसकी व्यंजना राजा की उक्ति के निम्नपद्य में हुई है - राजा-

त्रिजगति भवती परं ममैकादिशति मुदं कुमुदस्य कौमुदीव ।

प्रभुरसि कुरुषे रुषं कदाचिद्भजसि कदापि यथारुचि प्रसादम् ।।१।५५

पुष्प -

कर्ण सुन्दरी में त्रिभुवनमल्ल और कर्णसुन्दरी का अनुराग परस्पर दर्शन आदि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है, इस पुष्प की सूचना विदूषक व राजा का निम्न कथोपकथन देता है - राजा-(सानन्दमात्मगतम् ।)

भवनं मृगाङ्कस्परसैख सुधानिधाने

अप्यत्रयन्त्रविनिपीडितपारिजात-

नि:स्यन्दधौतमिव निर्वृतिमेति चेत: ।।१।३८।।

उपन्यास -

वज्र --कर्णासुन्दरी में देवी उन दोनों के प्रेम को जानकर क्रुद्ध होती हुई निम्न कटु वचनों को त्रिभुवनमल्ल से कहती हैं, यहाँ वज्र प्रतिमुखाङ्ग है - देवी (प्रकाशम्) आर्यपुत्र, एतन्नयनविनोदनं मयागत्य विनिवर्तितमेव । साम्प्रतं प्रस्थित-व्यम् । (इति सावेगमुत्तिष्ठति ।)

वर्णसंहार - .

गर्भसन्धि --

कर्णासुन्दरी नाटिका के तृतीय अङ्क में कर्णासुन्दरी के अभिसरण के उपाय से राजा को फल प्राप्ति की आशा हो जाती है किन्तु देवी के द्वारा उसमें पुन: विघ्न उपस्थित होता है । अत: एक बार फलप्राप्ति के बाद पुन: विच्छेद होता है फिर विघ्न के निवारण के उपाय तथा फलहेतु का अन्वेषण किया जाता है । इस अन्वेषण की व्यंजना विदूषक को इस युक्ति से होती है ।

विदूषक: --

भो:, किमरण्यरोदनेन । देव्येवानुस्रियताम् ।

अभूताहरण-कर्णासुन्दरी नाटिका में कर्णासुन्दरी को गोपनीय ढङ्ग से देवी का वेष बनाकर उद्यान में उपस्थित करके राजा का सङ्गम उसके साथ कराया जाता है, इस छद्म की सूचना मन्दोदरि तथा बकुलावलि के कथोपकथन द्वारा तृतीय अङ्क के प्रवेशक में ही दे दी गई है ।

मार्ग -

कर्णासुन्दरी में गोपनीय ढङ्ग से होने वाले देवी के वेष में कर्णासुन्दरी समागम की सूचना देकर विदूषक कर्णासुन्दरी समागम का निश्चय राजा को करा

देता है । इस प्रकार तत्त्वार्थनिवेदन के कारण निम्न पंक्तियों में मार्ग नामक गर्भाङ्क है - विदूषक :--दिष्ट्यावर्धसे कार्यसिद्धया । राजा-(सहर्षमालिङ्गय।) कथमिव (विदूषक: -(कर्णे।) एवमेवम् ।

रूप --

कर्णसुन्दरी में यह वितर्करूप राजा तथा विदूषक की निम्न उक्तियों में सूचित है - विदूषक: - भो: निरन्तरगोधनसमूहसमुद्धतधूलीसमुत्सारित्ततरुण-तरतिनिरपङ्कलाञ्छन समये नुसियतां सङ्केतस्थानम् ।

राजा- (ऊर्ध्वमवलोक्य ।)

संधरे धूपधूमच्छविमबहुतम: प्राप्यते तारकाभि:
पुष्पस्रग्दामशोभा नभसि नवनिशाकामिनीतल्पकल्पे ।
मध्ये कस्तूरिकाङ्ग दधदिव हरिणं किं च संध्यानुबन्धा-
बिन्दु: सिन्दूरभिन्नस्फाटिकमणिशिलाबन्धुलीलां तनोति ।।३।२०

उदाहृति-क्रम -

कर्णसुन्दरी नाटिका में राजा कर्णसुन्दरी समागम की अभिलाषा ही कर रहा था कि भ्रान्त कर्णसुन्दरी (कर्णसुन्दरी के रूप में देवी) आ जाती है । अत: क्रम है - राजा, अये, कथं प्राप्तैव प्राणेश्वरी ।

संग्रह-अनुमान --x

अधिबल --

कर्णसुन्दरी नाटिका में देवी और हारलता कर्णसुन्दरी-अभिसरण की बात जानकर उसका अनुसरण करती हैं और राजा का अभिप्राय जान लेती हैं । अत: अधिबल है । तृतीय अङ्क के प्रवेशक में बकुलावलि द्वारा ही इसकी सूचना दे दी गई है - बकुलावलि - < < < देव्या सर्वमपि श्रुत्वाहं भणिता अथ मया कर्णसुन्दरी रूपेण त्वया तस्या: संकेतरूपेण गत्वार्यपुत्रो वंचयितव्य: ।

तोटक --

कर्णसुन्दरी नाटिका में कर्णसुन्दरी समागम में विघ्न उपस्थित करते हुए देवी क्रुद्ध वचन के द्वारा त्रिभुवनमल्ल की इष्टप्राप्ति को अनिश्चित बना देती है। अत: यह तोटक है। देवी की इस क्रोधपूर्ण उक्ति में तोटक है - देवी- (प्रटकीभूय) स्वागतमार्यपुत्राय। (इतिनिष्पाति)

उद्वेग -- ×

सम्भ्रम -- आक्षेप --

कर्णसुन्दरी में विदूषक की निम्न उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि कर्णसुन्दरीप्राप्ति देवी की प्रसन्नता पर ही आश्रित है। इसके द्वारा विदूषक गर्भबीज को प्रकट कर देता है अत: यहाँ आक्षेप है - विदूषक: - मोह किमरण्यरोदनेन। देव्येवानुप्रियताम्। राजा-एवमिति।

निर्वहण सन्धि -

कर्णसुन्दरी नाटिका के चतुर्थ अङ्क में कर्णसुन्दरी, देवी, प्रतीहारी, वीरसिंह, राजा, विदूषक, प्रणिधि आदि के कार्यों (अर्थों) का जो मुखसन्धि आदि में इधर-उधर बिखरे पड़े थे, राजा के ही कार्य के लिये समाहार होता है। इसकी सूचना चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में ही विदूषक द्वारा दी गई है - विदूषक:- (सपरितोषम्।) साधु अमात्य, साधु। देव्या भागिनेयं कुमारं कर्णसुन्दर्या: समानवयस्कमात्मन: सकाशे तस्या वेषधारिणमानयता तस्यैव निवासे कर्णसुन्दरीं मुन्चता सर्वं साधितम्। तत्प्रिय वयस्य चक्रवर्तिभाव: सर्वथाभिमुख: संवृत्त:। अपरं देव्या: परिहासाद्रक्षितो च खलु महाभावस्य। मया मन्त्रागेधमया वामत्वेनार्यपुत्र: कलामित इति कर्णसुन्दरीप्रतिकृतिगर्भं रूपं भागिनेयं परिणाययितुं प्रियवयस्य: प्रवृत्त:। साम्प्रतं देव्येव विलसा भविष्यति तद्दु:सहसंगतनिवासस्य तस्य परिवारवर्ती भवामि।

सन्धि --

कर्णसुन्दरी में चेटी द्वारा कर्णसुन्दरी को लाये जाने पर देवी को कर्णसुन्दरी के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है । यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की जाती है अतः सन्धि है । देवी -(सलज्जां नायिकामान्तिके निवेश्य स्वगतम् ।) आश्चर्यम् । प्रत्यक्षं सैवेषा । अहो माहात्म्यं कपटनाटकस्य ।

विबोध - ग्रथन-निर्णय- परिभाषा-प्रसाद -- ×

आनन्द - कर्णसुन्दरी में राजा देवी की अनुमति द्वारा कर्णसुन्दरी की प्राप्ति हो जाने पर कहता है - राजा - (गृहीत्वा) प्रसन्नं देव्या ।

समय-कृति -- ×

भाषण --

कर्णसुन्दरी में त्रिभुवनमल्ल की यह उक्ति उसके काम, अर्थ, मान आदि के लाभ को द्योतक है -

राजा - दृष्टं देव्या किमपि भुवनाश्चर्यतत्वं महत्वं
लब्धा लक्ष्मीरिव मनसिजक्ष्माभुवः पङ्कजाक्षी ।
एकच्छत्रं समजनि महीमण्डलं तत्प्रियं मे
किं स्यादस्मात्परमपि वरं यत् याचे भवतः ।। ४।२३

उपगूहन-×काव्यसंहार --

कर्णसुन्दरी में -अमात्य `किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि' इस वाक्य द्वारा नाटिका के काव्यार्थ का उपसंहार होने से यहाँ काव्यसंहार नामक निर्वहणाङ्ग है ।

प्रशस्ति -

कर्णसुन्दरी नाटिका में निम्नश्लोक में शुभ (कल्याण) की आशंसा होने से प्रशस्ति नामक निर्वहणाङ्ग है - राजा- < < तथापीदमस्तु- -

हेलाभ्यस्तसमस्तशास्त्रगहन:साहित्यपाथोनिधि-
क्रीडालेहनपण्डित: प्रियतम: शृङ्गारिणीनां गिराम् ।
एकैकेन दिनेन निर्मितमहाकाव्यादिरव्याहत-
प्रागल्भ्यस्थितिविभ्रम: स्थिरमति: पार्श्वेविदग्ध:कवि: ।।४।२४।।

अर्थोपक्षेपक -

विष्कम्भक -

कर्णसुन्दरी नाटिका में प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में प्रस्तावना के बाद विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें प्रणिधि नामक मध्यम पात्र का प्रयोग हुआ है अत: शुद्धविष्कम्भक है और संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

इसमें राजा के अमात्य प्रणिधि द्वारा नाटिका की पूर्वकथा का आभास दिया गया है । उसके द्वारा त्रिभुवनमल्ल और कर्णसुन्दरी के प्रणय की भी सूचना दी गई है । मंत्री प्रणिधि को यह ज्ञात था कि जिसके साथ कर्णसुन्दरी का विवाह होगा उसको चक्रवर्तित्व की प्राप्ति होगी । इन सब बातों की सूचना विष्कम्भक में दे दी गई है ।

नाटिका के इसी शुद्ध विष्कम्भक में ही बीज का न्यास भी किया गया है जिससे यह सूचना मिलती है कि प्रणिधि द्वारा कर्णसुन्दरी को अन्त:पुर में रखे जाने का एकमात्र प्रयोजन दोनों का मिलन करा देना है । नेपथ्य की योजना द्वारा राजा के विश्रामावसर की सूचना दी गई है । राजा को अवश्य फलप्राप्ति होगी

इस बात की सूचना भी प्रणिधि द्वारा विष्कम्भक में ही देदी गई है - यत्पुनर्देवो विश्राममण्डपमलङ्कृतवांस्तन्नूनमेतद्दैवजन्मा मन्मथावेग एव विविक्तस्थानां स्थिति-मुपदिर्शति । तद्गत्वा यथोचितं विरचयामि ।

इन्हीं भूत तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में शुद्ध विष्कम्भक की योजना की गई है ।

<u>प्रवेशक</u> -

शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में दो अङ्कों के मध्य प्रथम अङ्क के बाद और द्वितीय अङ्क के पूर्व प्रवेशक की योजना की गई है । इसमें तरङ्गवती नामक एक स्त्री पात्र और विदूषक नामक एक पुरुष पात्र का प्रयोग हुआ है । इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है । नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी प्रसंगों की सूचना दी गई है । विदूषक द्वारा देवी के प्रसन्न हो जाने की सूचना दी गई है । वह यह भी सूचित करता है कि राजा द्वारा विद्याधरकन्या की प्रवृत्ति को ज्ञात करने की आज्ञा भी दी गई है कि उसे राजा के प्रति अनुराग है अथवा नहीं । वह अन्त:पुर से आती हुई कर्णसुन्दरी की सखी तरङ्गवती से मिलकर कर्णसुन्दरी के विषय में पूछता है । तरङ्गवती उसे बताने से इन्कार करती है किन्तु विदूषक जब उसे यह बताता है कि प्रियवयस्य द्वारा यह आज्ञा दी गई है तब तरङ्गवती रहस्य की रक्षा करने की आज्ञा देते हुये कर्णसुन्दरी के विषय में सूचित करती है - (इति संस्कृतमाश्रित्य ।)

यत्तारारमणोऽपि निर्वर्तिपदं नास्याः स्खलद्बाष्पो-
यैद्गात्रं शतपत्रपत्रशयनेऽप्युत्कालमुद्वेल्लति ।
शीतं यच्च कुचस्थलीमलयजं धूलीकदम्बायते
किं वान्यन्मदनङ्गमङ्गलमयी भङ्गी कुरङ्गीदृशः ।।२।१ ।।

तदुपरान्त विदूषक सन्तुष्ट होकर तरङ्गवती को अपना कार्य समाप्त करने की आज्ञा देकर स्वत: राजा के पास चला जाता है ।

दूसरा प्रवेशक -

इस नाटिका में द्वितीय अङ्क के बाद और तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में भी प्रवेशक की योजना दो अङ्कों के मध्य की गई है । इसमें मन्दोदरि और बकुलावलि नामक दो नीच स्त्री पात्रों का प्रयोग हुआ है । इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है । नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

यहाँ पर भी प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी कथांशों की सूचना दी गई है । मन्दोदरि जब बकुलावलि से देवी के अन्त:पुर के रहस्य के विषय में पूछती है तब बकुलावलि मन्दोदरि को चंचल चित्त वाली होने के कारण बताना नहीं चाहती किन्तु मन्दोदरि द्वारा क्रोध किये जाने पर बकुलावलि उसे समस्त सूचना देने को तैयार हो जाती है और मन्त्रभेद की रक्षा करने की आज्ञा देती है । बकुलावलि सूचित करती है कि राजा को विद्याधर की कन्या के प्रति अनुराग हो गया है किन्तु देवी के भय से वे कुछ भी कर सकने में असमर्थ हैं । अत: आर्य बादरायण ने अन्त:पुर के पीछे मदनोद्यान में कर्णसुन्दरी और सखी बकुलावलि के साथ राजा के एकान्त मिलन की योजना बनाई है किन्तु देवी ने उसे सुन लिया है और उनके द्वारा यह आज्ञा दी गई है कि कर्णसुन्दरी के वेष में देवी और बकुलावलि के वेष में हारलता दोनों पहले ही जाकर राजा को धोखा देकर उनको वंचना करेंगी । अत: इस बात (योजना) की रक्षा की जानी चाहिये । मन्दोदरि यह सुनकर और अहो, संकडे पडिदो महाराओ यह कहते हुये चली है ।

इस प्रकार इन समस्त भूततथा भावी कथांशों की सूचना प्रवेशक में दी गई है ।

चूलिका --

नाटिका के प्रथम अङ्क की प्रस्तावना में चूलिका की योजना की गई है। सूत्रधार द्वारा यात्रामहोत्सव के समय खेले गये खेल को प्रयोग करने की सूचना दिये जाने पर 'नेपथ्ये' की योजना द्वारा सूचित किया गया है -

(नेपथ्ये गीयते)

नवधाव्या दृष्ट्वा सरसविलासान्परवशायित:।

मन्दीकृतकुन्दलताचुम्बनतृष्णो भ्रमति भ्रमर: ।।१।६

प्रथम अङ्क में ही प्रणिधि द्वारा त्रिभुवनमल्ल और कर्णसुन्दरी के अनुराग के विषय में सूचित किये जाने पर 'नेपथ्ये' की योजना द्वारा राजा के विश्रामावसर की सूचना दी गई है - (नेपथ्ये)

जयति विश्रामवसरो देवस्य। संप्रति -

अन्योन्यं ।।१।२३।।

पंचाञ्जिस्य ।। १।२४।।

विश्रान्तो ।।१।२५।।

प्रथम अङ्क में ही राजा और विदूषक देवी को प्रसन्न करने के विषय में वार्तालाप करते रहते हैं उसी समय नेपथ्ये द्वारा राजा के लिये वसन्तावतार की सूचना दी जाती है - (नेपथ्ये) सुखाय कुसुमसमयसमारम्भो देवस्य। संप्रति हि -

रक्ताशोकद्रुमाणां ।।१।४२।।

उन्मेष श्चम्पकानाम ।।१।४३।।

नाटिका के चतुर्थ अङ्क में विदूषक जब राजा से कहता है कि देवी जब कर्णसुन्दरी को तुम्हारे लिये समर्पित कर रही हैं तब उसे सर्वथा ग्रहण करो, तभी 'नेपथ्ये' द्वारा राजा के प्रति मङ्गल गान की योजना की गई है -

(नेपथ्ये)।

गीयन्तां मङ्गलानि स्फुरतु चतुरता ताण्डवे लासिकानां

सिच्यन्तां वाद्यकला: क्षितिपतिभिरपि शिम्यतां पुष्पवृष्टि:।

प्रर्याि स्वचानुवृत्ति क्रतार्नि स्तमति:सस्मितायेन देवी ।।४।१२।।

अत: उपर्युक्त समस्त स्थलों पर चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है ।

पारिजातमंजरी -

नान्दी -

पारिजातमंजरी नाटिका आरम्भ करने के पूर्व उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिए ऐतिहासिकव्यक्ति राजाभोजदेव के गुणों की प्रशंसा की गई है । राजा भोज को कृष्ण सदृश बताया और भोज को ही अर्जुन रूप में नाटिका का नायक मान लिया है । साथ ही नान्दी में ही यह भी बता दिया कि श्रवण के आधार पर शिलायुगल पर भोज के गुणों को अत्यन्त कठिनता पूर्वक उत्कीर्ण किया गया है । शिलायुगल में से केवल एक शिला पर उत्कीर्ण दो अङ्क उपलब्ध हैं । दूसरी शिला पर अङ्कित दो अङ्क नष्ट हो चुके हैं ।

अत्र कथंचिटलिखिते श्रुतिलेखर्यतिस्थते शिलायुगले ।
भोजस्यैव गुणोर्जितमर्जुनमूर्त्यावतीर्णस्य ।।१।।
तत्ताइक्सुमनोमनोहरतनुर्वामाङ्गशृङ्गारिणी
मुष्टिस्वीकरणीयमध्यमधुरावष्टम्भनमाकृति: ।
आकर्णान्तिनटत्कटाक्षविशिखव्यापारधन्या जय-
त्यन्याचापलतेव चन्द्र सुहृदो देवस्य कान्तारति: ।।२।।

अपि च ।

बल्गद्गणाजयलक्ष्मो विजयते नि:शेषगोत्रार्णकृ-
त्कृष्ण:कृष्ण इवार्जुनो र्जुन इवश्रीभोजदेवो नृप: ।
विस्फूर्जद्विषभेषवेधविधुरां राधां विधत्ते स्म य-
स्तूर्णं पूर्णमनोरथश्चिरमभूद्गाङ्गेयभङ्गोत्सवे ।।३ ।।

सूत्रधार -

पारिजातमंजरी नाटिका की प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा अभिनेय रचना

और नाटककार का परिचय दिया गया है - सूत्रधार : - < <
गङ्गाधरायणोर्मदनस्य राजगुरो:कृतिरभिनवा समस्तसामाजिकमधुव्रतानन्दमकरन्दं प्रथा
पारिजातमंजरीत्यपराख्या विजयश्रीनाम नाटिका नाटयितव्या ।

अर्थप्रकृति --

बीज --

पारिजातमंजरी नाटिका के नृप का कार्य राजा अर्जुन तथा पारिजात-मंजरी का मिलन करा देना है जो सूत्रधार को अभीष्ट है । नाटिका के सम्मुख में सूत्रधार की यह चेष्टा बीज के रूप में रखी गई है ।

बिन्दु --

नाटिका के द्वितीय अङ्क में कनकलेखा को जब राजा द्वारा रानी के ताटङ्क के पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखे जाने की बात ज्ञात हो जाती है तब कथा विच्छिन्न हो जाती है । इसे संश्लिष्ट करने के लिये राजा द्वारा पुन: मरकत मण्डप में पारिजातमंजरी के साथ मिलन कराया गया है । अत: यहाँ पर बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है ।

पताका प्रकरी -- x

कार्य-

प्रस्तुत नाटिका में राजा अर्जुन और पारिजातमंजरी का मिलन प्रधान साध्य होने से कार्य है ।

अवस्था --

आरम्भ - पारिजातमंजरी नाटिका में < < आवामप्यनन्तरकरणीयाय सज्जीभवाव: । सूत्रधार के इस वाक्य द्वारा कार्य का आरम्भ दिख-

लाया गया है ।

प्रयत्न --

प्रस्तुत नाटिका के द्वितीय अङ्क में वसन्तलीला की युक्ति से राजा अर्जुन और पारिजातमंजरी के सम्मिलन का प्रयत्न किया जाता है अत: वहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है । प्राप्त्याशा, नियताप्ति फलागम ।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग-मुख सन्धि --

पारिजातमंजरी नाटिका के आमुख में सूत्रधार की निम्न उक्ति में बीजोत्पत्ति है -

सूत्रधार : -

ततश्च देवेन जयकुंजरकुम्भस्थलादाकृष्यतस्था: कुचस्थले दृष्टिं संचारितवता महाजनलज्जया सा कुसुमश्री: कंचुकिन: कुसुमाकरनामधेयस्योद्यानाधिकारिण: समर्पिता तेन चानीय धारागिरिगर्भमरकत मण्डपे वसन्तलीलां स्वगृहिणीं योगक्षेमकारिणीं दत्वा स्थापिता ।

उपक्षेप -- पारिजातमंजरी नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही सूत्रधार अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है । उसका कार्य राजा एवं पारिजातमंजरी को मिला देना है । इस बीज रूप व्यापार की सूचना सूत्रधार की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है --

मनोज्ञां निर्विशन्नेतां कल्याणी विजयश्रियम् ।
सदृशो भोजदेवेनन धाराधिप्य भविष्यति ।।१।६ ।।

परिकर -

पारिजातमंजरी में सूत्रधार अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है । इसकी सूचना सूत्रधार की निम्नउक्ति से

होती है - सूत्रधार :- ततश्च देवेन जयकुंजर कुम्भस्थलादाकृष्य तस्या: कुचस्थले दृष्टिं संचारिता महाजनलज्जया सा कुसुमश्री: कंचुकिन: कुसुमाकरनामधेयस्योद्यानाधिकारिण: समर्पिता तेन चानीय धारागिरिगर्भमरकतमण्डपे वसन्तलीलां स्वगृहिणीं योगक्षेमकारिणीं दत्वा स्थापिता ।

परिन्यास - ×

विलोभन - पारिजात० में राजा की निम्न उक्ति में विलोभन है ।

राजा- (राज्ञीताडङ्कके प्रतिबिम्बितां नायिकामवलोक्य सहर्षं वहिरित्थमात्मगतम् ।) अक्ये, जितं मनोरथै: । यदियं बलधूलिघोरान्धकारदु:संचरसमरसंकेतनवपाभिसारिका मे प्राणेश्वरी प्रथमप्राणेश्वरी ताडङ्ककदर्पणे लोचनगोचरं गता ।

युक्ति × - प्राप्ति - पारिजात ० में वसन्तलीला की उक्ति को सुनकर पारिजातमंजरी हर्ष के साथ राजा को देखती हुई कहती है - नायिका (उष्णा नि:श्वस्य सवितर्कमात्मगतम् ।) कुतो स्माक तादृशं भागधेयम् ।

समाधान -

पारिजात० में पारिजातमंजरी राजा को देखने की इच्छा से रानी के ताटङ्क में अपना प्रतिबिम्ब देखते हुये राजा को देखकर कहती है - नायिका (राज्ञीताडङ्कके स्वप्रतिबिम्बं राजानं च निर्वर्ण्य सवितर्कप्रत्याशमात्मगतम् ।) अम्मोह, निमेष राजा में प्रतिबिम्बं प्रेक्षते:थ वा देव्यास्ता ङ्कमेव ।

विधान-परिभावना, उद्भेद,करण - ×

प्रतिमुख सन्धि -

पारिजात मंजरी नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में राजा एवं पारिजात मंजरी के (भावी) समागम के हेतु रूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है, उसे दूसरे अङ्क में वसन्तलीला और विदूषक जान जाते हैं इसलिये वह कुछ कुछ प्रकट हो जाता है तथा ताडङ्क में प्रतिबिम्ब देखने के वृत्तान्त के कारण कनकलेखा

(राज्ञी की चेटी) द्वारा कुछ कुछ गृहीत हो जाता है । इस प्रकार बीज के अङ्०कुर का दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है ।

विलास —

पारिजात० में नायक पारिजात मंजरी के सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और पारिजातमंजरी भी नायक के सौन्दर्य को देखकर उन पर आसक्त हो जाती है । इस प्रकार नायक का पारिजातमंजरी के प्रति और पारिजात० का नायक के प्रति अनुराग होने से विलास है । इसकी व्यंजना नायिका की निम्न उक्ति से होती है - नायिका - (स.......... विशं राजानमवलोक्य ।) हा धिक्, एष निर्दय: प्रत्यक्ष एव कुसुमायुधो मां मन्दभागिनीं प्रहरति ।

परिसर्प - पारिजात० के द्वितीय अङ्०क के प्रारम्भ में राजा पारिजातमंजरी से जब मिलता है तब बीज एक बार दृश्य हो गया परन्तु द्वितीय अङ्०क के अन्त में राजा पुन: पारिजात० की खोज करते हैं । राजा विदूषक से कहते हैं —

विदूषक :—वयस्य, मारितस्य भुक्तस्य चैकमेव नाम । स्तोको बहुर्वापराधोऽपराध एव । तत्संभावय महाभागिनीं पारिजातमंजरीम् ।` राजा - (सोत्कण्ठम्) सखे एवं करोमि ।`

विधूत —

पारिजात० में पारिजातमंजरी का अनुराग बोज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है । कामपीडा संतप्त पारिजातमंजरी कहती है - नायिका —

हा धिक् एष निर्दय: प्रत्यक्ष एव कुसुमायुधो मां मन्दभागिनीं प्रहरति ।

शम —

पारिजात में जब नायिका अपने प्रति राजा की रति जान लेती है तो उसकी अरति शांत हो जाती है । यह शम नामक प्रतिमुखाङ्०ग इन पंक्तियों से

स्पष्ट है -

नायिका - (राजानमुपलभ्यससाध्वसमुत्थायात्मानं पर्यंव स्थापयति । धृतिनि:श्वास-मुत्सृज्य वसन्तलीलां प्रत्यपवारितकेन) आर्ये, अपि वल्लभे पि परवशे जनो कीदृशो वारं-वार मनुबन्धनिर्बन्ध: ।

नर्म -

पारिजात० में वसन्तलेखा और पारिजातमंजरी की निम्न उक्ति में नर्म नामक प्रतिमुखाङ्ग हैं - वसन्तलीला (नायिकां प्रति) अत्वो, एवमेव युष्मादृश्यो मुग्धा दूरगाढौत्कण्ठाशीला: प्रियसकाशे पराङ्मुख्यो भवन्ति । नायिका - (किंचिद्विहस्य सासूयमिव) आर्ये, त्वमन्यदेवकिमपि जल्पन्ती तिष्ठसि । अहं पुनरेतादेव भणामि यदन्यपादपानन्यकुसुमैर्विकासयितुमस्ति मे कौतूहलम् ।

नर्मद्युति- प्रगमन - x

निरोधन -

पारिजात० में पारिजातमंजरी समागम राजा का अभीष्ट हित है किन्तु कनकलेखा रानी के ताडङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखते हुये राजा को देख लेती है । राजा उसे प्रसन्न करने के लिये दृष्टि से सङ्केत करते हैं अत: रानी क्रुद्ध होकर चली जाती हैं और नायिका समागम में अवरोध उत्पन्न हो जाता है । अत: यहां निरोधन है ।

पर्युपासन - पारिजात० में नायिका रानी के प्रति राजा के प्रेम को देखकर निराश हो जाती है तब राजा उसका अनुनय करते हुये कहता है - राजा-(अपवारितकेन नायिकां चिबुके स्पृष्ट्वा) प्रिये, अलंकन्यका संभावनया मुहूर्तमास्थानमधिष्ठाय प्रति-निवृत्तवास्मि ।

पुष्प –

पारिजात० में नायक एवं नायिका का अनुराग परस्पर दर्शन आदि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है, इस पुष्प की सूचना राजा की निम्न उक्ति द्वारा मिलती है – राजा –

उपधाय व्यस्याङ्क म्लानतल्पोत्पलाङ्कुरा
वियोगयोगनिद्रायांनियमास्ते प्रिया मम ।। २।५८ ।।

उपन्यास – वज्र –

पारिजात० में नायिका राजा द्वारा अनुनय किये जाने पर भी निम्न निम्न कटु वचनों को कहती है – नायिका–(सानुतापमुद्वीविकावलोकितकेन) कथं लोचन–पथमतिक्रान्तः परवशो जनः । (स्वगतम ।) तदिदानीं यद्देव्या कारयितव्यं तदहं स्वयमेव करिष्यामिमन्दभागिनी ।

वर्णसंहार –

अर्थोपक्षेपक –

विष्कम्भक –

पारिजातमंजरी में नाटिककार ने प्रथम अङ्क के बाद द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में विष्कम्भक की योजना की है । इसमें कुसुमाकर नामक मध्यम पात्र और वसन्तलीला नामक नीच पात्रों का प्रयोग हुआ है । एक पात्र मध्यम श्रेणी का तथा दूसरा नीच श्रेणी का होने से मिश्र विष्कम्भक है । संस्कृत के साथ साथ प्राकृत भाषा का भी प्रयोग हुआ है ।

यहाँ पर विष्कम्भक में कुसुमाकर और वसन्तलीला द्वारा नायक – नायिका की पारस्परिक उत्कण्ठा की सूचना दी गई है ।

इन्हीं भावी कथांशों की सूचना के लिये यहाँ पर विष्कम्भक की योजना की गई है ।

कुवलयावली नाटिका -

नान्दी -

कुवलयावली नाटिका के प्रारम्भ में छः पंक्तियों की नान्दी दी गई है। इसमें नाटिका की निर्विघ्न समाप्ति के लिये आशीर्वाद के वचनों से युक्त-शिव-पार्वती की स्तुति की गई है -

शृङ्गारवीरसौहार्दं मौग्ध्यवैयात्यसौहृदम् ।
लास्यताण्डवसौजन्यं दाम्पत्यं तद् भजामहे ।। १ ।।

अपि च -

बीजावापमुपेयिवान् स्मृतिवशाद् रागोष्मणोद्भिदवा-
न्न्योन्यस्य कराङ्गुलीघटनया प्राप्तप्रवालोद्गमः ।
विस्रम्भेण विकासवान् सफलतामैक्येन सम्भावयन्
कल्याणं भवतां करोतु शिवयोरानन्दकल्पद्रुमः ।।२।।

सूत्रधार -

कुवलयावली नाटिका में सूत्रधार के शब्दों में - अये रङ्गलक्ष्मीनिवास । ललितकविताविलासचतुराननेन चतुरुदधिवलयवेल्लितवसुन्धरापरिणाहपरिगलत्कीर्ति-कर्पूरपूरापहसितान्यराजन्यगुणगौरवेणाप्रतिगण्डभैरवेण भारतलक्ष्मीसरस्वती परस्पर-विरोधपरिवादपरिहरणप्रवीणनिजगुणतरङ्गितान्तरङ्गनिदज्जनसभाजनपरायेण सङ्गनारायणेन मान्यमहिलागुणविशेषलीलासदनोमाम्बिकाविहूरविस्रम्भराविमल-रत्नकन्दलेन श्रीमता श्रीशिङ्गभूपालेन प्रणीतामखण्डपरमानन्दवस्तु चमत्कारिणीं कुवलयावलीं नामनाटिकां प्रयोगतो दर्शयेति ।' इन शब्दों से अभिनेय रचना और नाटककार का परिचय मिलता है और 'रुक्मिणीप्रमुख देवीपरिजनों महानितस्वाभि-वर्तते' इन शब्दों से रुक्मिणी आदि के प्रवेश की सूचना दी जाती है ।

प्रस्तावना -

कुवलयावली में सूत्रधार के मुख से निकले हुये `हला ! श्रुतमिदं स्त्रीपुरुषार्थसारं वचनम्` इस वाक्य को ग्रहण करके रुक्मिणी का प्रवेश होता है - रुक्मिणी `हला ! युष्माभि: श्रुतं स्त्रीपुरुषार्थसारवचनम् !`

अर्थप्रकृति -

बीज -

कुवलयावली नाटिका के नृप का कार्य राजा और कुवलयावली का मिलन करा देना है जो सूत्रधार को अभीष्ट है । नाटिका के आमुख में ही सूत्रधार की यह चेष्टा बीज के रूप में रखी गई है । सूत्रधार की निम्न उक्ति में बीज का सङ्केत है - सूत्रधार-साधु कल्याण शीले साधु ।

व्रतानि वर्णनीयानि सन्त्वन्यानि सहस्रश: ।
परं व्रतं पुरन्ध्रीणां पतिचित्तानुरंजनम् ।।७।।

बिन्दु -

कुवलया० में नेपथ्य से निम्न उक्ति सुनकर कुवलयावली और चन्द्रलेखा उद्यान से लौट जाती हैं -

हला ! चन्द्रलेखे ! किमच्चिरं कुवलयावलीं वनसञ्चारणायासितां करोषीति देवी कुप्यति । तदानयैनाम् ।` इससे कथा में विशृङ्खलता आ जाती है इसे संश्लिष्ट या शृंखलाबद्ध करने के लिये पुन: उद्यान में मुद्रिका ढूंढने के लिये आई हुई कुवलयावली के द्वारा -`अयि चित्त ! त्वं सख्या आशंकितमात्रेणैव किमित्यात्मानं कृतार्थं चिन्तयसि । यह उक्ति कहलाकर कथा का अच्छेद (सन्धान) कर दिया है । यह अच्छेदकारण बिन्दु वृत्त में आगे जाकर ठीक वैसे ही प्रसारित होता है जैसे तेल की बूंद पानी में फैलती है । इसीलिये इसे बिन्दु कहते हैं ।

पताका -

प्रकरी - कुवलयावली नाटिका में राजा के द्वारा दानव की मृत्यु प्रकरी है।

कार्य -

कुवलया० में राजा और कुलयावली का मिलन प्रधान-साध्य होने से कार्य है।

अवस्था -

आरम्भ -

कुवलयावली में अये अर्थ कालयवनविजयाय प्रयाते वासुदेवे तदभ्युदयाकाङ्क्षी-विलासोद्याने सौभाग्यलक्ष्मीचिरण्टिकाप्रसाधनाय मिश्रितो रुक्मिणीप्रमुख देवी-परिजनो महानित एवाभिवर्तते। तदिह दूरमपसराव:' सूत्रधार के द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है।

प्रयत्न --

कुवलया० नाटिका के द्वितीय अङ्क में चन्द्रलेखा (कुवलयावली की सखी) तथा विदूषक की उक्ति से राजा तथा कुवलयावली के सम्मिलन का प्रयत्न किया जाता है अत: वहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है।

प्राप्त्याशा -

कुवलयावली के तृतीय अङ्क में कुवलयावली को मुद्रिका खोजने के व्याज से उद्यान में उपस्थित करके प्रियवयस्य का सङ्गम आदि उपाय होने पर सत्य-भामा के रूप में विघ्न की आशङ्का 'कुत: खल्वियमागतानभ्रवज्रवृष्टि:। तदेहयम्य-न्तरं गच्छाव:।' चन्द्रकला के इस वचन से दिखलाई गई है, इसलिये इसस्थल में प्राप्त्याशा अवस्था है।

नियताप्ति -

फलागम -

कुवलयावली नाटिका में राजा को कुवलयावली का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्वप्राप्ति नाटिका का फलागम है इसलिये यह कार्य की फलागम अवस्था है ।

सन्धिसन्ध्यङ्ग -

मुखसन्धि -

कुवलयावली नाटिका के आमुख सूत्रधार की निम्न उक्ति में बीजोत्पत्ति है-

प्रतानि वर्णनीयानि सन्त्वन्यानि सहस्रशः ।
परं व्रतं पुरन्ध्रीणां पतिचित्तानुरंजनम् ।।६।।

अतः प्रथम अङ्क में मुखसन्धि है ।

मुखाङ्ग -

उपक्षेप -

कुवलयावली नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही सूत्रधार अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है । उसका कार्य राजा एवं कुवलयावली को मिला देना है । इस बीज रूप व्यापार की सूचना सूत्रधार की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है -

व्रतानि वर्णनीयानि सन्त्वन्यानि सहस्रशः ।
परं व्रतं पुरन्ध्रीणां पतिचित्तानुरंजनम् ।।६।।

परिकर -

कुवलया० में सूत्रधार अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है । इसकी सूचना चन्द्रलेखा की निम्न उक्ति से होती है -अन्यथा कन्यकारत्नं त्वां त्रिभुवनैकमल्लस्य क्षत्रियकुमारस्य भुजान्तरालैक-

माणहर्नं कुर्वन् आणिपाक्यामिवमञ्जूषायां नारदमर्ण्यन्त:पुरे स्थापयति ।

परिन्यास - ×

विलोभन - कुवलया० में राजा की निम्न उक्ति में विलोभन है --

सेयमलंकृतरूपा सखीसहालापसूचितौदार्या ।
सौरभविदितविशेषा केतकलतिकेव इति मे चेत: ।।१० ।।

युक्ति - ×

प्राप्ति --

कुवलयावली० में चन्द्रलेखा की उक्ति को सुनकर कुवलयावली हर्ष के साथ राजा को देखती हुई कहती है - `अहो सौन्दर्यविशेषो यदुदेवस्य (सानुरागं निर्वर्ण्य) अतिमात्रसम्मोहनत्वमाकृतिविशेषस्य (इत्यवलोकयति) ।

समाधान --

कुवलया० नाटिका में कुवलयावली राजा को देखने की इच्छा से निकुंज में आ जाती है । उसकी यह इच्छा बीजागम के रूप में इन पंक्तियों से स्पष्ट है - `हला ! एतस्मिन् निकुंजोपसूले रङ्गमणीवल्लभं विजययात्रात: प्रतिनिवृत्तं पश्याव आर्यपुत्रम् ।

विधान - ×

परिभाव --

कुवलया० नाटिका में राजा चन्द्रलेखा को देखकर आश्चर्य के साथ कहते हैं - नायक: (सविस्मयम्) कथमियं विदग्धापि प्रमुग्धेव रत्नपांचालिकामालपति चन्द्रलेखा ।` यहां चन्द्रलेखा के विदग्धा होने पर भी प्रमुग्धा की भांति वह रत्नपांचालिका से आलाप करती है । अत: राजा की उक्ति में अभिव्यंजित अद्भुत रस के आवेश के कारण यहां परिभावना नामक मुखाङ्ग है ।

भेद -->

प्रतिमुख सन्धि --

कुवलयावली नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में राजा एवं कुवलयावली के (भावी) समागम के हेतुरूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है, उसे दूसरे अङ्क में चन्द्रलेखा एवं विदूषक जान जाते हैं इसलिये वह कुछ कुछ प्रकट हो जाता है तथा मुद्रिका वृत्तान्त के कारण चकोरिका (रुक्मिणी की चेटी) के द्वारा कुछ कुछ गृहीत हो जाता है। इस प्रकार बीज के अङ्कुर का दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है।

विलास -

कुवलया० नाटिका में नायक कुवलयावली के सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और कुवलयावली भी नायक के सौन्दर्य को देखकर उन पर आसक्त हो जाती है। इस प्रकार नायक का कुवलयावली के प्रति और कुवलयावली का नायक के प्रति अनुराग होने से यहाँ विलास है। इसकी व्यंजना कुवलयावली की निम्न उक्ति से होती ह - कुवलयावली- (श्रुतिमभिनीय, आत्मगतम् अयि चित्त। त्वं सख्या आकाङ्क्षितमात्रेणैव विमित्यात्मानं कृतार्थं चिन्तयसि।'

परिसर्प -

कुवलया० नाटिका के प्रथम अङ्क में राजा कुवलयावली से जब मिलता है जब बीज एक बार दृश्य हो गया परन्तु द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में राजा पुन: कुवलयावली की खोज करते हैं। राजा विदूषक से कहते हैं - नायक:-सखे। श्रीवत्स।

वरतनुमनिरीक्ष्य कन्यकां
कुसुमशरासविकासदेवताम्।
नयनयुगफलं न लब्धवान्
यदिह विलम्ब्य समागतोभवान् ।।२/२ ।।

अत: यहाँ परिसर्प नामक मुखाङ्ग है ।

विधूत –

कुवलया० नाटिका में कुवलयावली का अनुराग बीज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है । कामपीडासंतप्त कुवलयावली कहती है - कुवलयावली - (सप्रियासूयमिव) हला ! इदानीमपि मे न भवति लोचनमपरागम् ।

शम –

नर्म –

कुवलया० में कुवलयावली और चन्द्रलेखा की निम्न उक्ति में नर्म नामक प्रतिमुखाङ्ग है - कुवलयावली -(सलज्जासाध्वसं सखीमन्तर्धाय आत्मगतम्) अहो पुरजनोत्तमस्य समालापचातुरी (जनान्तिकम्) हला ! निवारयैनं प्रसङ्गान्तरेण । चन्द्रलेखा- भट्टारक ! एषेदं विज्ञापयति । तादृश्या समान्तरङ्गं चोरयन् महाराज एक: सदृशचोर इति । कुवलयावली- अपेहि दुर्ललिते ! अपेहि । अये अघटितं कथयसि ।

नर्मद्युति –

प्रगमन –

कुवलया० नाटिका में श्रीवत्स व राजा,कुवलयावली व चन्द्रलेखा के परस्पर उत्तरोत्तर , वचन अनुराग बीज को प्रकट करते हैं । अत: यहाँ प्रगमन है । प्रगमन की व्यंजना श्रीवत्स व राजा की इस बातचीत से हो रही है –

नायक: - सखे ! वस्तुगुणाविशेषो विवेकिनां सौहार्दमुत्पादयति ।

श्रीवत्स: - तवं कामं नीतो विवेक: पुराणामलसैकपिच्छल चिकुरबन्धेषु घोषकुलपुरन्ध्रीजनेषु चौर्यरताभिलाषेण ज्ञात एव ।

नायक: - सखे ! तवायं विमाशय:, यदियमस्मन्मनोरथ भूराभिरूप्येण न देवीजनस्य तुल्येति ।

श्रीवत्स : -तथैव यथा प्रियवयस्यो व्याख्यानं करोति ।

निरोधन -- कुवलया० में कुवलयावली समागम नायक का अभीष्ट फल है, किन्तु चकोरिका कुवलयावली की खोज की सूचना देकर उसमें अवरोध उत्पन्न कर देती है, अतः यहाँ निरोधन है।

पर्युपासन - x

पुष्प -- कुवलया० में नायक एवं कुवलयावली का अनुराग परस्पर दर्शनादि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है, इस पुष्प की सूचना विदूषक एवं राजा का निम्न कथोपकथन देता है - ' राजा (कुवलयावली को आते देखकर) नायकः- (सस्मितम्) सखे ! सेयं मया कथिता कुवलयावली नाम । न पुनर्वनदेवता । श्रीवत्सः - आश्चर्यमाश्चर्यम् । अपूर्वेदृशी सौभाग्यलक्ष्मीर्मानुषीषु । वयस्य ! स्थाने खलु ते दृष्टि सज्जते ।

उपन्यास -

कुवलया० में चन्द्रलेखा की निम्न उक्ति में उपन्यास है - चन्द्रलेखा - भट्टारक ! इतो मुद्रिकां प्रसादयं ।

वज्र- वर्णसंहार - x

गर्भ सन्धि --

कुवलया० नाटिका के तृतीय अङ्क में कुवलयावली के अभिसरण के उपाय से राजा को फलप्राप्ति की आशा हो जाती है किन्तु सत्यभामा के द्वारा उसमें पुनः विघ्न उपस्थित होता है अतः एक बार फलप्राप्ति के बाद पुनः विच्छेद होता है अतः एक बार फिर विघ्न के निवारण के उपाय तथा फलहेतु का अन्वेषण किया जाता है । इस अन्वेषण की व्यंजना श्रीवत्स की इस उक्ति से होती है--

श्रीवत्स : -- भो वयस्य ! अवन्तं भाविनमनुभवतैव परिहरणीयेति निवेदयामि नान्यदिति । तदेहि सत्यभामामनुसराव: ।

अभूताहरण -

मार्ग - कुवलया० नाटिका में गोपनीय ढङ्ग से होने वाले कुवलयावली समागम-की सूचना देकर श्रीवत्स कुवलयावली समागम का निश्चय राजा को करा देता है -
श्रीवत्स: - भो: इयं खलु विकसितारविन्दसुन्दरमकरन्द-निष्यन्दपरिषेकगुरुचक्रवाक-कुलपक्षविक्षेपकम्पमानकुवलयवलयामोदमेदुरमन्दमारुता विलासोद्यानदीर्घिका ।
भो इयं खलु चन्द्रलेखाद्वितीया कुवलयावली ।

रूप - कुवलया० नाटिका में यह विलरूप इन पंक्तियों से सूचित है -
श्रीवत्स: - भो । पश्चादस्या वेषेणैव सन्ताप: सर्वाकारमाख्यायते । नायक: - सखे सम्यगुपलक्षितं भवता ।

आकल्पैरलिसान्द्रचन्द्रघुटिका प्रायैस्तनोत्सर्पिणां
श्रीगन्धद्रुवलेपनेन कुचयोरत्यन्तमालेपनम् ।
लीलातामरसोदरेण करयोरुष्णोष्टव सेवाहर्णं
प्रियस्या: प्रकटीकरोति विषमां हा हन्त तापव्यथाम् ।।११ ।।

उदाहृति -

कुवलया० में श्रीवत्स का निम्न वाक्य सोत्कर्ष होने से उदाहरण का सूचक है -
श्रीवत्स : - (सहर्षम्) अयं योगमाया महोत्सवापदेशेन सकलोऽपि नगरीसीमन्तिनी-जनो देवीभि: समं प्रस्थापित: । तन्मत्र मन्त्रप्रभावं प्रियसखं निवेदयामि । वर्धतां प्रियवयस्य: ।

क्रम -

कुवलया० में राजा कुवलयावली के समागम की अभिलाषा ही कर रहा था कि कुवलयावली आ जाती है अत: क्रम है - श्रीवत्स: - भो: इयं खलु चन्द्रलेखाद्वितीया कुवलयावली ।
नायक : - (सानुरागसम्भ्रमम्) सखे । श्रीवत्स: ।

अथासौ दृशोरमृतवर्तिरतर्कणीया
अथानन्दसिद्धि घुटिका निरुपाधिसिद्धा ।
अथाकल्पनापरिणता नवकल्पवल्ली
अथानतरा वसति मोहनमूलविधा ।।८।।

संग्रह -- ×

अनुमान --

कुवलया० में कुवलयावली से प्रेम करने के कारण राजा प्रकृष्ट प्रेम से संवलित हो गया है और यह बात सत्यभामा को मालूम हो जाती है । अत: राजा सत्यभामा के द्वारा दिये गये कष्ट का अनुमान करता है जिसकी सूचना निम्न उक्ति में हुई है - नायक: - सखे ! महोत्सवप्रतिनिवृत्ता देवीप्रसङ्गमिममाकर्ण्य कियत् पीडिष्यति तव प्रियसखीमिति पर्याकुलोऽस्मि ।

अधिबल --

कुवलया० में सत्यभामा व चकोरिका कुवलयावली-अभिसरण की बात जानकर उसका अनुसरण करती हैं और राजा का अभिप्राय जान लेती हैं अत: अधिबल है । सत्यभामा की निम्न उक्ति से इसकी सूचना दी गई है - सत्यभामा-(सहसोपसृत्य) भो दारिके ! कन्यकाकामुकस्यास्य महाराजस्यानुनयं कृत्वा त्वं विनयं रक्ष ।

तोटक --

कुवलया० में कुवलयावली समागम में विघ्न उपस्थित करते हुये सत्यभामा क्रुद्ध वचन के द्वारा राजा की इष्टप्राप्ति को अनिश्चित बना देती है अत: यह तोटक है । सत्यभामा की इस उक्ति में तोटक है- सत्यभामा-महाराज स्यावसरमज्ञात्वा विस्रम्भभङ्गकारिण्यई चोचितकर्म न जानामि ।

उद्वेग -

कुवलया० में सत्यभामा कुवलयावली का अपकार करने वाली है अतः उसकी शत्रु है । जब वह कुवलयावली को पकड़कर ले जाती है तो कुवलयावली को भय होता है अतः यह उद्वेग है । कुवलयावली की इस उक्ति में इसी का सङ्केत है -
कुवलया० हला । सत्यभामया दृष्टचापलास्मि ।

सम्भ्रम - ×

आक्षेप- कुवलया० में श्रीवत्स की निम्न उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि कुवलयावली प्राप्ति सत्यभामा की प्रसन्नता पर ही आश्रित है । इसके द्वारा श्रीवत्स गर्भबीज को प्रकट कर देता है अतः यहाँ आक्षेप है - श्रीवत्सः- भो वयस्य । भवन्तं भाविनमनुभवतैव परिहरणीयेति निवेदयामि नान्यदिति । तदेहि सत्यभामामनुसराव: ।

निर्वहण सन्धि -

कुवलया० नाटिका में कुवलयावली रुक्मिणी, नारद इत्यादि के कार्यों (अर्थों) का जो मुखसन्धि आदि में इधर-उधर बिखरे पड़े थे, राजा के ही कार्य के लिये समाहार होता है इसकी सूचना नारद की इस उक्ति के द्वारा दी जाती है - नारदः - (जनान्तिकम्)

जानासि त्वमिदम् । भगवच्चरणारविन्द-
सेवासखीं वसुमतीं भगिनीं पुरा ते ।
सैवाधुना त्वमिव देवहिताय धात्रा
सम्प्रार्थिता कुवलयावलिरासीत् ।। १० ।।

सन्धि -

कुवलया० में नारद कुवलयावली के वास्तविक रूप के बारे में रुक्मिणी से बताते हैं । यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की गई है अतः सन्धि नामक निर्वहणाङ्ग है । नारद की यह उक्ति इसकी सूचक है - नारदः (जनान्तिकम्)

जानासि त्वमिदम् । .... कुवलयावलिरासीत् ।।१०।।

सन्धि -

कुवलया० में नारद कुवलयावली के वास्तविक रूप के बारे में रुक्मिणी से बताते हैं। यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की गई है अतः सन्धि नामक निर्वहणाङ्ग है। नारद की यह उक्ति इसको सूचक है - नारदः -(जनान्तिकम्)।

जानासि लक्ष्मि ।... .... कुवलयावलिरासीत् ।।१०।।

विबोध -

कुवलया० में जब दानव कुवलयावली को प्रासाद से उठा ले जाता है तो रुक्मिणी के कहने पर राजा नायिका रूप कार्य को फिर से खोज करने लगते हैं अतः निम्न उक्ति में नायिका रूप कार्य की फिर से खोज होने के कारण विबोध नामक निर्वहणाङ्ग है -

नायकः - भो प्रिये ! किमेतावतापि परिभ्रान्तासि। सेयं कन्यका तव समीप इति चेतसि समाधीयतामाश्वासः।

ग्रन्थन-निर्णय -

परिभाषा -

कुवलयावली में निम्न स्थल पर अन्योन्यवचन के कारण परिभाषण नामक निर्वहणाङ्ग है --

कुवलयावली - x x (प्रकाशम्) भो ! मुंच माम् एवं कृताविनया देव्या मुखं प्रेक्षितुं न शक्नोमि।

x x x

रुक्मिणी - (लज्जमानां कुवलयावली मालिङ्गय) भगिनिके ! त्वया द्वितीया अज्ञातशरीरया लोकवादाद् विमुक्तास्मि।

प्रसाद -

आनन्द -

कुवलया० में रुक्मिणी तथा नारद की अनुमति मिलने पर राजा-यदादि-

शति भगवान् ।` (इति कुवलयावल्याः करं गृह्णाति) इतना कहकर ईप्सित कुवलयावली के पाणि का ग्रहण करता है ।

समय -

कृति -

कुवलया० में कुवलयावली के प्राप्त हो जाने पर राजा को खुश करने के लिये रुक्मिणी तथा रुक्मिणी को खुश करने के लिये राजा परस्पर वचनों के द्वारा उपशमन करते हैं अतः यहाँ कृति है -

रुक्मिणी- आर्यपुत्र । यथैव तव माननीया तथैयं त्वयास्मन्निर्विशेषं द्रष्टव्या ।
(इति नायिकाहस्तं नायकस्य हस्ते समर्पयति ।)

नायक :- हन्त समेमेष निर्मिते कुवलयदृशा कराम्बुजे प्रिययोः ।
घनसारगन्धसारौ मिलिताविव तापमपनयतः ।। २० ।।

भाषण -

कुवलया० में नायक की यह उक्ति उसके कार्य, अर्थ, मान आदि के लाभ को द्योतक है -

नायक :-

(सप्रश्रयं नारदं प्रणम्य)भगवन् । त्वत्प्रसादेन देवीप्रसादेन च कति कति वा श्रेयांसि न मामनुबध्नन्ति । (सहर्षोत्कर्षम्)

रम्यावागिव सुप्रसादमधुरा देवीमणी रुक्मिणी
सन्मानार्थे इवात्युदारगरिमा स त्वं परिद्योतसे ।
कन्येयं करवल्लरीव विलसत्यन्योन्यमैत्रीक्रमो
युष्माकं भुवि माइचन् सहृदयानन्दयन्नेधताम् ।।२२।।

उपसंहार -
काव्यसंहार -

कुवलयावली नाटिका में - नारदः -` किं ते भूयः प्रियमुपकरोमि । इस वाक्य के द्वारा नाटिका के काव्यार्थ का उपसंहार होने से यहाँ काव्यसंहार नामक निर्वहणाङ्ग है ।

प्रशस्ति -

कुवलया० नाटिका में निम्न श्लोक में शुभ (कल्याण) की आशंसा होने से प्रशस्ति नामक निर्वहणाङ्ग है -

नायक :-

कल्याणमस्तु जगतां सततं प्रजानां
संवर्धितो भवतु वैदिक एव मार्गः ।
सारस्वतानि सरसानि कवीश्वराणां
मात्सर्यदिग्धहृदया न कलङ्कयन्तु ।। २४ ।।

अर्थोपक्षेपक -

प्रवेशक -

कुवलयावली नाटिका को प्रवेशक में वे सभी लक्षण घटित हुये हैं जो कि दशरूपककार ने बताये हैं । इस नाटिका के प्रवेशक में (विष्कम्भक की तरह) अतीत की सूचना मिलती है । घनसारिका के द्वारा कुवलयावली का वृत्तान्त पूछे जाने पर कस्तूरिका उसके अतीत वृत्तान्त के बारे में बताती है -

घनसारिका - वुज्जइ । अइ कुवलयआवलीए को वुत्तो ।

कस्तूरिका - सा खु मेहेसिणा पुणो वि तवोवणं णीदेति पवादं कदुअ अड्डनारिस-जणस्स दुग्गम्मिम सच्छन्दपासा - असुरंगाधरम्मिम ठाविदा कुलक्कमागदेण विस्सासिणा माहवउलपरिअणेण सदो रक्खिज्जइ ।

देवी के पूर्व स्वभाव की सूचना भी प्रवेशक में दी गई है । पहले देवी परिजनों इत्यादि पर क्रोध नहीं करतीथीं किन्तु सत्यभामा के द्वारा कुवलयावली का वृत्तान्त सुनने के समय से ही वे अकारण परिजनों पर क्रोध करने लगी है ।

इसी प्रकार कुवलयावली के प्रवेशक में घनसारिका की निम्न उक्ति द्वारा भावी सूचना दी गई है - घनसारिका" हला । जइ मेस्सी अणुमण्णेइ ता कुवलआव-

लोए मणोरहो फलिस्सदि त्ति णं तुमं जाणासि । हला ! यदि महर्षिरनुमन्यते तर्हि कुवलयावल्या मनोरथः फलिष्यतीति ननु त्वं जानासि ।)
कस्तूरिका - को एत्थ संसओ । (कोऽत्र संशयः)

धनसारिका की इस उक्ति से यह भावी सूचना मिलती है कि महर्षि नारद की अनुमति से ही देवी रुक्मिणी कुवलयावली को राजा के हाथ में सौंप देंगी तथा कुवलयावली का मनोरथ फलित हो जायगा । इस नाटिका के चतुर्थ अङ्क के अन्त में देवी रुक्मिणी महर्षि नारद की ही अनुमति से कुवलयावली को राजा के हाथ में सौंप देती हैं और उसका मनोरथ फलित हो जाता है । इस भावी सूचना की सुदृढ़ता के लिये यह भी कह दिया गया है कि इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

इस नाटिका के प्रवेशक में प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है । इसमें प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ । कस्तूरिका तथा धनसारिका नामक दो नीच स्त्री पात्रों के द्वारा शायद (मागधी नामक) अशिष्ट प्राकृत भाषा का प्रयोग कराया गया है ।

प्रवेशक की योजना हमेशा दो अङ्कों के मध्य होनी चाहिये । इस नाटिका में भी तृतीय अङ्क के बाद चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है तथा इसमें शेष अर्थों (कथांशों) की भी सूचना दी गई है ।

चूलिका --

कुवलयावली नाटिका के प्रथम अङ्क में कुवलयावली चन्द्रलेखा के साथ विलासोद्यान में जाती है और वहाँ पर राजा के साथ चन्द्रलेखा का वार्तालाप होता है । इसी बीच नेपथ्य से आवाज आती है - (नेपथ्ये) हला ! चन्द्रलेखे ! कियच्चिरं कुवलयावली वनसंचारेणायासितं करोषीति देवी कुप्यति । तदानयैताम् ।

इसके द्वारा कुवलयावली तथा चन्द्रलेखा के विलासोद्यान से चले जाने की सूचना मिलती है । अतः यहाँ पर चूलिका है ।

इस नाटिका के द्वितीय अङ्क में चन्द्रलेखा तथा कुवलयावली मुद्रिका के अन्वेषण के हेतु पुनः विलासोद्यान में आती हैं। मुद्रिका राजा के पास रहती है। वह स्वतः कुवलयावली की उँगली में मुद्रिका पहनाने को कहता है। जैसे ही राजा कुवलयावली को उँगली को पकड़ कर उसका मुख देखता है, उसी समय नेपथ्य से आवाज़ आती है - (नेपथ्ये) हला चन्द्रलेखे। कियच्चिरं नव-वस्तुदर्शनकुतूहलेन कुवलयावलीं विनोदयसि। कियच्चिरं प्रियप्रसाधना देवी अभ्यन्तरं गता। अन्विष्यन्त्यपि युवाम् अहं न पश्यामि।

इसके बाद ही चकोरिका का प्रवेश होता है। इस प्रकार चकोरिका के प्रवेश की सूचना मिलने से यहाँ पर चूलिका है।

इसी प्रकार नाटिका के चतुर्थ अङ्क में भी रुक्मिणी के संरक्षण में प्रासाद में रहती हुई कुवलयावली को दानव उठा ले जाता है तब रुक्मिणी कुवलयावली के पुनः वापस पाने के लिये राजा को सहायता माँगती है। राजा उसे आश्वासन देता है। इसी के बाद नेपथ्य से आवाज आती है - (नेपथ्ये) भो भो द्वारवतीवासिभिर्वीरम्मन्यैः पुरुषपलालैः श्रूयतामयं कालयवनसोदरस्य मे वीरस्यालापः --

अम्भोजिनीमिव मदावलदन्तलग्नां
मद्बाहुपंजरगतां मदिरायताक्षीम्।
यस्त्रातुमिच्छति मदेन यदोः प्रसूतौ
सोऽयं समेतु यदि वा सकलाः समेताः ।। ४

यहाँ पर नेपथ्य के द्वारा दानव की दानवी - शक्ति की सूचना मिलती है अतः यहाँ पर चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है।

चन्द्रकला नाटिका --

नान्दी --

चन्द्रकला नाटिका के निम्न नान्दी श्लोक में गिरिजा की स्तुति की गई है --

जीयासु: शफरायमाणशशभृल्लेखा: स्खलत्कैरव-
व्रातोद्भ्रान्तमधुव्रतव्रजमिषादुत्क्षिप्तनीलांशुका: ।।
विन्दन्त्यो गिरिजाकटाक्षपतनादादित्यजासङ्गमं
नृत्यद्भर्गकिरीटकोटिचपला: स्वर्गापगावीचय: ।। १ ।।

विद्वानों के अनुसार ८, १२, १६, २४ पंक्तियों की नान्दी होती है तो इस नाटिका में केवल ४ पंक्तियों की नान्दी है।

सूत्रधार --

चन्द्रकला नाटिका में सूत्रधार के आर्ये । अयमसावित: प्राप्त एव क्षोणी-भुजस्त्वस्र्यदेवस्य सुबुद्धिनामा प्रियामात्य:" इन शब्दों से सुबुद्धि के प्रवेश की सूचना हो जाती है ।

प्रस्तावना --

चन्द्रकला नाटिका में सुबुद्धि सूत्रधार के साधु । शैलूष साधु इत्यादि वचनों को कहता हुआ प्रवेश करता है, इसलिये यहाँ प्रस्तावना का कथोद्घात नामक भेद है ।

अर्थप्रकृति --

बीज --

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला प्राप्ति रूप कार्य का हेतु विष्कम्भक में उपनिबद्ध चिरादन्धिगतमित्यादि से लेकर अन्त:पुरचारिणीमिमामवलोक्य स्वयमेव परिग्रहीष्यति स्वामीति विचिन्त्य मम वंशजेय सखीपदे स्थापयित्वा परिपालनी-येति सादरं समर्पिता देव्या:" इत्यादि भाग में कहा गया सुबुद्धि का व्यापार

बीज है ।

बिन्दु- पताका -

प्रकरी -

चन्द्रकला नाटिका में दोनों बन्दियों द्वारा वर्णित विक्रमाभरण के अनुचर द्वारा शबरराज की मृत्यु प्रकरी है ।

चन्द्रकला नाटिका में चित्ररथदेव और चन्द्रकला का मिलन प्रधान साध्य होने से यहाँ कार्य है ।

अवस्था -

आरम्भ -

चन्द्रकला नाटिका में "यस्तु भूमिपतिर्भूमौ पाणिमस्या ग्रहीष्यति.... . इत्यादि से सुबुद्धि के द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है ।

प्रयत्न -

राजा चित्ररथदेव से मिलन का उपाय चन्द्रकला द्वारा पुष्पचयन प्रयत्न है ।

प्राप्त्याशा -

चन्द्रकला नाटिका के तृतीय अङ्क में चन्द्रकला को गोपनीय ढंग से केलिवन में उपस्थित करके प्रियवयस्य का सङ्गम आदि उपाय होने पर वसन्तलेखा के रूप में विघ्न की आशङ्का तयदीदानीम् एनं वृत्तान्तं देवी न जानाति तत्सफलो भविष्यति में सफल : प्रयास:" विदूषक के इस वचन से दिखलाई गई है, इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है ।

नियताप्ति -

फलागम - चन्द्राकला नाटिका में राजा चित्ररथ देव को चन्द्रकला का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्वप्राप्ति नाटिका का फलागम है । इसलिये यह कार्य की फलागम अवस्था है ।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग –

मुख सन्धि –

चन्द्रकला नाटिका का बीज चित्ररथदेव के द्वारा चन्द्रकला की प्राप्ति का कारणभूत दिव्यवाणी है जो राजा के अनुराग को बढ़ाने में सहायक होती है । इस प्रकार प्रथम अङ्क में अनुराग बीज का प्रक्षेप है अत: मुखसन्धि है ।

मुखाङ्ग –

उपक्षेप –

चन्द्रकला नाटिका में मंच पर प्रवेश करने के पहले ही सबुद्धि अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है । सुबुद्धि का कार्य चित्ररथदेव तथा चन्द्रकला को मिला देना है तथा वह इनके मिलाप के लिये व्यापार में संलग्न है, जिसमें उसके हृदय के स्वभाव की अनुकूलता भी प्राप्त है । इस बीज रूप व्यापार की सूचना सुबुद्धि ने निम्न नेपथ्योक्ति के द्वारा दी है –

'चिरादधिगतं वस्तु रम्यमप्यनधारयत् ।

पुर: प्रतिनवं वीक्ष्य मनस्तदनुधावति । ५ ।।

परिकर –

चन्द्र० नाटिका में सुबुद्धि अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है । इसकी सूचना सबुद्धि की इन उक्तियों से होती है – 'अनेन खलु चन्द्रकलायां भर्तुरनुरागबन्ध: स्यान्नवेति चिन्तयतो मम दत्तमेव प्रतिवचनं भवता । तथा ह्येषा कर्णाटविजयार्थं प्रस्थितेन विक्रमाभरणाख्येन सेनापतिना मध्येमार्गं कुतोऽप्यधिगत्य निरुपमसौन्दर्यलक्ष्मीरिव विग्रहवतीति राजवंश्येयमिति कथयित्वा मत्परितोषकाङ्क्षिणा मदन्तिकं प्रहिता ।

परिन्यास -

चन्द्र० नाटिका में सुबुद्धि अपने व्यापार तथा दिव्य वाणी दोनों पर यह पूर्ण विश्वास है कि उसे सिद्धि अवश्य होगी, उसका बीज अवश्य निष्पन्न होगा। इसकी सूचना वह निम्न पद्य के द्वारा देता है -

यस्तु भूमिपतिर्भूमौ पाणिमस्या ग्रहीष्यति।
लक्ष्मीः स्वयमुपागत्य वरमस्मै प्रदास्यति ।।६७।।

विलोभन -

चन्द्रकला में राजा की निम्न उक्ति में विलोभन है -

'सा दृष्टिर्नवनीरनीरजमयी वृष्टिस्तदप्याननं
हेलामोहनमन्त्रयन्त्र जनिताकृष्टिर्जगच्चेतसः।
सा भ्रूवल्लिरनङ्गशाङ्गधनुषो यष्टिस्तथास्यास्तनु
लावण्यामृतपूरपूरणमयी सृष्टिः परा वेधसः ।।७।।

युक्ति -

चन्द्र० नाटिका की निम्न पंक्तियों में युक्ति की व्यंजना की गई है -
'अमानुषीं गिरामाकर्ण्य तत्परिणायेन भर्तुरुपचयं महान्तं चिन्तयता पाड्यराजदुहितृ-मेहादेव्या भयेन स्वयं महाराजेनैनां परिणाययितुमशक्नुवतान्तःपुरचारिणीमिमाव-लोक्य स्वयमेव परिगृहीष्यति स्वामीति विचिन्त्य मम वंशजेय सखीपदे स्थापयित्वा परिपालनीयेति सादरं समर्पिता देव्याः।'

प्राप्ति -

चन्द्र० नाटिका में राजा को देखकर चन्द्रकला आश्चर्य और लज्जा से सिर नीचे किये हुये स्तम्भित (शिथिल) हो जाती है। फिर हर्ष के साथ स्वयं कहती है -'चन्द्रकला-' आश्चर्यं, कथं फलितो पि मे अमनोवृत्तिसम्भावनीयो मनोरथद्रुमः। यहाँ चन्द्रकला को सुख की प्राप्ति हुई अतः यहाँ प्राप्ति नामक

मुखाङ्ग है ।

समाधान –

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला चित्ररथदेव को देखने की इच्छा से माधवी-लता के पुष्पों को तोड़ने जाती है । उसकी यह इच्छा बीजागम के रूप में इन पंक्तियों से स्पष्ट है – सुनन्दना – सखि, अमुष्या नवमालिकाया मया उच्चीयन्ताम् । (इति राजालङ्कृतां माधवी लतामङ्गुल्या निर्दिशति)
चन्द्रकला – यद्रोचते प्रियसख्यै । (इति गच्छति) (राजानमवलोक्य सचकितवीन्द्रं मुखं नमयन्ती स्तम्भमभिनीय सानन्दं स्वगतम्) आश्चर्यं, कथं फलितोऽपि मे अमनोवृत्ति सम्भावनीयो मनोरथद्रुम: ।

विधान –

चन्द्रकला नाटिका में राजा चित्ररथदेव चन्द्रकला को लीलो उपवन में देखने पर सुख तथा दु:ख दोनों का अनुभव करते हैं – राजा –

अब्जानन्दमहर्निशं विकसितं सौवर्णमग्राश्रितं
रम्भास्तम्भयुगं ततश्च पुलिनं लावण्यवारिप्लुतम् ।
तस्मिन्नुन्मदकुम्भिकुम्भयुगलं रत्नैकलेखाश्रितं
राजत्यत्र पुन: कलङ्करहित: शीतद्युतेर्मण्डल: ।। ३१।३५

परिभाव –

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला की निम्नउक्ति में परिभाव या परिभावना नामक मुखाङ्ग है – चन्द्रकला आश्चर्यं कथं फलितोऽपि मे अमनोवृत्तिसम्भावनीयो मनोरथद्रुम: ।

उद्भेद –

चन्द्रकला नाटिका में राजा और विदूषक दोनों उपवन में टहलते हुये कभी अपनी सखी सुनन्दना के साथ आगत चन्द्रकला को लताकुंज में छिपकर देखते हैं । जैसे ही चन्द्रकला माधवीलता के पुष्प को तोड़ने का उपक्रम करती है, राजा स्वयं को उन पुष्पों को तोड़ने के लिये सादर प्रकट कर देता है ।

करण -

चन्द्रकला नाटिका में राजा की निम्न उक्ति में करण नामक मुखाङ्ग है - राजा- सखे भद्रम् । (इति माधवी लताम वलोक्य)

आसादयति न यावन्माधवि भवतीनिवैव पुन: ।
निर्वृत्तिमेति न चेत: चित्ररथस्मापतेस्तावत् ।। १६ ।

भेद -

प्रतिमुख सन्धि -

चन्द्रकला नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में चित्ररथ देव व चन्द्रकला के (भावी) समागम के हेतुरूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है उसे प्रथम के अन्त में (दूसरे अङ्क में) सुनन्दना व विदूषक जान जाते हैं, इसलिये वह कुछ कुछ प्रगट हो जाता है तथा मुद्रिकावृत्तान्त के कारण वसन्तलेखा को- द्वारा कुछ कुछ गृहीत हो जाता है । इस प्रकार बीज के अङ्कुर का दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है ।

प्रतिमुखाङ्ग -

विलास -

चन्द्रकला नाटिका में महाराज चित्ररथदेव चन्द्रकला के अङ्गलावण्य और सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और चन्द्रकला भी महाराज के सौन्दर्य को देखकर उन पर आसक्त हो जाने के कारण लज्जावश वहीं ठिठक जाती है । इस प्रकार चित्ररथदेव का चन्द्रकला के प्रति और चन्द्रकला का चित्ररथदेव के प्रति अनुराग होने से यहाँ विलास है । इसकी व्यंजना चन्द्रकला की निम्न उक्ति से होती है - चन्द्रकला - (दीर्घं निश्वस्य । स्वगतम्) हिअअ हिअअ , तादिस दुल्लभ जण विविदणािबंधस्स दे समुवदा इदसी अवस्था । (~~हृदय हृदय, तादृशदुर्लभार्थ-~~

(हृदय हृदय, तादृशदुर्लभार्थविहितनिर्बन्धस्य तव समुचितेदृश्यवस्था) ।

परिसर्प -

चन्द्रकला नाटिका में राजा यथानिर्दिष्ट समय रात्रि में चन्द्रकला से मिलने के लिये पहुँचता है, वहाँ चन्द्रकला को न देखकर वह कोयल, आम्रवृक्ष, पक्षी आदि से उसका पता पूछते हुये वह प्रलाप करने लगते हैं ।

विधूत -

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला का अनुराग बीज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है । कामपीडा संतप्त चन्द्रकला कहती है -

'यदि बद्धो निबन्ध स्त्वया तादृशे दुर्लभेऽर्थे ।
तत्किं हृदय खिद्यसे मुहुरत्र अविचारितस्य फलम् ।।

शम -

नर्म -

चन्द्रकला नाटिका में सुनन्दना और चन्द्रकला की निम्न उक्ति में नर्म नामक प्रतिमुखाङ्ग है -'सुनन्दना (जनान्तिकम्) सखि, कथं त्वया दर्शनमात्रेणापि एवं वशीकृतो भर्ता ।' चन्द्रकला-'सखि, किमिति त्वया वितथपरिहासेन अनुपहस्ये ।'

नर्मद्युति -

चन्द्रकला नाटिका की निम्न पंक्तियों में धृति के द्वारा अनुराग बीज उद्घाटित हो रहा है, यहाँ परिहास से उत्पन्न द्युति (नर्मद्युति) पाई जाती है - चन्द्रकला - सखि, आगच्छ, आगच्छ । हल इदानीं गच्छाव: । देवी खलु आवामनुसरिष्यति । (इति गच्छन्ती स्तम्भमभिनीय) आश्चर्यं, कुतो गच्छन्त्या मम चरणौ न गच्छत: । सुनन्दना (जनान्तिकम्) हला, यत: चिरं न गच्छति । चन्द्रकला (सस्मितम्) सखि, सर्वथा न विद्मसि परिहसित: ।

प्रगमन -

निरोधन -

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला समागम राजा का अभीष्ट हित है, किन्तु वासवदत्ता के प्रवेश की सूचना देकर माधविका उसमें अवरोध उत्पन्न कर देती है। अतः यहाँ निरोधन है जिसकी व्यंजना राजा की निम्न उक्ति से हो रही है - राजा- (सनिर्वेदं दीर्घं निःश्वस्य)

आयन्तीमधिगत्य मत्परिसरं देवीं परित्यज्य मां
निर्गच्छन्त्यपि संभ्रमेण सुदती किंचित् परावृत्य सा।
दृष्टिं यच्छति बाष्पकलुषामुत्थाय तावन्मया
तस्यास्तन्मुखमन्नमथ्यसहसा किं नाम नो चुम्बितम्॥३।१५॥

पर्युपासन -

चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा का अनुनय करने के कारण राजा की निम्नउक्ति में पर्युपासन है - राजा (ससम्भ्रममुत्थायोपसृत्य करे धृत्वा)

अभिज्ञा नैव त्वं शशिमुखि विधातुं मयि रुषं
विना च त्वां काचिन्नहि मदनुरागस्यविषय:।
तथापि वामाङ्गिण स्फुरदधरबिम्बं सपदि मा-
मनामन्त्र्यैव त्वं व्रजसि कथमित्थं कथय मे॥२।१८॥

पुष्प -

चन्द्रकला नाटिका में चित्ररथदेव व चन्द्रकला का अनुराग परस्पर दर्शन आदि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है। इस पुष्प की सूचना विदूषक व वत्सराज का निम्न कथोपकथन देता है - (चन्द्रकला के हाथ से पुष्प और सुकोमल पल्लव पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं) राजा - (ससम्भ्रमम्) सर्वथा अनुग्रहणीयो महाप्रसाद: प्रियतमाया:। (इति भूमौ पतितान् कुसुमपल्लवानाददाति)। विदूषक:-

भो वयस्य, न खलु एष : पल्लव: । मूर्तिमान खलु ते प्रियतमाया अनुराग: । तदिदानीं हृदये हृदयाणेदम् । राजा-सत्यमाह प्रियवस्य: । (इति हृदये विदधाति) ।

उपन्यास --

चन्द्रकला नाटिका में सुनन्दना की निम्न उक्ति में उपन्यास है - सुनन्दना-(विलोक्य सानन्दम्) दिष्ट्यावर्धे । भी: इयं खलु स्वभावत: नवमालिकाकुसुमपरिपेलवा त्वत् कृतविरहवेदनानि:सहा जन्मत: प्रभृति अननुभूत दु:खसागरनिमग्ना तपस्विनी मे प्रियसखी चन्द्रकला प्रभवति न इदानीम् आत्मनो ङ्गेष्ठ । तत्करे गृहीत्वा उत्थापयतु तावदेनाम् ।

वज्र --

चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा राजा और चन्द्रकला दोनों के प्रेम को जानकर क्रुद्ध होती हुई निम्न कटु वचनों को राजा के प्रति रतिकला से कहती है-देवी- (दीर्घमुच्छ्वस्य) अहो सर्वथा अविश्वसनीया एव पुरुषा: । सखि रतिकले ! त्वरितमेहि । क्षणमपि एतस्याति दुर्विलसितस्यान्तिके स्थातुं न युज्यते ।

वर्णसंहार -- ⁄

गर्भ सन्धि --

चन्द्रकला नाटिका के तृतीय अङ्क में गर्भसन्धि है क्योंकि यहां गोपनीय ढङ्ग से केलिवन में उपस्थित करने के द्वारा कुछ समय के लिये चन्द्रकला प्राप्ति सम्भव हुई है लेकिन वसन्तलेखा के आने और चन्द्रकला तथा विदूषक को पकड़ ले जाने से उसमें विघ्न पड़ा है और राजा देवी के प्रसादन द्वारा फिर अपाय-निवारण के उपाय का अन्वेषण करता है ।

गर्भाङ्ग --

अभूताहरण -

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला को गोपनीय ढङ्ग से केलिवन में उप-

स्थित करके राजा का सङ्गम उसके साथ कराया जाता है , इस क्रम की सूचना विदूषक तथा माधविका के कथोपकथन द्वारा दी गई है ।

मार्ग --

चन्द्रकला नाटिका में गोपनीय ढङ्ग से होने वाले चन्द्रकला-समागम की सूचना देकर, विदूषक चन्द्रकासमागम का निश्चय राजा को करा देता है । इस प्रकार तत्वार्थ निवेदन के कारण निम्न पंक्तियों में मार्ग नामक गर्भाङ्ग है --
विदूषक: - यस्य तवाहम् अतिशयितसकलमन्त्रिबुद्धिविभव: प्रियवयस्य: तस्य कथं मदनवेदनाया अवकाश: । राजा - कथय, कथं नाम ? विदूषक: - एषा खलु इदानीमेव अदूरस्थितं मणिमण्डपम् आनीता मयासह सुनन्दनया । यदिदानीमतर्कित तमेघमण्डलीव कुतो प्यागत्य देवी अन्तराया न भवति तदा उपलब्धव्या त्वया चन्द्रकला । < < < राजा - सखे, केन पुनरुपायेन इत आनीता प्रेयसी ।
विदूषक- एवमिव । (एवं ।) (इति कर्णे कथयति) ।

रूप -

चन्द्रकला नाटिका में राजा की निम्न उक्ति में चन्द्रकला की प्रतीक्षा करते समय तर्कवितर्कमय वाक्यों का प्रयोग हुआ है -
राजा - (विचिन्त्य) अये, कथं त्वमपि नामैवं प्रार्थ्यमानोऽपि निशितशरनिपातेन कृन्तसि मे हृदयम् ? शृणु तावत् -

> शरास्ते दुर्वार: स्मरपुरहरस्यान्तभिदुर:
> फलं किं नामासावधिकमधिगन्तुं तुदति माम् ।।
>
> (विचिन्त्य)
>
> अलं वा दैन्येन त्वयि यदखिलस्यापि जगतो
> मनो मथ्नासीति प्रथितिरिह ते मन्मथ इति ।। ५

उदाहृति -

चन्द्रकला नाटिका में विदूषक चन्द्रकला प्राप्ति की बात को राजा का प्रिय सन्देश बताता है, अतः निम्न वाक्य सोत्कर्ष होने से उदाहरण का सूचक है-
विदूषक :-
तदिदानीमेतस्य प्रियं निवेद्य सकलानामपि मन्त्रिवराणां शिरसि चरणं दास्यामि ।

क्रम -

चन्द्रकला नाटिका में निम्न पंक्तियों में चित्ररथ चन्द्रकला के समागम को अभिलाषा ही कर रहा था कि चन्द्रकला आ जाती है अतः क्रम है । राजा-(विलोक्य) सहर्षम्) अये, अस्याङ्ः खलु -

बिम्बस्यासुकृतेन दन्तवसनं मेरुमकुम्भद्वय-
स्यापुण्येन पयोधरौ कुवलयास्या कर्मणा चक्षुषी ।
इन्दोर्भाग्यविपर्ययेण वदनं कुन्दावलेरेनसा
दन्तालो कदलीतरोश्च दुरितेनोरुद्वयं निर्मितम् ।। ६।।

संग्रह -

चन्द्रकला नाटिका में रानी वसन्ततिलका राजा चित्ररथ के द्वारा लम्बगंध को मार डालने का समाचार सुनकर विदूषक को साम व दान से संग्रहीत करती हैं अतः संग्रह है - देवी-गृहणातु प्रियवयस्यः । (इति कण्ठतो हारं विदूषकाय प्रयच्छति) ।

अनुमा- या अनुमान -

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला से प्रेम करने से राजा प्रकृष्ट प्रेम से स्खलित हो गया है, इसलिये इस बात को जानकर वसन्ततिलका कुपित होगी , इस प्रकार प्रकृष्ट प्रेमस्खलन हेतु के द्वारा वसन्ततिलका के क्रोध का तर्क अनुमान है जिसकी

सूचना निम्न उक्ति में हुई है -- राजा   अलमकारणमनारर्त देवीप्रकोपभीतिकातरस्य ममैवमारम्भः । तथाह्येवं सति देवी कुप्यति ।

अधिबल --

चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा, माधविका व रतिकला चन्द्रकलाभिसरण की बात जान कर छिपकर चन्द्रकला का अनुसरण करती हैं और राजा का अभिप्राय जान लेती है । अतः अधिबल है । रतिकला की निम्न उक्ति से इसकी सूचना दी गई है - रतिकला- प्रच्छन्न एतम् अनुगच्छन्त्यः सर्वं जानीमः ।

तोटक --

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला समागम में विघ्न उपस्थित करते हुये वसन्तलेखा, क्रुद्ध वचन के द्वारा चित्ररथ की इष्टप्राप्ति को अनिश्चित बना देती है, अतः यह तोटक है । वसन्तलेखा की इस उक्ति में तोटक है - देवी । सखि रतिकले । चेटि माधविके । एष खलु दुष्टब्राह्मणः इयं गर्भदासी सुनन्दना है अपि एके नैव लतापाशेन एकीकृत्य बद्ध्वा गृह्णाताम् । इयं च दुष्टकन्यका आत्मन एवोत्तरीयेण हस्ते सुदृढम् आपीड्यताम् ।

उद्वेग --

चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा चन्द्रकला का अपकार करने वाली है, अतः उसकी शत्रु है । जब वह चन्द्रकला को पकड़कर ले जाती है तो चन्द्रकला को भय होता है अतः यह उद्वेग है । चन्द्रकला की इस उक्ति में इसी का सङ्केत है - चन्द्रकला-(सभयोत्कम्पम्) अहो, अहो । किमिदानीमापतितम् ।

सम्भ्रम --

आक्षेप -- चन्द्रकला नाटिका में राजा की निम्न उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि चन्द्रकला प्राप्ति वसन्तलेखा की प्रसन्नता पर ही आश्रित है । इसके द्वारा राजा गर्भबीज को प्रकट कर देता है अतः यहाँ आक्षेप है - राजा (विचिन्त्य) तदलमिदानीमत्र स्थित्वा । पुरमेव प्रविश्योपायं चिन्तयामि ।

राजा - तत्किमधुना विधेयम् ? विदूषक: - भो वयस्य ! तदिदानीं पुरत: देवीमेव प्रसादयाम: ।

निर्वहण सन्धि -

चन्द्रकला नाटिका में चन्द्रकला, दोनों वन्दियों आदि के कार्यों (अर्थों) का जो मुख सन्धि आदि में इधर उधर छिटके पड़े थे, चित्ररथ के ही कार्य के लिये समाहार होता है । इसकी सूचना बन्दीगण को इस उक्ति के द्वारा दी जाती है --

वन्दिनौ (विलोक्य सानन्दं सास्रम) वत्से, सान्त:पुरस्य पाण्ड्यस्वरस्य भाग्योदयेन समागतासि नौ नयनगोचरम् ।

निर्वहणाङ्ग-सन्धि -

चन्द्रकला नाटिका में दोनों बन्दी चन्द्रकला को पहचान लेते हैं । यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की गई है अत: सन्धि है । दोनों बन्दी की यह उक्ति इसकी सूचक है - वन्दिनौ (विलोक्य सानन्दम् सास्रम्) वत्से,[१] सान्त:-पुरस्य पाण्ड्यस्वरस्य भाग्योदयेन समागतासि नौ नयनगोचरम् ।

विबोध -

चन्द्रकला नाटिका के चतुर्थ अङ्क में चन्द्रकला रूप कार्य की फिर से खोज होने के कारण विबोध नामक निर्वहणाङ्ग है-देवी-आर्य पुत्र ! या किल एतेन समर्पिता सैवेषा । पृच्छ तावत् वन्दिनं किं नामधेया सा मे भगिनीति ।

राजा-वन्दिन् ! किं नामधेया सा पाण्ड्यस्वरस्य दुहिता ?

बन्दी - देव ! चन्द्रकलेति । राजा- (निशम्य सानन्दं स्वगतम्) मम प्रियतमा चन्द्रकलैव ।

ग्रथन - x

निर्णय - चन्द्रकला में सुबुद्धि निम्न उक्ति के द्वारा कार्य से सम्बद्ध अपने अनुभवों को, या कार्यसम्बद्ध अपने कार्यों को राजा से वर्णित करता है अत: यहाँ निर्णय

है--अमात्य : -- 'देव ! कथं नाम स्वामिनोऽपि सम्मुखे वितथालाप: । तदवधार-यतु देव: । इयं तु गुणाधिकारलक्षणैरनन्यापेत्याकलस्य तत्काले तु - यस्तु भूमिपति-र्भूमौ पाणिमस्या ग्रहीष्यति ।

लक्ष्मी : स्वयमुपेत्य वरमस्मै प्रदास्यति ।।

इत्यमानुषं गिरामाकर्ण्य स्वामिने देवा परिणायनीयेत्याकाङ्क्ष्यमाणेन देवी प्रकोपभीरुणा च स्वयमशनुवता च मया ममर्वशजेय सखीपदे स्थापनीयेयति देव्या: समर्पिता, तथा चान्त: पुरचारिणी-मिमामवलोक्य स्वयमेव परिणेष्यति महाराज इति ।'

परिभाषा -

प्रसाद -

आनन्द - चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा की अनुमति मिलने पर राजा अहोमहा-प्रसादो देव्या: इतनाकहकर इप्सित चन्द्रकला के पाणि का ग्रहण करता है ।

समय -- चन्द्रकला नाटिका में वसन्तलेखा चन्द्रकला का गाढालिङ्गन करके उससे कहती है - देवी-(उत्थाय निविडं परिष्वज्य) समाश्वसिहि भगिनि समाश्व-सिहि ।

कृति -- चन्द्रकला में चन्द्रकला के प्राप्त हो जाने पर राजा को खुश करने के लिये वसन्तलेखा तथा वसन्तलेखा को खुश करने के लिये राजा परस्पर वचनों के द्वारा उपशमन करते हैं अत: यहाँ कृति है - देवी- (स्वगतम्) अलमिदानीं मम पुनरपि तथा कठोरेण व्यवसितेन । स्वयमेव मया आर्यपुत्राय समर्पयित्वा रक्षा । एवं खलु आत्मनो महत्व सम्पादनं मातापित्रोरपि काङ्क्षितसाधनम् । तथा कदर्थिताया भगिनया आश्वासनं, भर्तुर्जीवितसंशयात्परिरक्षणं , परमलक्ष्मीसम्पादनं च भवन्ति । (इति चन्द्रकलां करे इदानीं गृहाण एनाम । इति राज्ञे समर्पयति) । राजा- (सह-र्षम्) अहोमहाप्रसादो देव्या: । (इति चन्द्रकलां करे गृहीत्वा स्पर्श नाटयति) ।

भाषण --

चन्द्रकला नाटिका में चित्ररथेन की यह उक्ति उसके काम, अर्थ, मान आदि के लाभ की द्योतक है - राजा- भगवति

देवीयमेवं गदिता प्रसादमासादिता प्राणसमा प्रिया मे ।
त्वमिन्दिरे मन्दिरसंश्रितासि प्रियं पुनर्मे किमतः परं स्यात् ।।४/१५।।

पूर्वभाग -

उपगूहन -

चन्द्रकला नाटिका में लक्ष्मी का आगमन अद्भुत वस्तु की प्राप्ति है । इसकी सूचना इस स्थल पर हुई है -

राजा - (सर्वतोविभाव्य साश्चर्यम्) अये, कथमिदानीम् -

दृश्यन्ते द्युतयो पि विद्युत इव श्रूयन्त एतानि च
प्राम्यद्भृङ्गरुतानि कङ्कणभणत्कारेण मिश्राण्यपि ।
~~अम्यद्भृङ्गरुतानि कङ्कण~~
अभ्येति द्विपगण्डमण्डल ~~कलितमदा~~ म्बुकल्लोलिनी -
गन्धेन द्विगुणीकृतः परिमलः पाथोरुहाणामपि ।।४२।।

अमात्य : -

देवदेव । अहमेवं मन्ये इदानीं खलु समदकरिकुलकलितकमलपरिमलमिलदलिपटभङ्कारमुखरिताशान्तरा प्रणयप्रणतनिखिलसुरासुरमुकुटतटघटितमणिगणकिरणकिर्मीरितचरणनिकरा भगवन्मुकुन्दहृदयानन्दसन्दोह कन्दलीकन्दभूता दलितकमलदललोचना अपाङ्गतरङ्गविश्राणनाय त्रिभुवनसाम्राज्यलक्ष्मीः साक्षादभ्युपैति भवन्तमस्याः सुलक्षणाया परिग्रहानन्दवरा वदेति । (सर्वे निशम्य सत्वरमुत्तिष्ठन्ति । ततःप्रविशति परितश्चामरैरुपवीज्यमाना यथानिर्दिष्टा लक्ष्मीः)

राजा - (विलोक्य सानन्दम्) भगवति कृतार्थोऽस्मि ।

काव्यसंहार - चन्द्रकला नाटिका में लक्ष्मी की इस उक्ति में काव्यसंहार है- लक्ष्मीः- एवमस्तु । किं ते भूयः प्रियमुपहरामि ?

प्रशस्ति - चन्द्रकला नाटिका में निम्नश्लोक में शुभ की आशंसा होने से प्रशस्ति है-

'राजान: सुतनिर्विशेषमखिला: पश्यन्तु नित्यं प्रजा:
जीयासु: सदसद्विवेकपटव: सन्तो गुणग्राहिण: ।
शस्यस्वर्णसमृद्धय: समधिका: सन्तु क्ष्मारामण्डले
भूयादव्यभिचारिणी त्रिजगतो भक्तिश्च नारायणे ।। १६ ।।

अत्र प्रसादगुणधामिनि नीतिरम्ये
माधुर्यशालिनि निरस्तसमस्तदोषे ।
श्रीविश्वनाथकविवागमृतप्रवाहे
मज्जन्तु मत्सरमपास्य चिरस्य धीरा: ।। १७।।

अर्थोपक्षेपक –

विष्कम्भक –

नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें सुबुद्धि नामक एक मध्यम पुरुष पात्र तथा सुनन्दना नामक एक नीच स्त्री पात्र का प्रयोग हुआ है ।

चूँकि यहाँ पर एक पात्र मध्यम श्रेणी का तथा दूसरा नीच श्रेणी का है अत: शास्त्री नियमानुसार सङ्कीर्ण विष्कम्भक है । सुबुद्धि द्वारा संस्कृत तथा सुनन्दना द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

मंत्री सुबुद्धि के प्रवेश द्वारा यह सूचना दी जाती है कि कर्णाटक विजय के लिये प्रस्थित विक्रमाभरण मार्ग में किसीयुवती (चन्द्रकला) को प्राप्त करता है और उसे राजवंश की कन्या समझकर सुबुद्धि को सौंप देता है । मंत्री सुबुद्धि उसे सुन्दर लक्षणों से युक्त देखकर और "यस्तु भूमिपतिर्मनो पाणिमस्या ग्रहीष्यति लक्ष्मी: स्वयमुपागता नरमस्मै प्रदास्यति ।।६।। यह दिव्यवाणी सुनकर राजा के साथ उसका परिणय करना चाहता है किन्तु पाण्ड्यराजपुत्री महादेवी के भय से परिणय करने में असमर्थ होकर वह उसे देवी के संरक्षण में अन्त:पुर में रख देता है

और यह सोचता है कि अन्त:पुर में रहने से राजा स्वयं परिणय कर लेंगे ।

तदुपरान्त सुनन्दना का प्रवेश होने पर वह चन्द्रकला के विषय में उससे पूछता है । सुनन्दना सूचित करती है कि देवी ने उसे सखी पद पर रखा है और राजा उसके प्रति आसक्त न हो जाय अत: उसकी उपस्थिति गोपनीय रखती है फिर भी रानी के पास जाते हुये राजा ने उसे देख लिया है और चन्द्रकला राजा को देख रही थी तो रानी की सेविकाओं ने उसे दूर हटा दिया । वह चन्द्रकला के वियोग में राजा के पीड़ित होने की सूचना देती है । सुबुद्धि द्वारा दोनों के मिलन का उपाय पूछे जाने पर वह- आर्ये ममोपायेन समुत्पन्न एव । (अज्ज, मम उवायेण समुप्पणोज्जेव ।) यह कहकर शीघ्रतापूर्वक चली जाती है ।

इन्हीं वर्तमान तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में विष्कम्भक की योजना की गई है ।

प्रवेशक --

नाटिका के प्रथम अङ्क के बाद और द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है । इसमें सुनन्दना तथा विदूषक नामक नीच पात्रों का प्रयोग हुआ है । इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है । नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

सुनन्दना के प्रवेश द्वारा यह सूचना दी जाती है कि विदूषक की युक्ति के अनुसार चन्द्रकला रात्रि में सुनन्दना के साथ महाराज की समागम की आशा से केलिवन की बावली के समीप सन्तपर्ण वृक्षों की ओट में स्थित है । किन्तु विदूषक सूचित करता है कि देवी ने अद्य मया रजनी करस्यार्गुना विकसन्त्या: केलिवनदीर्घिकाकुमुदिन्या: एतेन परिणयोत्सव: सम्पादयितव्य: । तत्र आर्यपुत्रेण सन्निहितेन भवितव्यमिति (अज्ज मए रअणीअरस्सा गुणाविअसन्तीए केलिवणदीहिआ कुमुदिणीए एदिणा परिणआउसव्वो संपादिदव्वो । एत्थ अज्जउत्ते

अज्जउदे० । सणीविदेण हौदव्यं इ) में आज केलिवन की बावली में विकसित कुमु-दिनी का चन्द्रकिरण के साथ परिणायोत्सव सम्पन्न करूंगी । वहाँ आर्यपुत्र की उपस्थिति आवश्यक है । राजा को ऐसा कहा है और वह सुनन्दना को बताता है कि वह महारानी के पास ही उपस्थित रहे और देखे कि रानी चन्द्रकला के पास जाते हुये राजा का पीछा तो नहीं करती एवं पीछा किये जाने पर वह र राजा को संकेत कर दे । यह समस्त सूचना देकर विदूषक चला जाता है ।

द्वितीय प्रवेशक —

इस नाटिका के द्वितीय अङ्क के बाद तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है । इसमें विदूषक तथा माधविका नामक नीच पात्रों का प्रयोग हुआ है । प्राकृत भाषा का प्रयोग किया गया है ।

द्वितीय अङ्क के अन्त में राजा और चन्द्रकला द्वारा अपराध किये जाने पर रानी चन्द्रकला को सुनन्दना के घर में छिपा देती है । तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक में विदूषक को यह ज्ञात होने पर वह सुनन्दना की सहायता से गोपनीय ढङ्ग से केलिवन में चन्द्रकला और राजा के मिलन की योजना बनाता है । इतने में माधविका का प्रवेश होता है और उसके द्वारा पूछे जाने पर वह ता कोबि ण जाणादु । एवं विश्र ।' यह कहकर दुर्भाग्यवश सब उसे बता देता है । माध-विका रानी की विश्वसनीय परिचारिका होती है वह समस्त योजना से देवी को अवगत करा देती है ।

इस प्रकार इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की योजना इस प्रवेशक में दे दी गई है ।

मृगाङ्कलेखा नाटिका --

नान्दी -

नाटिका की निर्विघ्न समाप्ति के लिये बारह पंक्तियों में शिव पार्वती की स्तुति की गई है -

दूरादङ्घ्रिप्रहारप्रबलभरनतप्रौढदेवींकरेन्द्र-

पायादायासखेदाञ्जगदिदमखिलं ताण्डवाडम्बरं तत् ।।१।।

वामा वामाङ्गभागे कलयति मदनप्लोषकीर्तिं च धत्ते

पायान्मायादुरन्तो गिरिवरतनयावल्लभो भूतनाथः ।।२ ।।

रोषाकुंचितपाणिपल्लवतया सेवांजलिर्नो कृतः

पार्वत्याः सफलैव मानपदवी पायात्त्रिलोकीतलम् ।।३।।

सूत्रधार --

मृगाङ्कलेखा नाटिका में सूत्रधार के इन शब्दों से (विलोक्य) एष देवस्य कर्पूरतिलकस्य प्रधानसर्वस्वं रत्नचूडशर्मा साधुवादपुरःसरं इत एवाभिवर्तते रत्नचूड के प्रवेश की सूचना मिलती है ।

प्रस्तावना --

मृगाङ्क नाटिका में रत्नचूड सूत्रधार के साधु भोः कुशीलव साधु । अति-परिचयेत्यादि...... वचनों को कहता हुआ प्रवेश करता है । अतः यहाँ प्रस्तावना का कथोद्घात नामक भेद है ।

अर्थप्रकृति --

बीज -- मृगाङ्कलेखा नाटिका के नृप का कार्य राजा तथा मृगाङ्कलेखा का मिलन करा देना है जो रत्नचूड को अभीष्ट है । नाटिका के विष्कम्भक में रत्नचूड की `तदिदानीं तत्सङ्गमोपायमनोरथं फलितमिव पश्यामि` इस उक्ति में बीज नामक

अर्थप्रकृति है ।

बिन्दु –

मृगाङ्कलेखा नाटिका में नेपथ्य से निम्न उक्ति सुनकर मृगाङ्कलेखा और कलहंसिका प्रमदवन से लौट जाती है - (नेपथ्ये) मृगाङ्कलेखे । विरम वसन्तोत्सवात् । भगवती सिद्धियोगिनी द्रष्टुमिच्छति ।' इससे कथा में विशृङ्खलता आ जाती है । इसे संश्लिष्ट करने के लिये देवी के माधवीमण्डप में गई हुई मृगाङ्कलेखा के द्वारा 'तत्स्तत्र प्रमदवने मदनमहोत्सवे को पि नीलोत्पलश्यामलाङ्गो तिगम्भीराकृतिर्मदन इव प्रत्यक्षीकृत शरीरो दृष्ट कुमार: । तं दिवसमारभ्य........' इत्यादि यह उक्ति कहलाकर कथा का अच्छेद (सन्धान) कर दिया है अत: यहाँ बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है ।

प्रकरी –

मृगाङ्क नाटिका में राजा कर्पूरतिलक द्वारा शङ्खपाल तथा हाथी के वेष में आये हुये उसके भाई दोनों को मारना प्रकरी नामक अर्थप्रकृति है ।

कार्य –

मृगाङ्क० में कर्पूरतिलक और मृगाङ्कलेखा का मिलन प्रधान साध्य होने से कार्य है ।

अवस्था –

आरम्भ –

मृगाङ्कलेखा नाटिका में (ऊर्ध्वमवलोक्य) कथमयं देव: कर्पूरतिलक: सकलनिशाजागरक्षामक्षाम गात्र: पाण्डुरकपोलमण्डल: द्वारदेशगतेव शाखामृगमुखेन प्रियवयस्येन संगच्छमानो मनसा तत्सम्बन्धिनीं कथां कथयन् शय्यामन्दिर मध्यास्ते । तदहमपि राज्यभारनिर्वाहायाभ्यन्तरमेव प्रविशामि ।' रत्नचूड के इस वाक्य द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है ।

प्रयत्न -

मृगाङ्कके प्रथम अङ्क में नेपथ्य द्वारा सिद्धियोगिनी के आगमन की सूचना पाकर मृगाङ्कलेखा चली जाती है और राजा की फलप्राप्ति में व्यवधान हो जाता है । पुन: द्वितीय अङ्क में विदूषक फल-प्राप्ति के लिये उपाय ढूंढ़ता है - 'तदेहि माधवीलतामण्डपतलेमकराशिनीमन्वेषयाम: ।' इस प्रकार द्वितीय अङ्क में विदूषक तथा कलहंसिका (मृगाङ्कलेखा की सखी) की युक्ति से राजा तथा मृगाङ्कलेखा के सम्मिलन का प्रयत्न किया जाता है अत: वहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है ।

प्राप्त्याशा -

मृगाङ्कलेखा के द्वितीय अङ्क के अन्त में राजा माधवीलतामण्डप के एक देश (एक भाग) मल्लिकासरोवर को ही मृगाङ्कलेखा का निवास स्थान समझ-कर उससे मिलने का उपाय करते हैं । इस प्रकार प्रियवयस्य का सङ्गम आदि उपाय होने पर भी देवी के रूप में विघ्न की आशङ्का - (नेपथ्ये) मृगाङ्कलेखे । त्वरस्व त्वरस्व मृगाङ्कपूजनं कर्तुं त्वरयति देवी नेपथ्य द्वारा दिखाई गई है । इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है ।

नियताप्ति -

फलागम -

मृगाङ्कलेखा नाटिका में राजा कर्पूरतिलक को मृगाङ्कलेखा का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्व प्राप्ति नाटिका का फलागम है । इसलिये यह कार्य की फलागम अवस्था है ।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग -

मुख सन्धि -

मृगाङ्कलेखा नाटिका के आमुख में सूत्रधार की निम्न उक्ति में बीजो-त्पत्ति है -

अतिपरिचयदोषात्प्रौढबालेव वाणी
न रचयति विनोदं प्राक्तनानां कवीनाम् ।
अभिनवकविवाचा कापि रीतिर्नवीन ।
युवतिरिव विधत्ते प्रौढमानन्दमन्त: ।।१३ ।।
अत: प्रथम अङ्क में मुख सन्धि है ।

उपक्षेप -

मृगाङ्कले० में प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही सूत्रधार अपने कार्य को बीज रूप में डाल देता है । उसका कार्य राजा कर्पूरतिलक और मृगाङ्कलेखा को मिला देना है । बीजरूप व्यापार की सूचना सूत्रधार की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है -

'अतिपरिचयेत्यादि............ ।।१३।।

परिकर -

मृगाङ्क में रत्नचूड अपने फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है । इसकी सूचना रत्नचूड की निम्न उक्ति से होती है-
रत्नचूड : -(अतिपरिचयेत्यादि पठित्वा) अत एवास्मत्स्वामी कलिङ्गेश्वर: कामरूपेश्वरतनयां मृगाङ्कलेखां मृगयाप्रसङ्गेनावलोक्य न तथा चिरपरिचितां विलासवतीं मन्यते ।'

परिन्यास -

मृगाङ्क में रत्नचूड की निम्न उक्ति में बीजन्यास के बाहुल्य रूप परिकर की सिद्धि होने के कारण परिन्यास नामक मुखाङ्ग है - रत्नचूड: 'तदिदानीं तत्सङ्गमोपायमनोरथ फलितमिव पश्यामि ।'

विलोभन -

मृगाङ्क में मृगाङ्कलेखा के गुणों का वर्णन किये जाने के कारण

राजा की निम्न उक्ति में विलोभन है --

> नीलेन्दीवरमेव लोचनयुगं बन्धूकतुल्योऽधर:
> कालिन्दीजलचारुकुन्दलता बाहू मृणालोपमौ ।
> रम्भागर्भसमानमूरुयुगलं किं वा बहु ब्रूमहे
> सेयं कापि नवीनमीनयना सर्वोपमानिर्मिता ।।२१ ।।

युक्ति-

मृगाङ्क में रत्नचूड की निम्न उक्ति में युक्ति की व्यंजना हुई है -- यतस्तद्रूपोन्मादमोहितस्तां तिरस्करिण्या विद्यया यावदपहरति दानव: शङ्खपालो नाम तावद्भगवत्या सिद्धयोगिन्या महाराजैकपक्षपातिन्या समाकृष्टैवान्त:पुरम् । उक्तं च देवीं प्रति स्थानीया सखीयं बाला मृगाङ्कलेखा ।`

प्राप्ति -

मृगाङ्क० में राजा को देखकर मृगाङ्कलेखा हर्ष के साथ कहती है - `हृदय ! समाश्वसिहि ।` यहाँ पर मृगाङ्कलेखा को सुख की प्राप्ति हुई है अत: यहाँ पर प्राप्ति नामक मुखाङ्ग है ।

समाधान --

विधान --

मृगाङ्क० नाटिका में राजा वसन्तोत्सव के समय मृगाङ्कलेखा से मिल कर सुख का अनुभव करते हैं किन्तु सिद्धयोगिनी के आगमन की सूचना से वे दु:खी हो जाते हैं - राजा - (ससम्भ्रमं मृगाङ्कलेखां विमुच्य) कथं सिद्धयोगिनी ।`

परिभावना, उद्भेद, करण, भेद ।

प्रतिमुख सन्धि --

मृगाङ्कलेखा नाटिका के प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में राजा एवं कुवलयावली के (भावी)समागम के हेतुरूप जिस अनुरागबीज को बोया गया है, उसे दूसरे

अङ्क में लवङ्गिका और विदूषक जान जाते हैं, इसलिये वह कुछ कुछ प्रकट हो जाता है तथा मृगाङ्कपूजन के लिये आई हुई देवी के द्वारा कुछ कुछ गृहीत हो जाता है। इस प्रकार बीज के अङ्कुर का दृश्य और अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है।

विलास -

मृगाङ्क नाटिका में राजा कर्पूरतिलक मृगाङ्कलेखा के अङ्गलावण्य और सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और मृगाङ्कलेखा भी राजा के सौन्दर्य को देखकर उन पर आसक्त हो जाती है। इसकी व्यंजना मृगाङ्कलेखा की निम्न उक्ति से हो रही है -

चन्द्रश्चन्दनमुत्पलानि नलिनीपत्राणि मन्दानिल:
काल: के पि च चैत्रनर्त्तितवलत्प्रोत्फुल्लमल्लीलत: ।
लीलामज्जनमुज्ज्वलं च वसनं शय्या मृगाङ्कोज्ज्वला
यद्यत्सौख्यकरं जनस्य मम तच्चिन्ताज्वरोद्दीपनम् ।।२६

परिसर्प -

मृगाङ्क० के प्रथम अङ्क में राजा मृगाङ्कलेखा से जब मिलता है तब बीज एक बार दृष्ट हो गया परन्तु द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में राजा पुन: मृगाङ्कलेखा की खोज करते हैं। राजा विदूषक से कहते हैं - राजा - तदिह माधवीलतामण्डपतले मत्काशिनीमन्वेषयाम: ।

विधूत -

मृगाङ्क नाटिका में मृगाङ्कलेखा का अनुराग बीज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है। कामपीडासन्तप्त चन्द्रकला कहती है -
चन्द्र० - कला । अभिलाषो महिलानां दुर्लभसङ्गमे दुस्सहो भवति ।
जानातु प्रियसखी तत् भरणं तासां कुलवधूनाम् ।।२८ ।।

शम-

नर्म-

मृगाङ्कलेखा नाटिका में लवङ्गिका और मृगाङ्कलेखा की निम्न उक्ति में नर्म नामक प्रतिमुखाङ्ग है - लवं०

लवं० - "भर्तः ! एष कुमुदिनीनाथः किरणैर्मम प्रियसखीम् अतिशयितं बाधते । तदन्यया सह अन्यतो गमिष्यामि ।" मृगा० - (धीरमङ्गुल्या तर्जयति ।)

नर्मद्युत-

प्रगमन -

निरोधन - मृगाङ्क० में मृगाङ्कलेखा समागम राजा का अभीष्ट हित है किन्तु नेपथ्य द्वारा देवी के प्रवेश की सूचना देकर उसमें अवरोध उत्पन्न कर दिया जाता है अतः यहाँ निरोधन है - (नेपथ्ये) (मृगाङ्कलेखे ! त्वरस्व मृगाङ्कपूजनं कर्तुं त्वरयति देवी ।) राजा - (ससम्भ्रमम्) सुन्दरि ! गच्छाग्रतः अहमप्यागतएवा नुपदम् ।"

पर्युपासन-

पुष्प -

मृगाङ्क नाटिका में कर्पूरतिलक एवं मृगाङ्कलेखा का अनुराग परस्पर दर्शन आदि से विशेष रूप में प्रकट हो जाता है । इस पुष्प की सूचना राजा एवं विदूषक का निम्न कथोपकथन देता है - राजा - (शब्दानुसारेणावलोक्य) अये कथमियं मम मनोरथैकचित्रशाला बाला मृगाङ्कलेखा सह सखीभ्यामन्वास्ते ।" विदू० - "भो वयस्य ! किमेषा म्लानमृणालिकाशिथिलैरङ्गैः प्रतिपच्चन्द्रकलिकां विडम्बयति ।"

उपन्यास, वज्र, वर्णसंहार -

गर्भसन्धि - मृगाङ्कलेखा नाटिका के द्वितीय अङ्क के अन्त में कर्पूरतिलक की फलप्राप्ति में देवी द्वारा विघ्न होता है किन्तु तृतीय अङ्क में राजा को फल-

प्राप्ति की आशा हो जाती है। इस प्रकार राजा की फल-प्राप्ति में कभी तो विच्छेद हो जाता है और कभी प्राप्त हो जाता है फिर विच्छेद हो जाता है। फिर विघ्न के निवारण के उपाय तथा फलहेतु का अन्वेषण किया जाता है। इस अन्वेषण की व्यंजना राजा की इस उक्ति से होती है -"तदत्र गत्वा समीहित-सिद्धिं सम्पादयामि।" (इतिपरिक्रामति)।

<u>अवमर्श सन्धि</u> -

मृगाङ्कलेखा नाटिका के चौथे अङ्क में विलासवती की प्रसन्नता से मृगाङ्कलेखा की प्राप्ति बिना किसी विघ्न के सम्भव है, इस विमर्श की सूचना शङ्खपाल के भाई के जङ्गली हाथी के रूप में आक्रमण करने के वर्णन तक दी गई है।

<u>संफेट</u> -

मृगाङ्क० में नेपथ्य द्वारा दानवेन्द्र की निम्न उक्ति में रोष भाषण है - रे रे मृगाङ्कलेखाकामुक। क्वा सि।

किं व्यापाद्य त्वदीयक्षतजनवजलैः सिंचयाम्यङ्गमारा-
दुद्भ्राम्यत्वामिदानीं वरमजलनिधौ प्रक्षिपामिक्षणात्किम्।
किं त्वा त्वन्मांसपूरैर्दलनपटुतरो जाठरः पूरणीयो
मद्भ्राता शङ्खपालः कथमिव दलितः कालिकामान्दरान्तः।। १४।।

<u>विद्रव</u> -

मृगाङ्क० में जबशङ्खपाल हाथी का रूप धारण करके आता है तो सब लोग भय से भागने लगते हैं --

भञ्जन्नायसशृङ्खलाविरचितं बन्धं मदोन्मादितः
कोपाटोपभरेण नागरजनं वेगेन निर्दालयन्।
कुण्डाताडवडम्बरेणसहसा हत्वा निजाधारणीं
क्रोधाक्रान्तकलेवरः सरभसं निर्यातिमत्तद्विपः।।। १४।।

छलन -

मृगाङ्कक० में शङ्खपाल गजेन्द्र रूप में आकर राजा के मृगाङ्कलेखा समागम में विघ्न डालता है, इस प्रकार वह राजा की अवज्ञा करता है, अत: अवमान के कारण छलन नामक अवमर्शाङ्ग है - राजा- भगवतीं नमस्कृत्य तिष्ठन्तु भवन्त: । यावदहमेतमास्कन्ध संभावयामि ।

विचलन -

मृगाङ्कलेखा नाटिका में रत्नचूड की निम्न उक्ति में कर्पूरतिलक के प्रति मेरा कितना उपकार है, इस बात की व्यंजना करते हुये अपने गुणों का कीर्तन करता है अत: विचलन नामक अवमर्शाङ्ग है - रत्नचूड: अहो बलवती पराधीनता । तथाहि-

सर्वोर्वीरमणीं विधातुमधुना देवं मया निर्मिता
माया का पि यया नवीनतरुणीलाभ: प्रभो: स्यादयम् ।
देवी स्वा वरजामनेकसुकृतैरासाद्य सन्तोषिता
यत्सत्यं च तथा पि किं तु हृदयं साशङ्कमास्ते मम् ।१८।।

निर्वहण सन्धि --

मृगाङ्कलेखा नाटिका में मृगाङ्कलेखा, विलासवती, सिद्धियोगिनी आदि के कार्यों (अर्थों) का जो मुखसन्धि आदि में इधर उधर छिटके पड़े थे, राजा के ही कार्य के लिये समाहार होता है । इसकी सूचना सिद्धियोगिनी की इस उक्ति के द्वारा की जाती है -
सिद्धि० - वत्से । अत्रैव तव तातसमीपे त्वत्परिणायं विधाय कृत कृत्यात्मानं सम्भावयामि ।

सन्धि -

मृगाङ्कक० नाटिका के चतुर्थ अङ्क में नेपथ्य द्वारा कन्योद्वाहोत्सवाय प्रविशति नगरं कामरूपाधिपोऽसौ इस उक्ति को सुनकर राजा को मृगाङ्कलेखा के वास्तविक रूप का ज्ञान होता है यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की गई

है अत:सन्धि नामक निर्वहणाङ्ग है। राजा की निम्नउक्ति इसकी सूचक है -
राजा - (विदूषकं प्रति) सा तत्रभवती कामरूपाधिपतनया उचितमेवैतत्।

विबोध -

मृगाङ्क० में चतुर्थ अङ्क में मृगाङ्कलेखा रूप कार्य की कामरूपेश्वर चण्ड-घोष, नीतिवृद्ध आदि पात्रों के द्वारा फिर से खोज की जाती है अत: विबोध है।

ग्रथन - ×

निर्णय -

मृगाङ्क० में रत्नचूड निम्न उक्ति के द्वारा कार्य से सम्बद्ध अपने कार्यों को वर्णित करता है अत: यहाँ निर्णय है - रत्नचूड-
रत्नचूड- येयं मृगाङ्कलेखा कामरूपेश्वरतनया तां सिद्धकथितसार्वभौमपतिकामाकलय्य यावत्त्वदर्थं प्रार्थयामि तावद्भगवत्या सिद्धयोगिन्या समाकृष्टैवान्त:पुरम्।

परिभाषा-प्रसाद - ×

आनन्द - मृगाङ्क० नाटिका में विलासवती तथा सिद्धयोगिनी की अनुमति मिलने पर राजा- (तथेति हस्तौप्रसार्य मृगाङ्कलेखा गृह्णाति) इतना कहकर ईप्सित मृगाङ्कलेखा के पाणि का ग्रहण करता है।

समय -

मृगाङ्क० में देवी विलासवती जब सिद्धयोगिनी से भगवति। त्वम् आर्यपुत्रस्य हस्ते इमां प्रतिपादयस्व ऐसा कहती है, तब उसके दु:ख की समाप्ति हो जाती है।

कृति -

मृगाङ्क० में देवी विलासवती, भगवती सिद्धयोगिनी तथा राजा मृगाङ्कलेखा के प्राप्त हो जाने पर एक दूसरे को खुश करने के लिये परस्पर वार्तालाप करते हैं अत: यहाँ कृति है - विला० - भगवति। त्वम् आर्यपुत्रस्य हस्ते इमां प्रतिपादयस्व। सिद्ध० - (मृगाङ्कलेखां हस्ते गृहीत्वा) राजन्। एषा यथा बन्धुजनशोचनीया न भवति तथा विधेहि।

राजा - (तथेति हस्तौ प्रसार्य मृगाङ्कलेखां गृह्णाति ।)

भाषण -

मृगाङ्कलेखा में राजा कर्पूरतिलक की यह उक्ति उसके काम, अर्थ, मान आदि के लाभ की द्योतक है -

राजा - (सानन्दम्) अत: परमपि प्रियमस्ति ।

क्षोणीराज्यं सपदि विहितं कान्तया सार्द्धमुच्चै-

र्देवी तुष्टा व्यजनि भगिनीव्कामभासाद्य सद्य: ।

स्फीता कीर्ति: सपदि रचिता चन्द्रवंशस्य तस्मात्

कस्मिन्निष्टे भगवति । पुन: कर्तुमीशा तवा स्ते ।।२३ ।।

उपगूहन, पूर्वभाव, काव्यसंहार --

प्रशस्ति - मृगाङ्क में भरतवाक्य द्वारा शुभ की आशंसा होने से प्रशस्ति है -

यावद्ब्रह्माण्डमाण्डे स्फुरति स भगवान् पद्मिनीजीवितेशो

यावत्क्षोणीं फणीन्द्र: कलयति शिरसा यावदास्ते ।

यावत् कल्पान्तवातो न चलति भुवने सन्तुलावत् समस्ता

विस्फूर्जत्क्षीरधाराद्रवमधुरतरा: सत्कवीनां प्रबन्धा: ।।२४ ।।

अर्थोपक्षेपक -

विष्कम्भक -

मृगाङ्कलेखा नाटिका में प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में प्रस्तावना के बाद विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें रत्नचूड (राजा का मंत्री) तथा वैतालिक नामक मध्यम पात्रों का प्रयोग हुआ है ।

दोनों ही पात्र मध्यम श्रेणी के हैं अत: यहाँ पर शुद्ध विष्कम्भक है । संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

इसमें राजा के अमात्य रत्नचूड द्वारा वर्तमान में घटित होने वाले कथांशों की सूचना दी गई है।

प्रस्तुत नाटिका के प्रथम अङ्क के विष्कम्भक में रत्नचूड द्वारा रङ्गमंच पर आकर राजा कर्पूरतिलक और नायिका मृगाङ्कलेखा के प्रणय की सूचना दी गई है। मृगया के लिये गये हुये कलिङ्गेश्वर कर्पूरतिलक कामरूपेश्वर की पुत्री मृगाङ्कलेखा को देखकर इतना मोहित हो जाते हैं कि वे अपनी ज्येष्ठा नायिका विलासवती को भी उतना महत्व नहीं देते हैं - रत्नचूड- 'अत एवास्मत्स्वामी कलिङ्गेश्वर: कामरूपेश्वरतनयां मृगाङ्कलेखां मृगयाप्रसङ्गेनावलोक्य न तथा चिरपरिचितां विलासवतीं मन्यते।'

यहाँ पर शुद्ध विष्कम्भक में बीज का न्यास भी किया गया है जिससे यह भावी सूचना मिलती है कि सिद्धयोगिनी द्वारा मृगाङ्कलेखा को अन्त:पुर में ले जाने का एक मात्र भावी प्रयोजन दोनों का मिलन करा देना है। शङ्खपाल द्वारा नायिका के अपहरण की भावी सूचना भी इस विष्कम्भक द्वारा दी गई है - रत्नचूड- 'यतस्तद्रूपोन्मादमोहितस्तां तिरस्करिण्या विद्यया यावदपहरति दानव: शङ्खपालो नाम तावद्भगवत्या सिद्धयोगिन्या महाराजपक्षपातिन्या समाकृष्टे- वान्त:पुरम्।'

इन्हीं भूत तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के आरम्भ में शुद्ध विष्कम्भक की योजना की गई है।

नाटिका के चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में भी दूसरे विष्कम्भक की योजना की गई है। इसमें विदूषक नामक एक नीच पात्र तथा कलकण्ठ नामक एक मध्यम पात्र का प्रयोग हुआ है।

चूँकि यहाँ पर एक पात्र नीच श्रेणी का तथा दूसरा मध्यम श्रेणी का है अत: यहाँ पर शास्त्रीय नियम के अनुसार सङ्कीर्ण विष्कम्भक है। विदूषक

द्वारा शौरसेनी प्राकृत तथा कलकण्ठ द्वारा संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

प्रस्तुत नाटक के चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में कलकण्ठ विदूषक को सोता हुआ छोड़कर चला जाता है । विदूषक नींद खुलने पर कलकण्ठ की खोज करता है । कलकण्ठ विदूषक को राजा के विवाहमहोत्सव की सूचना देता है । यहाँ पर विवाह महोत्सव की भावी सूचना सङ्कीर्ण विष्कम्भक में दी गई है । आगे चल कर इसी अङ्क के अन्त में देवी विलासवती तथा सिद्धयोगिनी की अनुमति से राजा और मृगाङ्कलेखा का विवाह हो जाता है । इस विवाहमहोत्सव की भावी सूचना यहाँ पर दे दी गई है - कल० - (गत्वा विदूषकं प्रति ()वयस्य । दिष्ट्या वर्धसे प्रियवयस्यस्य विवाह महोत्सवेन ।

इसके बाद कलकण्ठ विदूषक को लेकर राजा को विवाहमहोत्सव की सूचना देने के लिये विलासोद्यान में चला जाता है ।

इसी प्रकार कलकण्ठ जब कहता है कि मृगाङ्कलेखा के जनकमन्दिर में दूतों को भेजूंगा (, , , अहं तु मृगाङ्कलेखाजनकमन्दिरे दूतं विसर्जयामि) तो इससे कामरूपेश्वर आदि के आगमन की भी भावी सूचना मिलती है । इस प्रकार यहाँ पर सङ्कीर्ण विष्कम्भक द्वारा भावी कथांशों की सूचना दी गई है ।

प्रवेशक -

पहला प्रवेशक -

इस नाटिका के प्रथम अङ्क के अन्त के बाद द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है किन्तु शास्त्रीय नियमों के अनुसार प्रवेशक के जो लक्षण बताये गये हैं वे यहाँ पर घटित नहीं होते । प्रवेशक में नीच पात्रों की योजना की गई है किन्तु यहाँ पर सिद्धपीठ तथा कंचुकी नामक मध्यम पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार प्रवेशक में प्राकृत भाषा का प्रयोग होना चाहिये जबकि प्रस्तुत स्थल पर संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है । दो अङ्कों के बीच होना आदि नियमों

का पालन शास्त्रीय नियमानुसार हुआ है। नायिका के विरहावस्था इत्यादि की भावी सूचना भी दी गई है।

दूसरा प्रवेशक -

इस नाटिका के द्वितीय अङ्क के बाद तृतीय अङ्क के आरम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है क्योंकि शास्त्र के अनुसार इसकी योजना दो अङ्कों के मध्य होनी चाहिये। इसमें लवङ्गिका तथा कुण्डरुधिर नामक नीच पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है। नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी कथांशों की भी सूचना दी गई है। लवङ्गिका जब कानन में मनुष्यगन्ध की बात कहती है तो उससे आस-पास श्मशान के होने की सूचना मिलती है -

लवं० एदस्सिं कारणाणुद्देसमणुस्सगन्धे विअ आअदि। ता पेक्ख २।

इसी प्रकार कुण्डरुधिर जब सूचना देता है कि किसी मनुष्यपुरुष की गृहिणी को शङ्खपाल अपनी गृहिणी बनाकर लाया है और श्मशान के कालिकागृह में पूजा कर रहा है उसी मनुष्य की गन्ध है तो इससे यह स्पष्ट भावी सूचना मिल रही है कि राजा की मुग्धा नायिका मृगाङ्कलेखा का अपहरण शङ्खपाल द्वारा कर लिया गया है। उसी की गन्ध आ रही है।

कुण्डरु० - तेन कस्यापि मनुष्यपुरुषस्य गृहिणी आत्मनो गृहिणी कर्तुमानता। इदानीमत्रश्मशानकालिकागृहे पूर्वप्रतिश्रुतां पूजां निर्वर्तयति। स एष मनुष्यगन्धः।

इस प्रकार यहाँ पर शङ्खपाल द्वारा मृगाङ्कलेखा को श्मशान पर स्थापित कर देने की भावी सूचना मिलती है। इसी अङ्क में आगे चलकर जब राजा मृगाङ्कलेखा के वियोग में प्राणत्याग की इच्छा से जाता है तो वहाँ पर मृगाङ्कलेखा को श्मशान में देखकर उसकी सुरक्षा करता है।

इस प्रकार यहाँ पर प्रवेशक की योजना शास्त्रीय नियमों के अनुसार ही हुई है ।

चूलिका —

मृगाङ्कलेखा नाटिका के प्रथम अङ्क में मृगाङ्कलेखा अपनी सखी कलहंसिका के साथ प्रमदवन में जाती है । वहाँ पर राजा के साथ उसका प्रेमालाप होता है । राजा जैसे ही मृगाङ्कलेखा का हाथ पकड़ना चाहता है उसी समय जवनिका के उस ओर बैठे हुये पात्रों (नेपथ्य) द्वारा भगवती सिद्धयोगिनी के आगमन की सूचना दी जाती है —(नेपथ्ये) मृगाङ्कलेखे । विरम वसन्तोत्सवात् । भगवती सिद्धयोगिनी दृष्टुमिच्छति ।

(चूलिका)

यहाँ पर नेपथ्ये द्वारा राजा तथा मृगाङ्कलेखा के प्रमदवन से चले जाने की सूचना मिलती है ।

नाटिका के द्वितीय अङ्क में मृगाङ्कलेखा अपनी सखी तरङ्गिका के साथ माधवीमण्डप में मृगाङ्कलेखा से मिलने जाते हैं । वहाँ पर राजा मृगाङ्कलेखा से प्रेमालाप करते हैं । मृगाङ्कलेखा जाना चाहती है किन्तु राजा उसका आलिङ्गन करते हैं उसी समय नेपथ्य द्वारा यह सूचना मिलती है कि देवी मृगाङ्कपूजन के लिये आ रही हैं - (नेपथ्ये) (मृगाङ्कलेखे । त्वरस्व त्वरस्व मृगाङ्कपूजनं कर्तुं त्वरयति देवी ।)

यह सूचना मिलते ही राजा भयभीत हो जाते हैं और मृगाङ्कलेखा भी घबराहटपूर्वक शीघ्र ही जाती है ।

इस प्रकार प्रस्तुत स्थल पर नेपथ्ये द्वारा देवी के आगमन तथा मृगाङ्कलेखा के गमन की सूचना दी गई है ।

तृतीय अङ्क में दानवेन्द्र शङ्खपाल मृगाङ्कलेखा को अन्तःपुर से कालिकायतन में उठा ले जाती है । राजा मृगाङ्कलेखा के वियोग में प्राणत्याग की इच्छा से श्मशान जाता है । वहाँ पर राजा कालिकायतन में अपनी समीहितसिद्धि

को सम्पादित करना चाहता है। तभी नेपथ्ये द्वारा आवाज़ आती है -

(नेपथ्ये)

किं प्राणेश्वरि । खेदमत्र कुरुषे यत्प्राणनाथे मयि
त्रासं मुंच मनस्विनि । त्यज रुषं किं लोचने साश्रुणी ।
त्वत्प्राप्त्यै यदवोचिषं पुररियोः कान्तानिदानीमहं
तत्कृत्वार्चनमिन्दुसुन्दरमुखि । त्वां चुम्बयिष्याम्यहम् ।।२३ ।।

यहाँ पर नेपथ्ये द्वारा यह सूचना दी गई है कि शङ्खपाल बलात् मृगाङ्क-लेखा के साथ रति की इच्छा करता है।

इसी प्रकार तृतीय अङ्क में ही नेपथ्य द्वारा यह भी सूचना दी गई है कि वह मृगाङ्कलेखा से क्रोध को छोड़कर देवी की पूजा करने को कहता है -

(पुनर्नेपथ्ये)

मन्दारपुजाञ्चितमग्रमङ्गं
वन्दस्व कालीचरणारविन्दम् ।
मया सहैवेन्दुसमानवक्त्रे
मृगाङ्कलेखे । प्रविहाय रोषम् ।।२६ ।।

इस प्रकार राजा नेपथ्य द्वारा यह सूचना पाकर आश्चर्य करता है कि इस प्रियापहारक के द्वारा देवी की पूजा कैसे की जा रही है।

इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में राजा अपनी प्रिया के सङ्गम का उपाय सोचता रहता है। वह अपने मित्र विदूषक से भी प्रिया के सङ्गमोपाय की बात कहता है। तभी नेपथ्य द्वारा मृगाङ्कलेखा के साथ राजा के विवाहोत्सव के लिये कर्पूरवर्षाधिप के नगर में प्रवेश करने की सूचना मिलती है -

(नेपथ्ये)

पाटीराम्भः प्रपञ्चैश्छुरयत धरणीं केतकीपांसुपूरै-
रापूर्यन्तां चतुष्काः कमलनवदलैर्मण्डपा मण्डनीयाः ।।

मुक्ताहारैर्विचित्रैर्नगरयुवतय: किं च कुर्वन्तु हारान्
लास्यं वाराङ्गनाभि: स्तनभरविनमन्मध्यभङ्गविधेयम् ।।५।।

अपि च --

सौधं कर्पूरपूरै: परिचिनुत चिरं चामरैश्चन्द्रशाला :
समार्ज्यन्तां विचित्रा: पथिपथिकिरणा:सन्तुसिन्दूरपूरै: ।
आनीयन्तां तुरङ्गा:सरणिषु निरणात्किङ्किणीर्यंजनाद:
कन्योद्वाहोत्सवाय प्रविशति नगरं कामरूपाधिपोऽसौ ।।६।।

यहाँ पर नेपथ्य द्वारा ही राजा को यह भी सूचना मिल जाती है कि मृगाङ्कलेखा कामरूपेश्वर की पुत्री है क्योंकि कन्या के विवाह के लिये कामरूपाधिप के नगर में प्रवेश की सूचना पाकर राजा विदूषक कहता है - राजा- (विदूषकं प्रति) सा तत्रभवती कामरूपाधिपतनया उचित भवितव्यम् ।

चतुर्थ अङ्क में ही जब मृगाङ्कलेखा अपने पिता अपने भाई तथा अमात्य नीतिवृद्ध आदि लोगों से मिलती है और सब लोग उसका आलिङ्गन करके अपना अपना आसन ग्रहण करते हैं उसी समय नेपथ्य द्वारा नगरनिवासियों को गजेन्द्र के वेगपूर्वक भागने तथा राजवीथी में प्रवेश करने की सूचना दी जाती है - (पुनर्नेपथ्ये) भो भो: पौरजानपदा: ।

भंजन्नायसशृङ्खलाविरचितं बन्धं मदोन्मादित:
कोपाटोपभरेण नागरजनं वेगेन निर्दालयन् ।
शुण्डाताण्डवडम्बरेण सहसाहत्वा निजाधोरणं
क्रोधाक्रान्तकलेवर: सरभसं निर्याति मत्तद्विप: ।।१४।।

अपि च --

गर्जन् संवर्तकालप्रभवघनघटाचण्डगंभीरधीरं
मार्गे पङ्कं वितन्वन् प्रकटविगलदानधारासहस्रै: ।
अत्पोढासिधारास्फुरितनिजकरै:पत्तिभि: प्रेक्ष्यमाण:
प्रभ्रष्टो यं करीन्द्र: प्रविशति सहसा राजवीथीं स्वयूथात् ।।१५।।

नेपथ्य द्वारा गजेन्द्र के राजवीथी स्वच्छन्द में प्रवेश की सूचना पाकर सभी नगरनिवासी भयभीत हो जाते हैं। तब राजा अपने आगमन द्वारा सभी नगरनिवासियों को आश्वासित करता है। अतः चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है।

नवमालिका –

नान्दी –

नवमालिका नाटिका आरम्भ करने के पूर्व उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिये देवता आदि की स्तुति किये जाने के कारण निम्न श्लोकों में नान्दी पाठ है –

चित्रान्तर्विशदद्रिराजतनया नीलद्युतिच्छायया
संवीतस्य मृगत्वया न वयसा संवृणवतो विक्रिया: ।
भक्त्या पूर्वसमर्पितामिव तथा सम्बिभ्रतो वाञ्छ
वाच: परन्तु हरस्य कैतवबटोराशायंधीमूलिका: ।।१ ।।

अपि च –

जयति रतिपतिज्याकर्षशिञ्जानभृङ्ग-
ध्वनिरनिभृतभेरीझाङ्कृतिर्मैत्र्यानमु ।
कुवलयनवनां भाववैदुर्यमेघ-
स्तनितमुपनिषद्गीरदयानन्दभूमे: ।।२ ।।

सूत्रधार –

प्रस्तुत नाटिका की प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा अभिनेय रचना और नाटककार का परिचय किया गया है – सूत्रधार: –

वाग्देवता हृदयभूषणा पारिजात –
सम्मुस्कनानुगुणगीतगुणास्य तस्य ।
सम्भावनाभिरुपविभ्रदशून्यमन्त-
र्विजेश्वरेति विदितस्तनयस्तदीय: ।।६।।

तदनुबद्ध्या नवमालिकाभिधानया नाटिकया चाभिनीयमानया त्वया वयं विनोदनीया इति ।

साथ ही सूत्रधार नटी के साथ वार्तालाप करते हुये अमात्य नीतिनिधि के प्रवेश की भी सूचना देता है --

सूत्रधार :-- (विलोक्य) कथमयं मारिष : परिषदाज्ञप्तं विलम्बमसहमान: प्रगृह्या-मात्यस्य नीतिनिधेर्भूमिकामागत एव । तदा आवामप्यनन्तरभूमिकापरिग्रहाय गच्छाव: ।

प्रस्तावना --

नवमालिका नाटिका में नीतिनिधि नटी के सुष्ठु खल्विदमुपन्यस्यते (गुणप्रगुणताभूतानित्यादि (१।८) पठित्वा) इत्यादि वचनों को कहता हुआ प्रवेश करता है, अत: यहाँ प्रस्तावना का कथोद्घात नामक भेद है ।

अर्थप्रकृति --

बीज --नवमालिका नाटिका के नृप का कार्य राजा तथा नवमालिका का मिलन करा देता है जो नीतिनिधि को अभीष्ट है । नाटिका के विष्कम्भक में नीतिनिधि की यह चेष्टा बीज के रूप में रखी गई है । नीतिनिधि की निम्न उक्ति में बीज का सङ्केत किया गया है - नीतिनिधि - " यद्यपि सा कन्य-कास्मत्स्वामिनोऽवन्तिपतेर्महाराजस्य विजयसेनस्य चक्षुर्गोचरतां नासादितवती । अनन्तरं दैवमेव प्रमाणम् ।

बिन्दु --

नवमालिका नाटिका के चतुर्थ अङ्क में प्रभाकर नाम के तपस्वी के प्रवेश द्वारा कथा विच्छिन्न हो जाती है । इसे संश्लिष्ट करने के लिये देवी चन्द्रलेखा द्वारा रत्न को उठाने का प्रयास किया जाता है और उसमें असफल होने पर नवमालिका का प्रवेश कराकर कथा का सन्धान कर दिया गया है, अत: यहाँ पर बिन्दु नामक अर्थप्रकृति है ।

पताका- प्रकरी - x

कार्य -

नवमालिका नाटिका में राजा विजयसेन और नवमालिका का मिलन प्रधान साध्य होने से यहाँ कार्य है ।

अवस्था -

आरम्भ -

नवमालिका में तदादेशव्यतिरेकेण नाममस्मिन्विधानामुपसर्पणावसर: नीति विधि ने इस वाक्य द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है ।

प्रयत्न -

नवमालिका नाटिका के तृतीय अङ्क में सारसिका तथा विदूषक(चन्द्रिका) की युक्ति से राजा विजयसेन और नवमालिका के सम्मिलन का प्रयत्न किया जाता है अत: यहाँ प्रयत्न नामक अवस्था है ।

प्राप्त्याशा -

नवमालिका के तृतीय अङ्क में चित्रफलक के अन्वेषण आदि उपाय होने पर रानी चन्द्रलेखा के रूप में विघ्न की आशङ्का -

'अथ नवदयितायाः सन्निधानं दधानं
प्रमदमदभरार्द्रं विभ्रमं वीक्ष्य देवम् ।
तरुणमरुण्मानां पानमानर्षरक्ष्य
वहलमुपवहन्ती दृश्यते चन्द्रलेखा ।।३० ।।

चन्द्रिका के इस वचन से दिखलाई गई है । इसलिये इस स्थल में कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है ।

नियताप्ति –

फलागम --नवमालिका नाटिका में राजा विजयसेन को नवमालिका का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्व की प्राप्ति नवमालिका नाटिका का फलागम है। अत: यह कार्य को फलागम अवस्था है।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग --

मुख-सन्धि –

नवमालिका नाटिका की प्रस्तावना में नटी की निम्न उक्ति में बीजोत्पत्ति है –

समस्तमपि वीक्षिता विधुकला विजातीव रुक्
न धूर्जटिजटातटान्वयधियं विना भासते।
गुणप्रगुणतामृतामपि विलक्षणाज्ञप्तये
महाजनपरिग्रहा: किल सहायमान्वते ।।१८ ।।

उपक्षेप –

नवमालिका में प्रथम अङ्क की प्रस्तावना में ही नटी की निम्न उक्ति द्वारा बीजन्यास कर दिया गया है। उसका कार्य विजयसेन एवं नवमालिका को मिला देना है। बीज रूप व्यापार की सूचना नटी की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है अत: उपक्षेप नामक मुखाङ्ग है –

समस्तमपि वीक्षिता - ..... सहायमान्वते ।। १८ ।।

परिकर –

नवमालिका में नीतिनिधि फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है। इसकी सूचना नीतिनिधि की निम्न उक्ति द्वारा होती है --देवदेशात्...... दण्डकारण्यमेच्छत् ।।१९ ।।

तत्र च विधिवशेन–

तत्रार्या वनदेवतामिव नवोद्भिन्ने स्थिता यौवने
कन्यां कामपि कन्ययो: सवयसीर्मध्ये स्थितामन्ययो: ।
दृष्ट्वा तन्मुखतस्तदीयकमितुस्साज्यमाम्रेडितं
श्रुत्वा दिव्यसरस्वतीरितवरं दित्सानि तां स्वामिने ।।१।१०।।

विलोभन -

नवमालिका में देवी चन्द्रलेखा के नासिकारत्न में नवमालिका का प्रति-बिम्ब देखकर राजा उसके गुणों का वर्णन करते हुये कहते हैं -

देव्या मया परिजने परिचीयमाने
नेयं न तावदियमन्यतमापि काचित् ।
एतद्वि भूषणमणिप्रतिबिम्बिताङ्गी
दिव्याङ्गना रतिरिव स्फुरतीति चित्रम् ।।१।२६।।

अत: राजा की इस उक्ति में विलोभन है ।

युक्ति -

प्राप्ति -

नवमालिका में राजा चन्द्रलेखा के नासिकारत्न में नवमालिका के प्रति-बिम्ब को देखकर कहता है -

विना बिम्बं तावत्प्रभवदनुबिम्बं न घटते
न चारोप: शक्य: प्रथममगृहीते विषयिणि ।
मनोजन्यं नेदं गतिमनुविवधे नयनयो:
परिच्छेत्तुं नैव प्रभवति मन: किंचिदपि (मे) ।।१।३० ।।

यहाँ पर राजा को सुख की प्राप्ति होने से प्राप्ति नामक मुखाङ्ग है ।

समाधान-विधान -

परिभाव - नवमालिका में राजा देवी चन्द्रलेखा द्वारा नवमालिका को छिपाये जाने पर भी नवमालिका को चन्द्रलेखा के नासिकारत्न में देखकर

कर आश्चर्यपूर्वक कहता है --

देव्या मया परिजने .... चित्रम् ।।१।२६ ।।

अत: परिभावना नामक मुखाङ्ग है ।

उद्भेद --

नवमालिका में राजा नवमालिका को चन्द्रलेखा के नासिकारत्न में देख लेता है अत: गूढ का भेद हो जाता है । राजा की निम्न उक्ति में उद्भेद नामक मुखाङ्ग है - राजा- (स्वगतम्) दर्शनं खलु सैव रत्नभाजनत्वं पुनरासादनीयम् ।

करण --

नवमालिका नाटिका में राजा की निम्न उक्ति के द्वारा भावी अङ्क में वर्णित निर्विघ्न दर्शन प्रयत्न के आरम्भ की व्यंजना कराई गई है अत: करण नामक मुखाङ्ग है - राज्य- अमुनाप्रसङ्गेन निक्रान्त आराम: । तत: प्रतिज्ञा-त्वमन्त: पुरं देवि । वदमपि कथानुरूपं सम्यग्विभाव । ।

भेद--

प्रतिमुख सन्धि --

नवमालिका नाटिका में विजयसेन और नवमालिका के (भावी) समागम के हेतुरूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है उसे द्वितीय अङ्क में चन्द्रिका और सारसिका जान जाती हैं । इसलिये वह कुछ कुछ प्रकट हो जाता है तथा तृतीय अङ्क में चित्रफलकवृत्तान्त के कारण चन्द्रलेखा के द्वारा कुछ कुछ गृहीत हो जाता है । इस प्रकार बीज के अङ्कुर का दृश्य है और कुछ अदृश्य रूप में उद्भिन्न होना प्रतिमुख सन्धि है ।

विलास --

नवमालिका में विजयसेन नवमालिका के सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और नवमालिका भी राजा के सौन्दर्य को देखकर उन पर अ

आसक्त हो जाती है । इस प्रकार दोनों का परस्पर अनुराग होने से यहाँ विलास है । इसकी व्यंजना नवमालिका की निम्न उक्ति से होती है - सखि, विषयान्तरासक्तमानसत्वेन सहसा न संस्मरामि । अनुसंधास्ये तावत् ।

परिसर्प -

नवमालिका के प्रथम अङ्क में देवी के नासिकारत्न में राजा जब नवमालिका का प्रतिबिम्ब देख लेता है तब बीज एक बार दृश्य हो गया परन्तु द्वितीय अङ्क में राजा पुन: नवमालिका की खोज करते हुये विदूषक से पूछते हैं- राजा- (तत्कराङ्गुलिच्छिद्रय दृष्ट्वा सहर्षम्) कथं देवी परिचारिकेयम् (प्रकाशम्) वयस्य कथय के हेतुः ।

विधूत०

नवमालिका नाटिका में नवमालिका का अनुराग बीज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है । कामपीडा संतप्त नवमालिका कहती है - नवमालिका (सलज्जम्) सखि सारसिके, किमेवं मामुपहससि ।

शम -

नवमालिका में जब नवमालिका अपने प्रति राजा की रति जान लेती है तब उसकी अरति शान्त हो जाती है क्योंकि उसे विजयसेन की प्राप्ति की आशा हो जाती है । यह शम राजा की इन पंक्तियों से स्पष्ट है - राजा- (स्वगतम्) कथं परमार्थेऽपि परिहासबुद्धि: ।

नर्म --

नर्मद्युति - नवमालिका की निम्न पंक्तियों में द्युति के द्वारा अनुरागबीज उद्घाटित हो रहा है, यहाँ परिहास से उत्पन्न द्युति पाई जाती है - राजा- सखीभिर्भि: .... तानि ।। ३।२३ ।।

नवमालिका - महाराज ,किमिवापि मामेवं ब्रूनोषि ।

प्रगमन- नवमालिका में विदूषक व राजा के परस्पर उत्तरोत्तर वचन अनुराग बीज को प्रकट करते हैं अत: यहाँ प्रगमन है । प्रगमन की व्यंजना श्रीवत्स व राजा की इस

बातचीत से हो रही है -

विदूषक : - न ज्ञायते प्रियवयस्यो ऽपि तेया लोकितो न वेति ।

राजा- न खलु परमात्मवृत्यो गुणाः परप्रेक्ष्या भवितुमर्हन्ति ।

निरोधन -

नवमालिका में नवमालिकासमागम राजाका अभीष्ट हित है किन्तु सारसिका देवी के आगमन की सूचना देकर उसमें अवरोध उत्पन्न कर देती है अतः यहाँ निरोधन है जिसकी व्यंजना राजा और सारसिका की निम्न उक्ति से हो रही है - सारसिका देव, सत्यं देवी आगच्छति । राजा- (विलोक्य) अहो संवादः ।

पर्युपासन -

नवमालिका में विजयसेन और नवमालिका के परस्पर मिलन से रानी चन्द्रलेखा क्रुद्ध होकर जाने लगती हैं और राजा उनका अनुनय करते हैं । इसकी व्यंजना राजा की निम्न उक्ति में हुई है - राजा - (उत्थाय) देवि,

वस्तुस्थिताववितथा प्रतिभासमाने

सत्यन्यथैव बलवत्-सहसा द्वितीयम् ।

भावालसत्स्मितसुधारससान्द्रताना-

मर्थी जनोऽपि तव तन्वि...... यत् ।।३/३४ ।।

पुष्प -

नवमालिका में विशिष्ट वाक्यों द्वारा बीजोद्घाटन किये जाने के कारण विदूषक और राजा की निम्न उक्ति में पुष्प की सूचना की गई है - विदूषकः - .... इदानीं....... एतस्या त्वरितं हृदयं संवृत्तम् । राजा- किमुच्यते इदानीमिति -

मुक्तावलीलोहितमान्तराले देव्यास्तदानीमनुबिम्बितायाम् ।

तस्यां समासज्यदृशौ मदीये नेदीयसौ तां परितः प्रतीतः ।। २।६

उपन्यास — ×

वज्र — नवमालिका में विजयसेन और नवमालिका दोनों के परस्पर मिलन की बात जानकर देवी चन्द्रलेखा क्रुद्ध होती हुई कहती हैं - देवी - आर्यपुत्र, उपक्रान्त-विरुद्धं खल्विदानीं प्रियेति आमन्त्रणम् ।'

वर्णसंहार — ×

गर्भसन्धि —

नवमालिका नाटिका के तृतीय अङ्क में नवमालिका के अभिसरण के उपाय से राजा को फलप्राप्ति सम्भव हो जाती है किन्तु चन्द्रलेखा के आगमन द्वारा उसमें पुन: विघ्न उपस्थित होता है अत: एक बार फलप्राप्ति के बाद पुन: विच्छेद होता है फिर विघ्न के निवारण के उपाय तथा फलहेतु का अन्वेषण किया जाता है । अत: तृतीय अङ्क में गर्भसन्धि है ।

अभूताहरण —

मार्ग — नवमालिका में गोपनीय ढङ्ग से होने वाले नवमालिका समागम की सूचना देकर विदूषक रौहिणायन राजा को नवमालिका-समागम का निश्चय करा देता है - विदूषक: - युष्माकं सेवाप्रसादनपरिचिता परिसर्पिता एषा ।

रूप-उदाहरण —

क्रम — नवमालिका में विजयसेन नवमालिका के समागम की अभिलाषा ही कर रहा था कि नवमालिका आ जाती है अत: क्रम है - राजा - वयस्य, अनया विहित प्रवेशै रेवास्माभिरित,.... .... रहस्य (रह:) विलसितान्युपमवितव्यानि तदलं तरलया । इतने में ही विदूषक नवमालिका के आगमन की सूचना दे देता है ।

संग्रह —

नवमालिका के प्रथम अङ्क में राजा नवमालिका का समागम कराने वाले विदूषक को साम व दान से सङ्ग्रहीत करता है अत: संग्रह है - राजा - (विहस्य कण्ठादवतार्य रत्नवलयं ददाति ।)

अनुमान –

नवमालिका नाटिका में राजा नवमालिका से प्रेम करने के कारण प्रकृष्ट प्रेम से स्खलित हो गया है अत: चन्द्रलेखा की मन:स्थिति का जो अनुमान करता है, उसकी सूचना निम्न पंक्तियों द्वारा हुई है –

लोकान् .... ।।३-२४।। नारीणां ... सुधादीधिति:।।३।२५

अधिबल –

तोटक –

नवमालिका नाटिका में नवमालिका समागम में विघ्न उपस्थित करते हुये चन्द्रलेखा क्रुद्ध वचन के द्वारा विजयसेन की इष्टप्राप्ति को अनिश्चित बना देती है अत: चन्द्रलेखा की इस उक्ति में तोटक है –

देवी- आर्यपुत्र, उपक्रान्तविरुद्धं खल्विदानीं प्रियेति आमन्त्रणम् ।

तदहं गमिष्यामि न युज्यते । अस्माकं अन्तरायं भवितुम ।

उद्वेग - सम्भ्रम –

आक्षेप – नवमालिका में राजा की निम्न उक्ति से यह स्पष्ट होता है कि नवमालिका प्राप्ति चन्द्रलेखा की प्रसन्नता पर ही आश्रित है । इसके द्वारा विजयसेन गर्भबीज को प्रकट कर देता है अत: यहाँ आक्षेप है - राजा-

तदत्र देवी प्रसादनमेव प्राप्त कालं पश्याम: ।

अवमर्श सन्धि –

नवमालिका के चतुर्थ अङ्क में प्रभाकर नाम के तपस्वी द्वारा राजा को दिव्यरत्न दिये जाने वाले प्रसंग में अवमर्श सन्धि है क्योंकि पतिप्रतिकूला होने के कारण चन्द्रलेखा द्वारा उसे उठाने में असमर्थ होने पर नवमालिका के प्रति चन्द्रलेखा ~~द्वारा उसे उठाने में असमर्थ होने पर नवमालिका के प्रति चन्द्रलेखा~~ को अनुराग हो गया है अत: देवी रूप उपाय के अभाव से फलप्राप्ति निश्चित हो गई है ।

अपवाद -

नवमालिका में विजयसेन नवमालिका के प्रति चन्द्रलेखा कृत व्यवहार को सुनकर उसके दोष का वर्णन करता है अत: यहाँ अपवाद है - (राजा- (स्वगतम्) अपरिहानीं देवी तस्या नवमालिकाया: मया सर्म समागमप्रतिषेधं न कुर्यात् ।

संफेट-विद्रव-द्रव - x

शक्ति - नवमालिका में निम्न पंक्ति में नवमालिका का लाभ का विरोध करने वाली चन्द्रलेखा के क्रोध को शांति का सङ्केत मिलता है अत: यह शम है - मधु-माधवी किमिति उभयं ननु देवीप्रसादेन ।

प्रसङ्ग -

छलन - नवमालिका में प्रभाकर नाम का तपस्वी चन्द्रलेखा को पतिप्रतिकूला होने के कारण उसको रत्न उठाने में असमर्थता दोष बताकर उसकी अवज्ञा करता है अत: अवमान के कारण छलन नामक अवमर्शाङ्ग है ।

व्यवसाय -

नवमालिका के चतुर्थ अङ्क में प्रभाकर नामक तपस्वी दिव्य रत्न के द्वारा विजयसेन के हृदय में स्थित नवमालिका के दर्शन अनुकूल मक्ती शक्ति को प्रकट करता है अत: उस प्रसङ्ग में व्यवसाय नामक अवमर्शाङ्ग है ।

विचलन - नवमालिका में नीतिनिधि निम्नलिखित उक्ति में अपने गुणों का कीर्तन करता है अत: विचलन नामक विमर्शाङ्ग है - नीतिनिधि: - < <

तदेवेद कन्याश्रयमभिहितं यद्भगवता
मया देवीहस्ते यदिह चिरमन्वय निहिता ।
तथाप्यन्यत्रान्यत्मर्मालितात् किंवमयति
प्रतीपं दृष्ट्वापि क्वचिदपि....... कृतम् । ४।१७

आदान - x

निर्वहण सन्धि - नवमालिका नाटिका के चतुर्थ अङ्क के अन्त में नवमालिका देवी प्रतीहारी, अमात्य सुमति, राजा, विदूषक, नीतिनिधि (मंत्री) आदि के

कार्यों (अर्थों) का, जो मुखसन्धि आदि में इधर-उधर बिखरे पड़े थे, राजा के ही कार्य के लिये समाहार होता है। अत: निर्वहण सन्धि है।

सन्धि --

नवमालिका नाटिका के चतुर्थ अङ्क में अमात्य सुमति नवमालिका को पहचान लेते हैं और सुमति राजपुत्रि। कथमीदृशीमवस्थामनुभवसि ?' ऐसा कहने पर राजा को भी उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो जाता है -

राजा - कथं परम्परानुवर्तमानमूर्धाभिषिक्तवंशप्रभवस्याङ्गराजस्य हिरण्यवर्मणो दुहितेयम् ? यहाँ नायिका रूप बीज की उद्भावना की गई है अत: सन्धि है।

विबोध --

नवमालिका नाटिका के चतुर्थ अङ्क में नवमालिका को पहचानकर उसके विषय में देवी चन्द्रलेखा से पूछते हैं, अत: निम्न वार्तालाप के द्वारा नवमालिका रूप कार्य की फिर से खोज होने के कारण विबोध नामक निर्वहणाङ्ग है -

सुमति : - देवि। कुत: पुनरागमो स्या - ? देवी - अमात्य जानाति।

नीतिनिधि : - दिग्विजयप्रसङ्गेन दण्डकारण्ये प्रविष्टेन मया सखीभ्यां सहितेयमासादिता।

ग्रन्थन - निर्णय नवमालिका में नीतिनिधि की निम्न उक्ति राजा के नवमालिका लाभ का उपसंहार कर देती है -

नीतिनिधि-ततो देवस्य साम्राज्यकामनया देव्या अधिवेदन निबन्धन-निर्वेदपरिजिहीर्षया च विशेषमनाख्यायैव देवी हस्ते निक्षिप्ता।

परिभाषा --

नवमालिका नाटिका में इस स्थल पर अन्योन्यवचन के कारण परिभाषण नामक निर्वहणाङ्ग है - देवी - अमात्य। एतावतो नुतापस्य कारणम्.....
अहं निर्मिता। सुमति: - देवि। नेदमनुशयस्थानम्।

विरहस्य सुहृज्जनेन सार्द्धं
  निदधानौ भवदीयसन्निधाने ।
स्वजनेन समं वियोगमस्या
    विधिरात्यन्तिमादधे न तावत् ।।४।२६ ।।

प्रसाद - ×

आनन्द - नवमालिका में देवी चन्द्रलेखा की (प्रकाशम्) आर्यपुत्र परिणीयतामेषा किं विलम्बेन ।' यह अनुमति मिलने पर राजा - यथाज्ञापयति देवी' कहकर ईप्सित रत्नावली का पाणिग्रहण करते हैं । सम्म-

समय-कृति -×

भाषण -

नवमालिका में विजयसेन की यह उक्ति उसके काम, अर्थ, मान आदि की द्योतक है - राजा एतदुपरमपि प्रियमस्ति । यत: -

भातृ......... क्लेशमवेक्ष्य संभावयन्स्यात्वयं
निर्बध्यानुशयं स्वयं परिणयं देव्या वयंकारिता: ।
सम्बन्धोऽपि हिरण्यवर्मणि चिरं भूय: स्थिरत्वंगत:
स्थाणौ दिव्यगिरा विधेय: गिरा जातापि राजेन्दिरा ।।४।३४

पूर्वभावा-उपगूहन -×

काव्यसंहार -

नवमालिका नाटिका में नीतिनिधिके देव । किन्तो भूय: प्रियमुपकरोमि ? इस वाक्य के द्वारा नाटिका के काव्यार्थ का उपसंहार होने से यहाँ काव्यसंहार नामक निर्वहणाङ्ग है ।

प्रशस्ति -

नवमालिका में भरतवाक्य के द्वारा शुभ की आशंसा होने से प्रशस्ति है -

धर्मं भृत्यूदितं द्विजप्रभृतयो वर्णा भजन्तां निजं
भूपाद्विजमानतां विजहतु त्यक्तोपतापा: प्रजा: ।
सौहित्य हविषा वहन् हरिद्यो यच्छन्त्वभीष्टं
जीयासु पुरंध्रामुर्वं सहृदया विधासु लब्धोपया: ।।४।३५

अर्थोपक्षेपक -

विष्कम्भक -

नवमालिका नाटिका में नाटिकाकार ने प्रथम अङ्क में प्रस्तावना के अनन्तर विष्कम्भक की योजना की है । इसमें नीतिनिधि नामक मध्यम पात्र का प्रयोग हुआ है । मध्यम श्रेणी का पात्र होने से यहाँ शुद्ध विष्कम्भक है । अत: संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

इसमें राजा के अमात्य नीतिनिधि द्वारा नाटिका की पूर्वकथा का आभास दिया है । अवन्तिनरेश विजयसेन का मन्त्री नीतिनिधि दिग्विजय के लिये जाता है । वह विधिवश दण्डक वन में सखियों के साथ आई हुई किसी कन्या (नवमालिका) को देखता है । राजा के सार्वभौमत्व की इच्छा से उसमें तीनों लोकों की सम्राज्ञी के लक्षणों को देखकर वह उसको सखियों के साथ देवी चन्द्रलेखा के संरक्षण में अन्त:पुर में रख देता है, जिससे राजा उसे देखकर उसके प्रति आकर्षित हों ।

इन्हीं भूत तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में शुद्ध विष्कम्भक की योजना की गई है ।

नाटिका के चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में भी दूसरे विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें कंचुकी नामक मध्यम पात्र का प्रयोग हुआ है । शुद्ध विष्कम्भक है और संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

विष्कम्भक के प्रारम्भ में कंचुकी प्रविष्ट होकर प्रभातप्राया रजनी की सूचना देता है । तदुपरान्त वह सूचित करता है कि देवी द्वारा आज्ञा की गई है कि

सारसिका और चन्द्रिका के साथ नवमालिका का कुछ दिनों तक मिलन न हो सके। अतः मेरे द्वारा तीनों को अन्तःपुर के प्रकोष्ठ में पृथक् पृथक् रखा जायगा। वह देवी की निष्ठुरता और नवमालिका के गुणों को सोचकर नवमालिका के कल्याण की कामना करता है। वह सूर्योदय के वर्णन द्वारा राजा विजयसेन के गुणों का वर्णन करता है। इतने में राजा को सम्मुख देखकर वासवदत्ता को प्रसन्न करने के उपाय से चिन्तित और नवमालिका के विरह में क्षीण राजा की दशा का वर्णन करता है। इस प्रकार यहाँ पर शुद्ध विष्कम्भक द्वारा भावी कथांशों की सूचना दी गई है।

प्रवेशक –

इस नाटिका में द्वितीय अङ्क के बाद तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में प्रवेशक की योजना की गई है। कस्तूरिका नामक नीच स्त्री पात्र की योजना की गई है। चन्द्रिका उपवन में प्रविष्ट होकर नवमालिका की खोज करते हुये उसके विषय में सूचित करती है –

> औत्सुक्येनान्तरार्धादविरकलिततया शून्यमेवोल्लिखन्ती
> बाह्यानामिन्द्रियाणां प्रति निजविषयं वृत्तिजातोपरोधात्।
> न स्वातन्त्र्येण मार्गं नयति विषयितां नो पदं पूर्वदेशात्
> उत्क्षिप्य पूर्वदेशे क्षिपति न च मनाङ्मन्मथावेशदोषात्॥३।१

तदुपरान्त नेपथ्ये द्वारा 'सखि' दर्शय तत्प्रदेशम्' की सूचना दी जाती है। इसमें स्त्री पात्र का प्रयोग होने पर भी प्राकृत भाषा का प्रयोग नहीं किया गया है अपितु संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

—

मलयजाकल्याणम् --

नान्दी -

मलयजाकल्याणम् नाटिका आरम्भ करने के पूर्व उसकी निर्विघ्न समाप्ति के लिए देवता आदि की स्तुति किये जाने के कारण निम्न श्लोक में नान्दी पाठ है।

गवार्थं हस्ताग्रे गहनभुवि गोवर्धनगिरेः

.... किंचित् साचि प्रणामितमुखा वक्षसि वधूम्।

कटाक्षैरास्तृण्वन्स्तर्णगिरि....... पिशुनैः

किशोरो गोपो वः किसलयतु कल्याणमनिशम् ।।१।।

सूत्रधार -

प्रस्तुत नाटिका की प्रस्तावना में सूत्रधार द्वारा अभिनेय रचना और नाटककार का परिचय दिया गया है -

सूत्रधारः --दाशरथिवंशदीपस्य नरसिंहसूरेरात्मसम्भवेन वीरराघवेण ग्रथितं मलयजाकल्याणं नामोपरूपकम् (नाटिकाम्)

साथ ही सूत्रधार नटी के साथ वार्तालाप करते हुये दाक्षायण और वैवर्धन नामक दो तापसकुमारों के प्रवेश की सूचना भी देता है - सूत्रधारः - (पुरोऽवलोक्य) कावपि तापसकुमारकाविःतामुखमभिवर्तेते।

प्रस्तावना -

प्रस्तुत नाटिका में पारिपार्श्वक तथा नटी सूत्रधार के साथ विचित्र वाक्यों द्वारा इस प्रकार बातचीत करते हैं कि जिससे प्रस्तुत कथा की सूचना मिल जाती है -

पारिपार्श्वकः - किं तद् रूपकमास्थितास्तत्रभवन्तः ?

सूत्रधार :-- दाशरथिवंशदीपस्य नरसिंहसूरेरात्मसम्भवेन वीरराघवेण ग्रथितं मलयजाकल्याणं नामोपरूपकम् (नाटिकाम्)।

नटी- तथा (इति गायति)

रञ्जापि लोकानां पुरस्थित एव पूर्वसन्ध्याया: ।
स्पृशति करै: नलिनीं ईषत्सम्मिन्नकुड्मलां राजा ।।५।।

अत: यहाँ प्रस्तावना का कथोद्घात् नामक भेद है ।

अर्थप्रकृति -

बीज -

मलयजा नाटिका के नृत्य का कार्य राजा तथा मलयजा का मिलन करा देता है जो सूत्रधार को अभीष्ट है । नाटिका की प्रस्तावना में ही सूत्रधार की यह चेष्टा बीज के रूप में रखी गई है । सूत्रधार ~~की यह चेष्टा बीज के~~ और नटी की निम्न उक्ति में बीज का सङ्केत है - नटी - " " "

रञ्जापि लोकानां पुरस्थित ---------- राजा ।।५।।

बिन्दु -

मलयजा० नाटिका में द्वितीय अङ्क में एक राजपुरुष महाराजी के निर्देश से वीणावादन द्वारा प्रियाल वृक्ष को विलसित करने पर अभीष्ट प्राप्ति का सङ्केत देते हुये उसे उसकी वीणा देकर चला जाता है । इससे कथा में विशृङ्खलता आ जाती है । इसे शृङ्खलाबद्ध करने के लिये मलयज द्वारा वीणावादन का प्रसंग उपस्थित किया गया है -

देवराज: --सखे, उपस्थितं श्रवणमधु ।

विदूषक :-- विश्रब्धं पिब ।

मलयजा- सखि, कस्मात् चिरायसे ।

कौलिका- हला यदि त्वं पुष्पलक्ष्मीमुत्पादयसि तदा तव फलसिद्धौ न संशय: ।

मलयथा- यथा यूयं आज्ञापयथ ।

पताका-

प्रकरी - मलयजा० के चतुर्थ अङ्क में लेखवाह द्वारा प्रतिपक्षियों के पराजय

की जो सूचना दी गई है वह प्रकरी है ।

कार्य -

मलयजा० में तोण्डीर देश के महाराज देवराज और मलयजा का मिलन ही प्रधान साध्य है ।

अवस्था -

आरम्भ - मलयजा० नाटिका में वेवधन के तत् खलु भगवतोयैथानियोगमनुतिष्ठाव :' इन शब्दों द्वारा कार्य का आरम्भ दिखलाया गया है ।

प्रयत्न -

मलयजा० नाटिका में राजा से मिलन का उपाय मलयजा द्वारा वीणा-वादन से प्रियाल वृक्ष को पुष्पित करना प्रयत्न है ।

प्राप्त्याशा -

मलयजा० नाटिका के तृतीय अड़्०क में मलयजा के गोपनीय ढंग से लतागृह में उपस्थित करके प्रियवयस्य का संगम आदि उपाय होने पर महादेवी के रूप में विघ्न की आशंका (उत्थाय विलोक्य च) हन्त ! गतैव वामोरू : । कथं प्रतिसमाधेयमिदं संवृत्तम् । प्रियवयस्यो वापि न निर्गच्छति ।' देवराज के इस वचन से दिखलाई गई है अत: यहाँ पर कार्य की प्राप्त्याशा अवस्था है ।

नियताप्ति -

मलयजा० के चतुर्थ अड़्०क में महादेवी की प्रसन्नता से महादेवी रूपी उपाय के दूर हो जाने पर फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है - मलयजा- (अपवार्य) हला, अपि सत्यं ममतात: यथा प्रतिपन्नमिति निवर्तयति ।

केलिका- अत्र क: संशय: ? -

अत: यहाँ कार्य की नियताप्ति अवस्था है ।

फलागम - मलयजा० में राजा को मलयजा का लाभ और तज्जनित चक्रवर्तित्व-प्राप्ति नाटिका का फलागम है इसलिये यह कार्य की फलागम अवस्था है ।

सन्धि-सन्ध्यङ्ग -

मुखसन्धि -

मलयजा० नाटिका की प्रस्तावना में नटी की निम्न उक्ति में बीजोत्पत्ति है - नटी-

रक्षायै लोकानां............ काजा ।।५।।

अत: प्रथम अङ्क में मुख सन्धि है ।

उपक्षेप -

मलयजा० में प्रथम अङ्क को प्रस्तावना में ही नटी की निम्न उक्ति द्वारा बीजन्यास कर दिया गया है । उसका कार्य देवराज एवं मलयजा को मिला देना है । बीज रूप व्यापार की सूचना नटी की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है अत: उपक्षेप नामक मुखाङ्ग है -

रक्षायै लोकानां.............. राजा ।।५।।

परिकर -

मलयजा० में दासायण फल के बीज का बाहुल्य प्रकाशित करते हुये बीजोत्पत्ति को पल्लवित करता है । इसकी सूचना दाक्षायण की निम्न उक्ति द्वारा होती है - दाक्षायण किम । तत्र मलयभूभृत: कन्या वसन्तावतारदर्शनोत्सवाय सखीरणीभि: सार्द्ध धात्रीजनपरिपाल्यमाना सुन्दरीसुन्धुरधारिण्या करिण्या तमेव वनोद्देशमागता ।

परिन्यास-

विलोभन - मल० में मलयजा के गुणों का वर्णन किये जाने के कारण देवराज की निम्न उक्ति में विलोभन है -

देवराज - वयस्य, सत्यमुक्तम् । तथा सति -

अस्या: सृष्टौ भविन्यां कुसुममयशर: शिक्षमाणो नुकल्पं
चक्रे चन्द्राब्जमुख्यां तदनु सुखधुरन्धरींशीमिन्दिरां वा ।
इत्थंकाभ्यासयोगादनिशमुपार्जितांचातुरीं किंचिदाप्त्वा
नूनं तामायताक्षीं निखिलगुणनिधिं सृष्टवान्निस्तुलाङ्गीम् ।।१८ ।।

युक्ति -

प्राप्ति - मल० के द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में राजा को देखकर मलयजा हर्ष के साथ कहती है - हला केरलिके अपि सत्यं स महानुभावस्तथा भवेयथा त्वं भणासि। यहाँ पर मलयजा को सुख की प्राप्ति हुई है अतः प्राप्ति नामक मुखाङ्ग है।

समाधान -

मल० में मलयजा के उद्यान में आने का समाचार महाराज को प्राप्त हो जाता है और महाराज विदूषक के साथ उद्यान की शोभा देखते हुये उसे देखने का प्रयत्न करते हैं। उनकी यह इच्छा बीजागम के रूप में निम्नपंक्तियों से स्पष्ट है -

देवराज : -तेन हि तत्रभवती सन्निधास्यति।

विदूषक : -तन्निकुंजान्तरितो भव। अहमपि तथा करोमि। (इति निकुंजान्तरितो भवतः।)

विधान -

परिभावना -

मल० में मलयजा उद्यान में देवराज को देखकर अपनी सखी केरलिका से आश्चर्य के साथ पूछती है -

मलयजा- हला केरलिके, अपि सत्यं सः महानुभावस्तथा भवेयथा त्वं भणासि।

केरलिका- भर्तृदारिके, ननु भणामि सत्यं तव कृते मन्मथेन सः महानुभावः लक्षितः एव निजशराणाम्।

उद्भेद -

मल० में उद्यान में आई हुई मलयजा को राजा और विदूषक छिपकर देख लेते हैं अतः गूढ का भेद हो जाता है। विदूषक और राजा की निम्न उक्ति में उद्भेद नामक मुखाङ्ग है - विदूषकः - (लतावलयं प्रविश्य) वयस्य, प्रेक्षस्व प्रेक्षस्व। किं सा तत्रभवती ? देवराजः - (दृष्ट्वा। सहर्षम्) -

सैषा चकोरनेत्रा सख्योर्मध्ये विभाति सेव ।
स्थिरयोः सौदामिन्योर्मध्ये दुग्धांशुलेखेव ।।६ ।। द्वितीयाङ्क

करण –

केरलिका और मंजरिका की निम्न उक्ति में करण नामक मुखाङ्ग है –

सख्यौ –सखि, समाश्वसिहि समाश्वसिहि । स एव महाभागो तथा भविष्यति यथा त्वं तस्य ।

भेद

प्रतिमुख सन्धि –

मलयजा नाटिका में देवराज और मलयजा के (भावी) समागम के हेतुरूप जिस अनुराग बीज को बोया गया है उसे द्वितीय अङ्क में विदूषक तथा केरलिका एवं मंजरिका जान जाते हैं और मलयजा द्वारा प्रियाल के विकसित पुष्प को अपनी माता को अर्पित करने के लिये रनिवास चले जाने के कारण व्यवधान हो जाता है । इस प्रकार बीज के अङ्कुर का कुछ दृश्य और कुछ अदृश्य रूप में फूट पड़ना प्रतिमुख सन्धि है ।

विलास –

मलयजा में देवराज मलयजा के अङ्गलावण्य और सौन्दर्य को देखकर उस पर अतिशय अनुरक्त हो उठते हैं और मलयजा भी राजा के सौन्दर्य को देखकर उन पर आसक्त हो जाती है । इसकी व्यंजना राजा की निम्न उक्ति से होती है –

राजा – (दृष्ट्वा सहर्षम्)

सैषा चकोरनेत्रा .... ।।६।।

परिसर्प —

विधूत —

मल० में मलयजा का अनुराग बीज अरति के कारण विधूत कर दिया गया है। कामपीडासंतप्त मलयजा कहती है - मलयजा- तस्य वा महाभागस्य हृदयमथापि न हर्षितं की दृशो वा तस्य प्रेमावलम्बितम्। अथवा केन जन्मान्तरपरिणामेन स्त्रीजन्माप्तवत्यस्मि।....... ।

शम —

मल० में जब मलयजा सखियों द्वारा अपने प्रति राजा की रति जान लेती है तो उसकी अरति शान्त हो जाती है क्योंकि उसे राजा की प्राप्ति की आशा हो जाती है - सख्यौ-सखि समाश्वसिहि । स एव महाभागो तथा भविष्यति यथा त्वं तस्य। देवराजः - सखे, पल्लवितमिव प्रणायकल्पलतया।

नर्म- नर्मद्युति —

प्रगमन —

मल० में विदूषक व राजा, केरलिका व मलयजा के परस्पर उत्तरोत्तर वचन अनुराग बीज को प्रकट करते हैं अतः वहाँ प्रगमन है। प्रगमन की व्यंजना विदूषक और राजा की निम्न उक्ति से हो रही है - विदूषकः - स्थाने खलु तत्रभवतीवयस्यहृदयमधिरोहति। देवराजः-सखे, सविशेषमेवेदं पूर्वदर्शनादत्रभवतीदर्शनम् इदानीम्।

निरोधन —

मल० में तृतीय अङ्क में मलयजासमागम राजा का अभीष्ट हित है किन्तु महादेवी द्वारा उसमें अवरोध उत्पन्न कर दिया जाता है - महादेवी-(सत्वरमुत्थाय) सभ्रूभङ्गम्) साध्वार्य साधु (इति प्रस्थातुमिच्छति।)

पर्युपासन --

मल० में देवराज और मलयजा के परस्पर मिलन से महादेवी क्रुद्ध होकर चली जाती हैं और राजा उनका अनुनय करते हैं। इसकी व्यंजना राजा की निम्न उक्ति में हुई है - देवराज: - (प्रणत एव स्वगतम्)

यद्देव्या स्विरचित्तसम्भ्रममहाशेषोन्नयव्याकुलं
मां खेदेन भयेन वंचितवती सा नेत्रयोर्वलैः ।
यच्चैवं कुटिलभ्रूकोपकलुषा तूर्णं प्रतिष्ठासति ।
प्रायस्तेन च तेन चाहमधुना हृष्यामि शुष्यामि च ।।११।।

(प्रकाशम्) - प्रसीदतु तत्रभवती ।

पुष्प --

मल० में विशिष्ट वाक्यों द्वारा बीजोद्घाटन किये जाने के कारण राजा एवं विदूषक की निम्नउक्ति में पुष्प की सूचना दी गई है - देवराज -सैषा चकोरनेत्रा......... ।

विदूषक -- स्थाने खलु तत्रभवती वयस्यहृदयमधिरोहति ।

उपन्यास -- x

वज्र -- मल० में महादेवी उन दोनों के परस्पर मिलन के बारे में जानकर क्रुद्ध होती हुई राजा को कटु वचन कहती हैं। अत: वज्र है --महादेवी -(सत्वरमुत्थाय । सभ्रूभङ्गम्) साध्वार्यं साधु । < < (मुखं विवृत्य पश्यन्ती) कथं ब्रह्मबन्धुरप्यत्र । अथवा क: त्वां विना अस्य । < < साधु ज्ञायस्यस्य व्युष्टिमिति । (इति देवराज माक्षिप्य विकटपदं गच्छति) ।

वर्णसंहार -- x

गर्भसन्धि --

मल० नाटिका के तृतीय अङ्क में गर्भसन्धि है क्योंकि यहाँ मलयजा के अभिसरण के उपाय से राजा को कुछ समय के लिये फल की प्राप्ति हो जाती है

किन्तु महादेवी के द्वारा पुन: उसमें विघ्न उपस्थित होता है अत: एक बार फल की प्राप्ति के बाद पुन: विच्छेद होता है फिर विघ्न के निवारण के उपाय तथा फलहेतु का अन्वेषण किया जाता है। इस अन्वेषण की व्यंजना राजा की निम्न उक्ति द्वारा हो रही है - देवराज: हन्त, आकस्मिकोऽयमुपघात:। अन्यदुपक्रान्त मन्यदापतितम्। किं करोमि ? का गति।

अभुताहरण - मल० में मलयजा को एकान्त रूप से लतागृह में उपस्थित करके राजा का सड्०ग मउसके साथ कराया जाता है और महादेवी द्वारा मंजरिका का वेष धारण करके लताकुंज में प्रवेश किया जाता है अत: यहाँ अभुताहरण नामक सन्ध्यड्०ग है।

मार्ग -

मल० में एकान्त रूप से लतागृह में होने वाले मलयजा-समागम की सूचना देकर विदूषक मलयजा समागम का निश्चय राजा को करा देता है --

विदूषक :-(स्वगतम्) बलीयान् खलु उत्कण्ठित: वयस्य:। भवतु आश्वासयामि (प्रकाशम्) वयस्य तथैव भविष्यति। प्रेक्षस्व तावन्नानाविधकुसुमसौरभवासितस्य मन्द मारुतस्य सौभाग्यम्।

रूप -

मल० में नायिका-प्राप्ति की प्रतीक्षा करते समय यह वितर्करूप राजा तथा विदूषक की निम्न उक्तियों में सूचित है -

देवराज: -(निमित्तं सूचयित्वा) प्रियाप्रियव्यतिकर इव तर्क्यते। चिरायते च प्रियतमा। तत् क इव भवितव्यताया: परिणाम: ?

विदूषक : वयस्य आगच्छतीव तत्रभवती।

उदाहृति -

क्रम -- मल० में देवराज मलयजा-समागम की अभिलाषा कर ही रहे थे कि मलयजा

आ जाती है -

विदूषक: -(निपुणां विलोक्य) वयस्य, आगच्छतीव तत्रभवती ।

देवराज:- (पुरो वलोक्य सहर्षम्) अनतिविप्रकृष्टा प्राणेश्वरी (सकरुणाम्)

हन्त महदपराद्धं मया। यत: -

अग्रे .... अदर्धे प्रिया ।।५।।

संग्रह - मल० में महारानी राजा और मलयजा के मिलन को देखकर क्रोधित होती है तब राजा भयभीत हो उठता है किन्तु विदूषक को भय नहीं लगता । उसकी निम्न उक्ति में संग्रह है - विदूषक: (सस्मितम्) वयस्य, न खलु मे स्ति भयम् । यत्त्वया पूर्वमेव देव्या अभयं पारितोषिकं दत्तम् ।

अनुमान -

मल० में मलयजा से प्रेम करने के कारण राजा प्रकृष्ट प्रेम से स्खलित हो जाता है और महादेवी को उनके एकान्त मिलन की बात मालूम हो जाती है अत: राजा अनुमान करता है - देवराज: - (विमृश्य) सखे, सर्वथा केरलिकया प्रदिष्टेन मलय-देशलतामभूताया निदेशशासनम् विपरीतं कृतम् ।

अधिबल -

मल० में महादेवी केरलिका द्वारा मलयजा और राजा के समागम की बात जान लेती है । देवी और केरलिका की निम्न उक्ति द्वारा इसकी सूचना दी जाती है -

महादेवी - एवमत्र वर्तव्यमिति । यथा अद्य चन्द्रोदयात् पूर्व ।

केरलिका- मञ्जरिकाभ्यां सह मलयजा पूर्वैर्युरिव लतागृहमागमिष्यत । महाभाग: अपि तदा सन्निधिं करोत्विति ।

तोटक - मल० में मलयजा-समागम में विघ्न उपस्थित करते हुए महादेवी क्रुद्ध वचन के द्वारा राजा की इष्ट प्राप्ति को अतिरिक्त बना देती है अत: महादेवी की निज उक्ति में तोटक है - महादेवी -(सत्वरमुत्थाय । सभ्रूभङ्गम्)साध्वार्य साधु । (इति प्रस्थातुमिच्छति) ।

उद्वेग--

मल० में महादेवी मलयजा का अपकार करने वाली है । अत: उसकी शत्रु है । जब वह मलयजा समागम को देखकर क्रोध करती है तब मलयजा को भय होता है अत: वह भय से अवनतमुखी होकर राजा को देखती है फिर केरलिका के साथ चली जाती है । अत: यहाँ महादेवी द्वारा किया गया भय उद्वेग है ।

सम्भ्रम -

मल० में मलयजा को देवराज-समागम के समय शङ्का हो जाती है अत: उसकी निम्न उक्ति में सम्भ्रम है ।

मलयजा - सखि, गुरुजन: अस्मिन् कार्ये शङ्कते (इति भयं नाटयति) ।

आक्षेप--

मल० में विदूषक एवं राजा की निम्न उक्ति द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि जामदग्न्य आकर उनके खेद को दूर कर देंगे -

देवराज : - नूनमसौ भगवान् जामदग्न्य: ।

विदूषक: --युज्यते । तस्य नेत्रेणैव उपकार इति त्वयोपालब्ध: आगच्छति ।

निर्वहण सन्धि -

मलयजा० नाटिका में मलयजा, महादेवी राजा, विदूषक, भार्गव, जामदग्न्य, अमात्य, मलयराज आदि सबके कार्यों (अर्थों) को जो मुखसन्धि आदि में इधर उधर बिखरे पड़े थे, राजा के ही कार्य के लिये समाहार होता है । इसकी सूचना भार्गव की निम्न उक्ति द्वारा दी गई है --

भार्गव: --चिराय सफलं न चक्षु: यदनुरूपसम्प्रदानश्लाघनीयं वत्साया: पाणिग्रहण-मङ्गलं द्रक्ष्यामहे ।

सन्धि-विबोध-ग्रथन -

निर्णय -

मल० में भार्गव निम्न उक्ति के द्वारा अपने द्वारा विचारित कार्य के

विषय में वर्णन करते हैं अतः यहाँ निर्णय है ।

भार्गव- अथवा सत्यमेव मातेति यदियमस्यात्मनैव वत्सा मलयजा ज्ञाता (परिक्रम्य समन्तादवलोक्य) एष कल्याणमण्डपः यत्र कृतं पाणिग्रहणं भूयो मङ्गलाय कल्पते । तदेतानेवानेष्यामि ।

परिभाषा -

मल० में निम्न स्थल पर कार्य की सिद्धि के विषय में अन्योन्य वचन के कारण परिभाषण नामक निर्वहणाङ्ग है --

मलयजा- (अपवार्य) हला, अपि सत्यं मम तातः यथा प्रतिपन्नमिति निवर्तयति ।

केरलिका- अत्र कः संशयः ?

प्रसाद -

आनन्द- मल० में भार्गव की अनुमति मिलने पर राजा लज्जापूर्वक मलयजा का पाणिग्रहण करते हैं -

देवराज : --(सलज्जं गृह्णन् सानन्दं स्वगतम्)

तैस्तैर्मनोरथशतैरति वेलजात-
राशंसितस्य सुचिरं सुकृतैरनन्तैः ।
लाभो यमुत्पलदृशः करदण्डिनरत्य
दत्तौ ध्रुवं भगवता भुजतल्लजेन ।।२३ ।।

समय - मल० में महादेवी मलयजा को देखकर सहर्ष उससे कहती है - महादेवी- मलयजां दृष्ट्वा सहर्षम्) एषा त्रैलोक्य लोभनीयरामणीयकस्यार्यपुत्रस्य प्रेमावलम्बनं मलयजा ।

मलयदेवी- एषा दुर्लभविषयाभिलाषिणी वत्सा तव वात्सल्येनाशोचनीया प्रतिपत्तव्या ।

महादेवी- मा खलु युष्माभिरेवं भणितव्यम् । ननु जीवनं मम मलयजा ।

कृति --

भाषण - मल० में मलयराज की निम्न उक्ति उनके काम, मान, अर्थ को द्योतक है -

साधारण्यदृशावरोधविषये दृष्ट्वा त्वयोत्त्यादिकं
जामातुः कथयन्ति केवन न चास्माकं तदर्ह वचः ।
यद्दव्येव यवीयसी रसमपि प्राप्तुं लसत्कौतुकात्
पुण्यैर्नौ स्वरसप्रवृत्तिर्मम गृहे वत्साजनिष्ट स्वयम् ।।२६ ।।

उपगूहन-पूर्वभाव — ×

काव्यसंहार - मल० में देवराज को वर की प्राप्ति होती है -

भार्गव : - देवराज,

जिता राज्ञा म्लेच्छा इति विजयवार्तमथ र्पिता
तथा संख्यापि प्रकृतिमभजद्देव्यो तव ।
इयं वत्सा तुल्यप्रणयरमणीया करगता
प्रियं किन्ते भूयो वयमुपहरामो यदधुना ।।२७।।

प्रशस्ति -

मल० में शुभ की आशंसा होने से निम्न श्लोक में प्रशस्ति (भरतवाक्य) है-
तथापीदमस्तु-भरतवाक्यम् -
आनन्दान् प्रदिशन्तु चेतसि सतां हृद्याः कवीनां गिरः
पुण्येयं नगरी चिरं विजयतां तोण्डीरभूषायिता ।
अत्रासौ वरदः श्रिया विहरतां तत्रादृशैरुत्सवैः
दोषास्तु प्रशमं प्रयान्तु कलिनोद्धृताः प्रजानां हृदि ।।२८।। इति

अर्थोपक्षेपक -

विष्कम्भक -

मलयजा० नाटिका में प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में प्रस्तावना के बाद विष्कम्भक की योजना की गई है । इसमें दाक्षायणी एवं वेवधन नामक मध्यम पात्रों का प्रयोग हुआ है । मध्यम श्रेणी का पात्र होने से यहाँ पर शुद्ध विष्कम्भक है । संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

इसमें दाक्षायण एवं वैवधन द्वारा वर्तमान तथा भविष्य में घटित होने वाले कथांशों की सूचना दी गई है।

मल० के प्रथम अङ्क के विष्कम्भक में वैवधन एवं दाक्षायण कङ्गमंच पर आकर देवराज और नायिका मलयजा के प्रणय की सूचना देते हैं। तोण्डीर देश के अधिपति महाराज देवराज महारानी के साथ मलयदेश में आखेट के लिये आये हुये हैं, इस बात की सूचना दाक्षायण द्वारा विष्कम्भक में दे दी गई है -

दाक्षायण :-

अध्यारुढस्तुरगममृत-स्वच्छेदवश्रियं द्राक्

अग्रे पाणयोर्धनुरिषुवरावादधान:समग्रम् ।

आविष्कुर्वन्नभ (यम) वनैरगन्नदस्वापदेभ्य:

को प्यायातो मलयविपिने (मूर्तिमान्)पुष्पबाण: ।।६।।

नाटिका के विष्कम्भक में ही राजा की मलयजा के प्रति आसक्ति तथा मलयजा की राजा के प्रति आसक्ति की सूचना भी दी गई है। मलयजा की राजा के प्रति आसक्ति दाक्षायण : किंच। तत्र मलयभूपते: कन्या वसन्तावतारदर्शनोत्सववाय सहचारिणीभि: सार्धं धात्रीजनपरिपाल्यमाना सुन्दरी सुन्धुरधारिण्या अर्ण्या तमेव वनोद्देशमागता।

वैवधन:-- यदि सा तमध्यक्षयेत् तर्हि इत्यनङ्गवपभिमार्य प्रपंच: स्यात्।

राजा की मलयजा के प्रति आसक्ति -

दाक्षायण :- ‹ ‹ ।तदेव खलु तत्र -

आत्मानमास्य नयनातिथिमेव कृत्वा

ज्योत्स्नासुधा रसभररतिशीतलै: स्वै:।

सा चन्द्रमूर्तिरिव चन्द्रशिलां प्रगल्भा-

मास्च्योतयत् करणार्द्रमुष्य यून: ।।११।।

इस प्रकार भूत तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये प्रथम अंक के प्रारम्भ में शुद्ध विष्कम्भक की योजना की गई है।

नाटिका के चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में भी एक अन्य विष्कम्भक की योजना की गई है। इसमें पुरुष नामक एक नीच पात्र तथा अमात्य नामक एक मध्यम पात्र की योजना की गई है।

यहाँ पर एक नीच श्रेणी का पात्र तथा दूसरा मध्यम श्रेणी का पात्र होने से शास्त्रीयनियमानुसार मिश्र विष्कम्भक की योजना की गई है। पुरुष द्वारा प्राकृत भाषा तथा अमात्य द्वारा संस्कृत भाषा का प्रयोग हुआ है।

प्रस्तुत नाटक के तृतीय अङ्क के अन्त में महारानी क्रोधावेश में महाराज की ओर ध्यान न देकर चली जाती हैं, महाराज और विदूषक असमंजस्य अवस्था में खड़े रह जाते हैं। चतुर्थ अङ्क के प्रारम्भ में मिश्र विष्कम्भक की योजना द्वारा यह सूचित किया जाता है कि जामदग्न्य ऋषि प्रकट होकर महाराज को आश्वस्त करते हैं और महारानी की अनुकूलता की भविष्यवाणी करते हैं -

अमात्य :-- अहो परिणीर्णं निःश्रेयसेष दैवावलम्बनमस्मन्महाराजस्य यद्भगवान् जामदग्न्योऽपि परमेण वात्सल्येन महाराजमाज्ञापयत् तथा तीण्डीरमण्डलमण्डन-मतिपातितसर्वलोकसामान्यनिर्मलगुणाभवानो देवराजोऽस्मार्कं वत्साया वर इति।

इस प्रकार देवराज तथा मलयजा के विवाहोत्सव के शुभ कार्य की शीघ्रता की सूचना भी इसी विष्कम्भक में दे दी गई है।

इसप्रकार यहाँ पर मिश्रविष्कम्भक द्वारा भूत तथा भावी कथांशों की सूचना दी गई है।

प्रवेशक --

पहला प्रवेशक --

शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में प्रथम अङ्क के बाद और द्वितीय अङ्क के पूर्व प्रवेशक की योजना की गई है। इसमें विष्कम्भक तथा चेटी नामक दो नीच पात्रों का प्रयोग हुआ है। इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है। नीच पात्रों द्वारा

प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी कथांशों को सूचना दी गई है । प्रारम्भ में विदूषक द्वारा प्रमदवन की रमणीयता एवं मलयदेश की माननीयता का वर्णन किया गया है । चेटी द्वारा उद्विग्न राजकुमारी मलयजा के उसी उद्यान में मनोरंजनार्थ आने की भावी सूचना दी गई है —

चेटी —अआणं भट्टिदारिआ कस्सिं वि उब्भूदभावा हिअविण्णा पअमदवणस्स मज्जाणं । ।

(अस्माकं भर्तृदारिका कस्मिन्नपि उद्भूतभावा हृदयोद्विग्ना अस्य प्रमद-वनमध्ये (?) आगमिष्यतीति लताधरान् शोधयितुमिति ।)

साथ ही चेटी द्वारा यह भी पूर्व सूचना दी गई है कि निकुंज की ओट से मलयजा को देखा जाय ।

तदुपरान्त विदूषक प्रियवयस्य राजा को उसका निमित्त बताता है । साथ ही विदूषक प्रमदवन के इस प्रकार के मनोविनोद की सार्थकता की सूचना भी देता है —

विदूषक :—(स्वगतम्) णं पिअवअस्सो एव्व एत्थ णिमित्तं भावेमि (प्रकाशम्) जुज्जइ तारिसीणं पमदवणविणोअणम् । (ननु प्रियवयस्य एवात्र निमित्तं भवेत् (प्रकाशम्) युज्यते तादृशीनां प्रमदवनविनोदनम् ।)

इस प्रकार इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की योजना प्रवेशक में की गई है ।

<u>दूसरा प्रवेशक</u> —

शास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में द्वितीय अङ्क के बाद तृतीय अङ्क के पूर्व प्रवेशक की योजना की गई है । इसमें चेटी तथा वल्लरिका नामक दो नीच स्त्री पात्रों का प्रयोग हुआ है । इसमें प्रयुक्त उक्ति उदात्त नहीं है । नीच पात्रों द्वारा प्राकृत भाषा का प्रयोग हुआ है ।

यहाँ पर प्रवेशक द्वारा वर्तमान तथा भावी कथांशों की भी सूचना दी गई है। प्रवेशक के प्रारम्भ में चेटी तथा वल्लरिका दोनों एक दूसरे का अन्वेषण करती हुई जब मिलती हैं तब वल्लरिका द्वारा चेटी से भर्तृदारिका के विषय में पूछे जाने पर चेटी उद्यान-वृत्तान्त की सूचना वल्लरिका को देती है —

चेटी - पुव्वज् उज्जाणा वुर्त्तं सुमरंती विश्व आणंदपरवसा उव्ववम्मं श्रीविश्र अत्ताणं पेक्खदि। तुहुआणाणाहो कहं चिट्ठइ ?

चेटी द्वारा राजा के विषय में पूछे जाने पर वल्लरिका राजा के विषय में सूचित करती हुई कहती है —

वल्लरिका -(स्वगतम्) एवं एसा भणादि णाहस्स वि विश्रारो विह श्रवलम्बिस्सादि ता अत्थिअं किं वि। होदु जाणिस्सम् (प्रकाशम्) सहि, श्रज्जु्याणं णाहो पुव्वज्जु रत्तिए आरहि श्र श्रुआणेण सह किं कि साणदिं तं एव्व वुत्तन्तं मंतेदि।

तदुपरान्त चेटी राजा के लिये केरलिका द्वारा दी गई पत्रिका को वल्लरिका को दे देती है। वल्लरिका महादेवी की प्रिय दासी है किन्तु वह अपने को मिथ्या रूप से राजा की दासी बताकर पत्र ले लेती और फिर समस्त बात की सूचना जाकर महादेवी को दे देती है। साथ ही यह भी मन में कहती है कि यह सूचना देवी को देकर पारितोषिक ग्रहण करेगी-

चेटी- (पत्रिकां दत्वा) इदं केरलिआए तुह णाहस्स पेसिद।

वल्लरिका- (गृहीत्वा) ण आणामि..... देवीए परिआणम्। सुट्ठु फणिदं मए से णाहस्स परिअणो...... त्ति (प्रकाशम्) सहि, णाहस्सदेमि।

चेटी- अदो अर्थु णाहस्स अहिमदा तुमम्।

वल्लरिका-(स्वगतम्) एदं देवीए णिवेदिअ पारितोसिअं गह्णिस्सं (प्रकाशम्) तां विसज्जअ मम्।

इसके बाद ही महादेवी का प्रवेश होता है और वल्लरिका समस्त बातों की सूचना महादेवी को दे देती है। इस प्रकार इन समस्त भूत तथा भावी कथांशों की सूचना के लिये यहाँ पर प्रवेशक की योजना की गई है।

चूलिका -

मलयजा नाटिका के चतुर्थ अङ्क में मलयजराज द्वारा देवराज के साथ मलयजा का परिणाय कराने के लिये उसको (मलयज) बुलाये जाने की आज्ञा देने पर राजा विदूषक से कहते हैं कि आज सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न हो रहा है। तभी नेपथ्य द्वारा मृदंग ध्वनि होती है और समस्त प्राणी हर्ष प्रकट करते हैं -

(नेपथ्ये मृदङ्गध्वनि: । सर्वे हर्षं नाटयन्ति ।)

इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क में ही पुन: जब मलयजा के पाणिग्रहण का समय आता है तब मलयराज भार्गव को ही अपने कुल के योग क्षेम का निर्वाहक बताते हैं। उसी समय भगवान् पद्मनाभ के प्रसन्न होने आदि की सूचना भी नेपथ्य द्वारा ही दी गई है -

(नेपथ्ये) निर्वर्तयन्नभिमुखं भोजिताश्च प्रकृष्टभोजनैर्ब्राह्मणा भूयांस:, आराधितश्चानेकविधैर्गन्धमाल्यादिभिर्देवता: प्रसन्नश्च सकलजगत् क्षेमङ्कर: पद्मसखायो भगवान् पद्मनाभ: । अत: परम् अत्र भवन्त: प्रमाणाम् ।

नेपथ्य से इस प्रकार की सूचना पाकर सभी हर्षित हो उठते हैं। अत: यहाँ चूलिका नामक अर्थोपक्षेपक है।

इस प्रकार संस्कृत नाटिकाओं में सन्धि सन्ध्यङ्गों के विवेचन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि किसी भी नाटिका में अर्थप्रकृति, अवस्था, सन्धि, तथा अर्थोपक्षेपक के समस्त अङ्गों का विद्यमान् होना आवश्यक नहीं है। नाटिकाकार ने स्वतन्त्र रूप से उसकी योजना की है। वैसे लगभग सभी नाटिकाओं में इसकी योजना एक समान है। कहीं-कहीं असमानता प्रतीत हुई है।

अध्याय- ५

पात्र- विवेचन

बहुत सी रचनायें शास्त्रीय साँचे में पूरी पूरी नहीं ढाली जा सकतीं और उसमें स्वातन्त्र्य कवि की प्रतिभा के कारण है। यही कारण है कि संस्कृत नाटिकाओं के पात्र-विवेचन में नाटिकाकार कभी शास्त्रीय-नियमादि के जटिल बन्धनों से अपनी कला को आबद्ध करके उसकी रमणीयता को हानि नहीं पहुँचाता।

पात्र-विवेचन का सिद्धान्त निरूपण -

नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार सर्व स्वीकृत है और उसका नायक प्राय: धीरललित वर्ग का होता है। नायिका देवी विदूषक तथा अन्य सहायक पात्र भी एक प्रकार से निश्चित साँचे में ढले होते हैं। जैसा कि दशरूपककार ने लिखा है -

.... नाटकान्नायको नृप: । ३।४३।।
प्रख्यातो धीरललित:.......... ।
स्त्रीप्राय .... ।। ४४
देवी तत्र भवेज्ज्येष्ठा प्रगल्भा नृपवंशजा ।।३।४५
गम्भीरा मानिनी, कृच्छ्रान्तद्वशान्नेतृसङ्गम: ।।
नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा ।।३।४६
अन्त:पुरादिसम्बन्धादासन्ना श्रुतिदर्शनै: ।
अनुरागो नवावस्थो नेतुस्तस्यां यथोत्तरम् ।।३।४७
नेता यत्र प्रवर्तेत देवीत्रासेन शङ्कित: ।।३८।।

रत्नावली -

नायक - रत्नावली नाटिका का नायक उदयन धीरललित प्रकृति का नायक है।

वह अपने मंत्री यौगन्धरायण पर राज्य-भार छोड़कर विश्वस्त हृदय से अपने मित्र विदूषक के साथ रानी वासवदत्ता के प्रेम में लीन है। उदयन स्वत: कहता है -

राज्यं निर्जितशत्रुयोग्यसचिवे न्यस्त: समस्तो भर:
सम्यक्पालनलालिता: प्रशमिता शेषोपसर्गा: प्रजा: ।
प्रद्योतस्य सुता वसन्तसमयस्त्वं चेति नाम्ना धृतिं
काम: काममुपैत्वयं मम पुनर्मन्ये महानुत्सव: ।। १।९ ।।

राजा उदयन के चरित्र में प्रेम, विलास कलाप्रियता आदि के दर्शन होते हैं। आरम्भ में वह दक्षिण नायक के रूप में प्रतीत होता है जबकि वह सागरिका (रत्नावली) से प्रेम करता हुआ भी वासवदत्ता को अप्रसन्न नहीं करना चाहता। वासवदत्ता के प्रति उदयन का वास्तविक प्रेम है और उसे वासवदत्ता के प्रति प्रेम पर भी विश्वास है। वासवदत्ता रत्नावली के प्रति उदयन के प्रेम को जानकर जब क्रुद्ध होती है और राजा के पाद-पतन पर भी प्रसन्न नहीं होती तब राजा चिन्तित होकर विदूषक से कहता है -

'प्रिया मुंचत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ
प्रकृष्टस्य प्रेम्ण: स्वलितमविषह्यं हि भवति ।। ३।१५

ऐसा प्रतीत होता है कि सागरिका के प्रति उदयन का प्रेम वास्तविक नहीं अपितु कामयुक्त है क्योंकि जब वह सागरिका के प्रेम में लीन रहता है उस समय वासवदत्ता के आते ही भय से उसका प्रेम समाप्त सा हो जाता है और वह वासवदत्ता के चरणों में गिरकर प्रसन्न करने का प्रयास करता है और रत्नावली के प्रति प्रेम को मिथ्या बताने की चेष्टा करता है। प्रेम की पवित्र भावना उसके इस प्रकार के मिथ्या चरण से दूषित हो जाती है और उदयन वासनायुक्त नायक प्रतीत होने लगता है। जब वह सागरिका को अपने प्रेम पर विश्वास दिलाता है और वासवदत्ता पुन: विघ्न उपस्थित करते हुये आ जाती है तब उदयन पुन: अपने असत्य वचन से वासवदत्ता को मनाने का प्रयास करता है उस समय वह धृष्ट नायक की कोटि का माना जा सकता है किन्तु विरह की अग्नि उसकी काम-

वासना को जला डालती है और उसमें उज्ज्वलता आ जाती है । अग्नि दाह के समय सागरिका को जलता हुआ जानकर विदूषक को मना करने पर भी वह अग्नि की ज्वालाओं में यह कहता हुआ कूद पड़ता है - `धिङ्०मूर्ख, सागरिका विपद्यते । किमद्यापि प्राणाधार्यन्ते ।`

उदयन के स्वभाव में शिष्टता एवं मधुरता स्वभावत: है । परिजनों के प्रति उसका मधुर स्वभाव है । कामपूजन के समय वासवदत्ता की दासी जब राजा को बुलाने को जाती है उस समय वह भूल से `देवी आज्ञापयति` कहकर डर जाती है किन्तु राजा उदयन अत्यन्त नम्रतापूर्वक उसके भय को दूर करके यह कहकर वातावरण को आनन्दमय बना देते हैं - `ननु आज्ञापयतीत्येव रमणीयम् ।` इसीप्रकार अन्त:पुर की साधारण दासी सुसङ्०गता का स्वागत इन मधुर शब्दों से करते हैं -

`सुसङ्०गते । स्वागतम् इहोपविश्यताम् ।

रत्नावली नाटिका में उदयन के केवल विलासी जीवन का ही चित्रण नहीं किया गया है अपितु उसके कुछ कृत्यों से उसकी राजनीतिक पटुता का भी परिचय मिलता है । विरह-वेदना के समय भी वह राज्य के कार्य से उदासीन नहीं रहता । विजयवर्मा द्वारा वर्णित कोशल के समाचार को सोत्साह सुनता है । अपने सेनापति रुमण्वान् के रणकौशल और विजय को सुनकर साधुवाद देता है और अपने वीर शत्रु कोशल-नरेश, की प्रशंसा करता है - `साधु कोसलपते साधु । मृत्युरपि ते श्लाघ्यो यस्य शत्रवोऽप्येवं पुरुषकारं वर्णयन्ति ।` राजा की आज्ञा बिना यौगन्धरायण द्वारा सागरिका को लाने का प्रयत्न करने पर भयभीत होने से और राजा के इस स्वगत कथन से यह प्रतीत होता है कि उदयन राजनीति-निपुण भी था `योगन्धरायणेन न्यस्ता ? कथमसौ मामनिवेद्य किंचित्करिष्यति ।`

इसी प्रकार हर्ष ने उदयन के चरित्र के दोनों रूपों को अत्यन्त कुशलता-पूर्वक वर्णित किया है ।

विदूषक वसन्तक -

रत्नावली नाटिका में दूसरा प्रमुख पुरुष पात्र विदूषक है । कवि ने उसका चित्रण नाट्य शास्त्र में वर्णित लक्षणानुसार ही किया है । वह राजा

का सच्चा मित्र है । उससे राजा की कोई भी हृदय दशा नहीं छिपती । इसी से उसे `नर्म सचिव' भी कह सकते हैं । वह सुसंगता के साथ मिलकर वेष-परिवर्तन द्वारा सागरिका और राजा को मिलाने का प्रयत्न करता है और जब रानी वासवदत्ता को यह बात पता लग जाती है तब विदूषक यह चेष्टा करता है कि रानी उदयन पर कुपित न हों । वह अपने यज्ञोपवीत तक की सौगन्ध खाकर कहता है -`भोदि सच्चं सच्चम् । सवामि बम्हसुत्तेण जइ ईं दिशी कदावि अम्हेहि दिट्ठपुव्वा ।' वासवदत्ता द्वारा लतापाश से बाँध जाने और कारावास का दण्ड दिये जाने पर भी उसके हृदय में राजा के प्रति वैसा ही प्रेम बना रहता है । दण्ड से मुक्त होने पर वह पुन: राजा का मनोविनोद करता है । वह राजा के बिना जीवित भी नहीं रहना चाहता । उदयन के अग्नि में प्रवेश करने पर वह भी `भोदि अहं विदेपक्कोवदेसओ होमि' कहता हुआ उसी का अनुसरण करता है ।

संस्कृत नाटिका का विदूषक पेटू के रूप में चित्रित किया जाता है । रत्नावली का विदूषक वसन्तक भी पेटू है । `द्विपदी-खंड' के खंड से भी मोदक बनाने का स्वप्न देखता है । कामार्चन के समय उसको केवल यह प्रसन्नता थी कि स्वस्तिवाचन की प्राप्ति होगी । वासवदत्ता द्वारा बंधन कराये जाने पर इतना सा लेता है कि थोड़े दिनों के लिये फुर्सत हो जाती है । वह कहता है -`सहत्थदिण्णोहिं मोदि एहिं चिरस्स दावकालस्स उप्परं मे सुपुरिदं किदम् ।'

रत्नावली में वसन्तक के मूर्खतापूर्ण कार्यों द्वारा हास्य की सृष्टि भी की गई है । वह अनायास नृत्य करने लगता है । मदनोत्सव में नाचती हुई सखियों के साथ स्वत: भी नाचने लगता है और द्विपदी-खण्ड को चर्चरी बताकर अपनी मूर्खता द्वारा हास्य की सृष्टि करता है । इसी प्रकार नवमालिका के असमय में फूलने की प्रसन्नता से नाचने लगता है और चित्रफलक उसकी बगल से गिर जाता है । उसकी इस मूर्खता से रहस्य खुल जाता है । किन्तु कभी उसकी बुद्धिमत्ता का भी परिचय मिलता है । राजा जब रानी के आगमन की प्रतीक्षा करता है तब वह रानी के आगमन की सूचना देता है -`भो वअस्स ण एदे मदुरा णेउरसद्दं अणुहरन्ति णेउरसद्दोज्जेव एसो देवीए परिअणस्स ।' इससे यह ज्ञात होता है कि विदूषक में

इतनी बुद्धिमत्ता थी कि वह भौंरों के गुंजार और नूपुर के शब्दों के भेद को समझ लेता था । इस प्रकार हर्ष ने विदूषक का चरित्र चित्रण सफलता के साथ किया है ।

नायिका रत्नावली --

रत्नावली नाटिका की नायिका सिंहलेश्वर की कन्या रत्नावली है । सागर में डूब जाने पर बच जाने के कारण वह मंत्री यौगन्धरायण द्वारा सागरिका के रूप में उदयन के अन्तःपुर में रख दी जाती है । उदयन के प्रथम दर्शन के समय उसकी जो दशा होती है उससे उसके मुग्धा नायिका होने की व्यंजना होती है -
साग० -(राजानं दृष्ट्वा सहर्षं ससाध्वसं सकम्पं च स्वगतम्) हद्धी हद्धी । एदं पेक्खिअ अतिसद्धेसेण न सक्कणोमि पदादो पदं वि गन्तुम्। ता किं दाणि एत्थ करिस्सम् ।'

वासवदत्ता सदैव इसी चेष्टा में रहती है कि वह उदयन के दृष्टिपथ में न आ जाय, इससे उसकी अप्रतिम सुन्दरता का आभास मिलता है । सुसङ्गता द्वारा चित्रित चित्र को देखकर राजा इतना आकर्षित हो जाते हैं कि वे उसके सौन्दर्य-जनित प्रभाव का वर्णन करते हुये कहते हैं --

दृशः पृथुतरीकृता जितनिजाब्जपत्रत्विष-
स्चतुर्भिरपि साधु साध्विति मुखैः समं व्याकृतम् ।
शिरांसि चलितानि विस्मयवशाद् ध्रुवं वेधसा
विधाय ललनां जगत्त्रयललामभूतामिमाम् ।।२-१६ ।।

रत्नावली चित्रकला में अत्यन्त पारङ्गत थी । उदयन से प्रेम होने पर वह उदयन का चित्र अत्यन्त कुशलता से अङ्कित करके उससे अपना मनोविनोद करती है । सुसङ्गता उसकी चित्रकला की अत्यन्त प्रशंसा करती है । रत्नावली उच्चकुलोत्पन्न कन्या है । वह अपनी प्रियसखी सुसङ्गता को भी अपने वंश के विषय में नहीं बताती । सुसङ्गता द्वारा पूछे जाने पर वेदना के आंसुओं द्वारा

अपनी कथा और सद्वंश का परिचय के साथ दे देती है। उच्चकुलोत्पन्न होने पर भी परिस्थिति वश दासी के रूप में जीवन-यापन करने के कारण वह आत्मग्लानि का अनुभव करती है किन्तु उदयन के रूप में अपने प्रेम-पात्र को पाकर उसमें पुन: जीवन धारण करने की पिपासा जागृत हो जाती है और वह कहती है - 'ता परप्पेसणादूसिदं पि मे जीविदं एदस्स दंसणेण दाणिं बहुमदं संवुत्तम् ।' जब वासवदत्ता को उसके प्रेम के विषय में ज्ञान हो जाता है और वह वासवदत्ता द्वारा तिरस्कृत व अपमानित की जाती है तब वह जीने की अपेक्षा मर जाना श्रेयस्कर समझती है और लतापाश के द्वारा आत्महत्या का प्रयास करती है। उसमें वंशाभिमान के कारण ही आत्मसम्मान की भावना है।

उदयन के प्रति रत्नावली का प्रेम वासनात्मक नहीं है। सर्वप्रथम उदयन के कुसुमायुधोपम सौन्दर्य को देखकर आकर्षित होती है किन्तु जब उसे यह ज्ञात होता है कि वह इसी उदयन के लिये प्रदान की गई है तब उसका यह आकर्षण प्रेम का रूप धारण कर लेता है। उसका यह प्रेम औचित्य की सीमा के भीतर है। सुसंगता उसके प्रेम के औचित्य की प्रशंसा करते हुये कहती है - 'न कमलाकरं वर्जयित्वा राजहंस्यन्यत्राभिरमते ।' फिर भी उसको एक ओर तो विरह से विदग्ध होने का दु:ख और दूसरी ओर अपनी पराधीनता का सन्ताप है। वह मृत्यु को ही अपनी कष्ट-मुक्ति का साधन समझते हुये कहती है --

> दुल्लहजणाणुराओ, लज्जा गुरुई परव्वसो अप्पा ।
> पिअसहि विसमं पेम्मं मरणं सरणं णवरमेक्कम् ।।२-१ ।।

संताप के समय सखियों द्वारा किये गये शीतोपचार रत्नावली को अच्छे नहीं लगते। जिस समय उदयन चित्रफलक को अपने हाथ में लेकर देखता है उस समय उसकी विषमावस्था और भी बढ़ जाती है और वह कहती है - 'किं एसो मणिस्सदि त्ति ज सच्चं जीविदमरणाणं अन्तरे वट्टामि ।' चित्रफलक के दर्शन द्वारा उसके प्रति प्रेमाभिभूत हो गये हैं यह ज्ञात होने पर रत्नावली को आश्वासन हो जाता है और पुन: प्रेम-पथ पर अग्रसर होती है। सुसंगता द्वारा उदयन के साथ उसके साक्षा-

स्कार का आयोजन किये जाने पर वह प्रसन्नतायुक्त क्रोध को प्रकट करती है। हर्ष ने कितनी कुशलता से उसके हृदय के प्रेम की व्यंजना कराई है —सागा० - (सासूयं सुसंगतामवलोक्य) सहि ईदसी चित्तफलओ तुए आणीयदो।'

उदयन के प्रेम का सहारा पाकर अपनी दशा को समझती हुई लज्जा, भय, उत्साह, आनन्द आदि अनेक भावों से युक्त होकर प्रेम-पथ पर अग्रसर होती है। जब उसे अपने प्रेम की असफलता और अपमान की आशंका होती है तभी वह आत्महत्या करना चाहती है। हर्ष ने उसकी विषादमय व्यथा का सुन्दर चित्रण किया है। उसके हृदय में उदयन के प्रति प्रेम, वासवदत्ता के प्रति भय, सुसंगता के प्रति भगिनीवत् स्नेह तथा अपने जीवन के प्रति ग्लानि और मोह एक साथ है।

वासवदत्ता —

वासवदत्ता राजा उदय की प्रधान महिषी है। राजा के ऊपर वह अपना एकाधिकार समझती है। राजा को भी उसके प्रेम पर पूर्ण विश्वास है। वह अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को राजा के प्रेम में बिताना चाहती है। उसने अपने प्रेम से उदयन पर विजय प्राप्त कर लिया है। इसी से वासवदत्ता को सागरिका और राजा के प्रेम का ज्ञान हो जाने पर राजा को भय होता है कि प्रगाढ़ प्रेम के कारण वासवदत्ता अपने प्राणों को परित्याग न कर दे —

'प्रिया मुंचत्यद्य स्फुटमसहना जीवितमसौ,
प्रकृष्टस्य प्रेम्णः स्खलितमविषह्यं हि भवति ।। ३।१५'

साथ ही राजा इतना भयभीत होते हैं कि वासवदत्ता के सम्मुख आने पर सागरिका के प्रति अपने प्रेम को मिथ्या सिद्ध करने का प्रयास करता है। वह वासवदत्ता के पाद-पतन द्वारा क्षमा माँगता है। वासवदत्ता उदयन पर इतना अधिकार समझती है कि उसके प्रेम में कोई हस्तक्षेप करे यह वह सहन नहीं कर सकती। उदयन

की उपलिप्सा का उसे पूर्ण ज्ञान है। इसी से कामपूजन के समय सागरिका उपस्थित होकर वह परिजनों पर क्रोध करती हुई स्वतः ही कहती है --

' अहो पमादो परिअणस्स।'

वासवदत्ता में सपत्नी-डाह की भावना भी है। जब वह चित्रफलक में उदयन के साथ सागरिका के चित्र को देखती है उस समय तो वह केवल अपने मान को ही प्रकट करती है किन्तु उदयन और सागरिका के अभिसरण का ज्ञान होने पर राजा द्वारा पाद-पतन किये जाने पर भी वासवदत्ता प्रसन्न नहीं होती और रुष्ट होकर चली जाती है। किन्तु उदयन के प्रति प्रेमाधिक्य के कारण वह अधिक समय तक अपना रोष धारण नहीं कर पाती। उसको अपनी कठोरता पर दुःख होता है। वह राजा को प्रसन्न करने की कितनी सुन्दर कल्पना करती है - तेण हि अलङ्किदा एव्व पुट्ठदो गदुअ कण्ठे गेण्हिअ पसादइस्सम्।' राजा स्वतः उसके उदार एवं विशाल प्रेमी हृदय की प्रशंसा करते हैं।

अपने प्रेम में व्यवधान के कारण वासवदत्ता कठोर हो जाती है अन्यथा वह अत्यन्त उदार है। परिजनों के प्रति भी उसका मधुर व्यवहार है। विदूषक को कुपित होकर बँधवा लेने पर भी राजा का मित्र होने से वह उसे सम्मान पूर्वक छोड़ देती है और दासी होने पर भी सपत्नी बनने का प्रयास करने के कारण सागरिका को अन्तःपुर में बन्दी बनाकर रख तो देती है किन्तु अग्निदाह के समय वह किस प्रकार राजा से उसे बचाने की प्रार्थना करती है - एसा क्खु मए णिग्घिणाए एध णिअलिदा संजमिदा सागरिआ विवज्जदि। ता तं परित्ताअदु अज्जउत्तो।' जब वासवदत्ता को यह मालूम होता है कि रत्नावली उसकी ममेरी भगिनी है तब उसको अपने कृत्यों पर पश्चात्ताप होता है और वह वस्त्राभूषणों द्वारा उसे सजाकर स्वतः राजा से स्वीकार करने की प्रार्थना करती है। इस प्रकार अन्त में वासवदत्ता का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल हो उठता है।

सुसङ्गता --

सागरिका की सखी सुसङ्गता का चरित्र भी महत्त्वपूर्ण है । वह सागरिका के प्रेम को जानकर उसकी सहायता करती है । उसको उदयन से मिलाने का प्रयत्न करती है । सागरिका के शीतोपचार के लिये मृणाल-वलय बनाती है, कमलपत्रों की शय्या बनाती है । वह अत्यन्त वाक्पटु और चित्रकला में पारङ्गता नारी है । उदयन के साथ वार्तालाप करते समय उसकी वाक्पटुता का परिचय मिलता है । वह उदयन और सागरिका दोनों को मिला देती है किन्तु अभिसरण के समय रहस्योद्घाटन हो जाने से वह असफल हो जाती है । वह निःस्वार्थ भाव से अपनी सखी के लिये सदैव चिन्तित रहती है । वह सखियों में आदर्श सखी है ।

इस प्रकार हर्ष ने सभी पात्रों का अत्यन्त सुन्दर चरित्राङ्कन किया है । सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण नाटिका के अनुरूप हुआ है ।

प्रियदर्शिका --

नायक --

प्रियदर्शिका नाटिका का नायक उदयन अत्यन्त सुन्दर और मधुर स्वभाव वाला है । आरण्यका (नायिका) उसके रूप सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कहती है --

आरण्यका- (राजानमवलोक्य, सस्पृहं सलज्जं चात्मगतम्) अयं स महाराजः यस्याहं तातेन दत्ता । स्थाने खलु तातस्य पक्षपातः ।

उदयन सङ्गीत-कला में पारङ्गत व्यक्ति था । वह सर्पों के संसार में घूमने गया था । वहाँ पर विष के विषय में जादू का ज्ञान प्राप्त कर लिया । आरण्यका द्वारा विषपान किये जाने पर वह उसी ज्ञान द्वारा उसकी सुरक्षा करता है ।

उदयन केवल विलासी जीवन ही नहीं व्यतीत करता था अपितु वह राजनीतिक भी था । उसका साहस प्रशंसनीय है । कलिङ्गराज के विरुद्ध राजा उदयन का जो युद्ध हुआ उससे उसके साहस का पता लगता है —

कंचुकी - देवि दिष्ट्यावर्धसे ।

हत्वा कलिङ्गहतकं सो स्मत्स्वामी निवेशितो राज्ये ।
देवस्य समादिष्टो व्यवस्थापितो विजयसेनेन ।। (१/ ४६)

एक सच्चे योद्धा के रूप में वह अपने शत्रु की भी प्रशंसा करता है -

राजा —रुमण्वन् ! सत्पुरुषकुलोचितमार्गमनुगच्छतो यत्सत्यं श्लाघितो एव वयं विन्ध्यकेतोमरणेन ..।

रुमण्वन् - देव ! त्वद्विधानामेवं गुणपक्षपातित्वं रिपोरपि गुणाः प्रीतिं जनयन्ति ।

उदयन के गुणों की प्रशंसा करते समय वह लज्जा का अनुभव करता है । जब कंचुकी युद्ध में विन्ध्यकेतु पर सफलता प्राप्त कर लेने की सूचना राजा को देता है उस समय राजा यह कहने में अत्यन्त लज्जा का अनुभव करता है कि यह उसकी कार्य-कुशलता थी —

राजा - (सस्मितं) विजयसेन ! किं कथयामि ? (१, ६३)

वह अपने अच्छे गुणों के कारण अपने परिचारकों एवं प्रजा द्वारा प्रशंसा का पात्र बनता ~~ह~~ था । उसके हृदय में वासवदत्ता के प्रति सच्चा प्रेम था । एक दिन के लिये भी वासवदत्ता का साथ न मिलने पर वह अत्यन्त दुःखी हो जाता था ।

विदूषक :— .... (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) कथमेव प्रियवयस्यः अथ देव्याः विरहोत्कण्ठाविनोदननिमित्तं धारागृहोद्यानं प्रस्थितः । (२/ १)

समस्त अच्छे गुणों के बाद उदयन के चरित्र में एक कमी भी थी कि वह रूप का लोभी था । वह आरण्यिका को प्रथमबार देखने पर भी लज्जा का अनुभव नहीं करता —

राजा - साधु वयस्य साधु । कालानुरूपमुपदिष्टम् ।

(इत्यारण्यिकासमीपमुपसर्पति) (३६) ।

आरण्यिका के प्रति उदयन का सच्चा प्रेम है । आरण्यिका द्वारा विषपान किये जाने पर वह चकाचौंध सा हो जाता है - राजा-सत्यमेवैतत् (प्रियदर्शिकामवलोक्य) मुह एवाहमेतावतीं वेलाम् । तदहमेनां जीवयामि । (८२)

उदयन के चरित्र में केवल एक कमी है जब वह नाटक करते समय स्वतः को ही प्रस्तुत कर देता है और वासवदत्ता को जब यह बात ज्ञात हो जाती है तब वह मिथ्या भाषण द्वारा उसको प्रसन्न करने का प्रयास करता है -

राजा- अलमन्यथाविकल्पेन ।............

कोपमुपं बलवैव चित्तहरणायैवं मया क्रीडितम् ।। (१३२)।

विदूषक- (वसन्तक)

संस्कृत नाटिकाओं में विदूषक को बदसूरत व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है । प्रियदर्शिका नाटिका में भी विदूषक के व्यक्तित्व का कोई प्रसङ्ग न होने पर भी उसकी तुलना अधिकांशतः बनर के साथ की गई है और वह सदैव अपने हाथ में टेढ़ी छड़ी लिये रहता है ।

विदूषक को ब्राह्मण व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है । वह अधिक ज्ञानी नहीं है किन्तु अपने अथक प्रयास द्वारा अपने अज्ञान को छिपाने का प्रयत्न करता है - विदूषक : -- देवी पार्श्वं गत्वा कुक्कुट वार्दं करिष्यामि । अन्यथा अस्मादृशा ब्राह्मणाः कथं राजकुले प्रतिग्रहं कुर्वन्ति । (१)

अन्य नाटिकाओं के विदूषक अधिकतर मूर्खता का कार्य करते हैं किन्तु प्रस्तुत नाटिका का विदूषक वसन्तक उतना मूर्ख नहीं है । मधुमक्खियों द्वारा आरण्यका को परेशान किये जाने पर राजा के भयभीत होने पर विदूषक कहता है -

विदूषकः :- .... तदा तूष्णीको भूत्वा उपसर्पेति यथा भणितः अति-संकटे यद्भवान् प्रविश्य श्लोकपाणिगृहीत्यदुर्विदग्धः .... कटुवचनैर्निर्भर्त्स्यै साम्प्रतं किं रोदिषि ? किं पुनरपि उपायं पृच्छसि ? राजा कथं तथा व्यसनमपि निर्भर्त्सनमिति गृहीतं मुखेन । (३|५४-६५)

किन्तु कभी कभी उसकी मूर्खता भी प्रदर्शित होती है । जबकि वह वासवदत्ता द्वारा नींद से उठाये जाने पर नाटक में राजा द्वारा स्वतः भाग लिये जाने की बात सच सच मूर्खतावश ही बताता है --विदूषकः - (निद्रायाउत्थाय सहसा विलोक्य) किं नातित्वा आगतः प्रियवयस्यः ? अथवा नृत्यत्येवा । (३|११०)

जब वह असमंजस में पड़ जाता तो अपनी व राजा की सुरक्षा के लिये निःसंकोच मिथ्या बोल देता है - विदूषकः:- भवति । अद्य कौमुदीमहोत्सवे तव विस्मयकर्तुं वयस्येन प्रेक्षणीयमनुष्ठितम् । (३| १३०)

वह पेटू स्वभाव का भी है और भोजन आदि के विषय में कभी इन्कार नहीं करता - विदूषकः - (सक्रोधं) भोः त्वं तावत् एतत् अन्यच्च पश्यन् उत्कण्ठा निर्भरं आत्मानं विनोदयसि । मम पुनर्ब्राह्मणस्य स्वस्तिवाचनवेला अतिक्रामति । (२| २१) वह निद्रालुस्वभाव का भी व्यक्ति है - विदूषक-(सरोषं) दास्याः सुते । त्वमपि न ददासि मे स्वपितुम् ।

विदूषक के चरित्र की मुख्य विशेषता यह है कि वह अपने मित्र राजा के प्रति सच्चा प्रेम करता है और वह सदैव उनकी सहायता का प्रयास करता है । इस स्वाभाविक स्वामिभक्ति के फलस्वरूप उसके अन्य दोष प्रच्छादित हो जाते हैं । इसीलिये उसे राजा का नर्मसचिव कहा गया है ।

वह राजा की खुशी के लिये इन्दीवरिका के आने के पूर्व चुपचाप आर-ण्यिका के पास राजा को जाने के लिये कहता है । किन्तु इन्दीवरिका के आते ही संकेत द्वारा राजा को मना करता है । मनोरमा के साथ मिलकर वह राजा और आरण्यिका के मिलन की योजना बनाता है और राजा के असमंजस में पड़

जाने पर वह उनको बचाने का प्रयत्न करता है । अन्त में जब वह देखता है कि प्रसन्नचित्त वासवदत्ता द्वारा राजा की इच्छा प्रियदर्शिका के साथ विवाह कर देने से पूर्ण कर दी गई है तब वह कहता है -

विदूषक- ईदृशे अभ्युदये अस्मिन् राजकुले एतत् करणीयम् । (राजानं निर्दिश्य वीणावादनं नाटयन्) गुरुपूजा । (४ २१)

नायिका प्रियदर्शिका -

प्रियदर्शिका नाटिका की नायिका राजा दृढवर्मन की पुत्री प्रियदर्शिका है । वह कलिङ्गाधिपति द्वारा विवाहार्थ माँगी गई किन्तु दृढवर्मा द्वारा मना कर दिये जाने पर युद्ध में दृढवर्मा बन्दी हुये । उनका कंचुकी प्रियदर्शिका को विन्ध्य-प्रदेश के राजा के पास पहुँचा देता है । पूर्व शत्रुतावश राजा का सेनापति विजयसेन विन्ध्यकेतु के राजा को मारकर प्रियदर्शिका को उसकी पुत्री जानकर उसे वत्सराज को उपहार रूप में दे देता है । अरण्य प्रदेश में प्राप्त होने के कारण आरण्यका के नाम से दासी के रूप में वत्सराज की आज्ञा से अन्त:पुर में रहने लगी ।

नि:सन्देह आरण्यका अति सुन्दर थी क्योंकि न केवल राजा अपितु विजय-सेन, विदूषक मनोरमा, साङ्कृत्यायनी आदि सभी के द्वारा उसके सौन्दर्य की प्रशंसा की जाती है - साङ्कृत्यायनी- यादृशमाकारं पश्याम्यस्या: तादृशेनाकारे-णावश्यं त्वदीयां भूमिकां संभावयिष्यति । (५५)

राजा उदयन उसे समस्त देवी गुणों से युक्त लक्ष्मी के सदृश बताते हैं ।

आरण्यका का मर्यादित व्यक्तित्व है । मनोरमा द्वारा उसके विवाह का प्रसङ्ग उपस्थित किये जाने पर वह उसे व्यर्थ की बातें करने को मना करती है । राजा उसकी बात को सतर्क होकर सुनता है - राजा- अहो सुतरां प्रकटीकृतमाभिजात्यं धीरतया । (२। ३४)

वह अपने वंश की मर्यादा हेतु अपना परिचय देने में लज्जा का अनुभव करती है । वह अन्त:पुर में एक परिचारिका के रूप में रहने के कारण अपना और अपने पिता का अपमान समझती है - आरण्यका- (सबाष्पमात्मगतं) तथा नाम

तारुवेत वरे: उत्पन्ना दासजनमात्राप्य साम्प्रतं मया परवत्या कर्तव्येति नास्ति दैवस्य दुष्करम् । .... न पुन: प्राप्तवन: नगाधे वहाँ प्रकाशयन्त्या महालघु- कृत आत्मा । (५२६)

वह नम्र स्वभाव की है और राजा के प्रति प्रेम करने में लज्जा का अनुभव करती है, यद्यपि वह प्रेम का भटना उसे लिये कष्टप्रांत रहता है । मनोरमा- अयि लज्जालो । न युक्तं एतदवस्थां गतायाः अपि ते गतत्रपा प्रकाशयितुम् ।

राजा के समक्ष उपस्थित होने पर वह अत्यन्त लज्जापूर्वक सिर भुका- कर किनारे खड़ी रहती है और राजा की ओर देखती भी नहीं जबकि वह जानती है कि राजा उसके सौन्दर्य के प्रति आकर्षित हैं, फिर भी उसे यह संदेह रहता है कि राजा वासवदत्ता से प्रेम करने के कारण उसकी चिन्ता न कर सकेंगे । आरण्यका- सखोजनपक्षपातेन मन्त्रयसे । देवो गुणनिगलाद्धे तस्मिन् जने कुत एतद् ।

(२ ४)

वह राजा उदयन की भूरि भूरि प्रशंसा करती है और सोचती है कि संकेतों द्वारा राजा उदयन को देकर ठीक ही किया - आरण्यका (राजा- नमवलोक्य सस्पृहं सलज्जं च) अयं स महाराज: यस्याहं तातेन दत्ता । स्थाने खलु तातस्य पक्षपात: (आकुलतां नाटयति) (। ५४)

प्रथम दर्शन के पश्चात् ही उसे राजा से इतना प्रेम हो जाता है कि वह इस दु:ख को अधिक दिन तक नहीं सहन कर सकती थी और आत्महत्या कर लेना चाहती थी किन्तु मनोरमा द्वारा रोक दी गई है । उसके प्रेम का मुख्य उद्देश्य राजा के साथ विवाह करना है किन्तु वासवदत्ता द्वारा बन्दी बनाये जाने के कारण वह राजा के प्रति निराश होकर वह विषपान कर लेती है किन्तु उसे पश्चाताप होता है कि विषमान कर लेने पर भी वह राजा को न देख सकी और विष के प्रभाव से वह कहती - प्रियदर्शिका -(आत्मगतम्) यदेतदवस्थां गतयापि मया महाराजो न दृष्ट: (। ७८)मानों वह ऐसा सोचती थी कि विषपान के उपरान्त राजा के दर्शन व प्राप्त हो जायेंगे ।

वह इतनी भावुक है कि प्रियदर्शिका नाटिका में नाटक करते समय वह राजा द्वारा स्पर्श किये जाने पर वह एक विशेष प्रकार की अनुभूति करती है किन्तु वह राजा को राजा नहीं अपितु मनोरमा के रूप में समझती है -
आरण्यिका - (स्पर्शविशेषं नाटयन्ती) हा धिक् हा धिक् एतां मनोरमा स्पृश- न्त्या अग्रहस्तेनैव विमुक्ति मे अङ्गानि । (१०५)

आरण्यिका पूरे एक वर्ष तक राजा के अन्तःपुर में रानी की परि- चारिका बन कर रही और उसे यह विश्वास हो गया था कि उसके परिवार के समस्त लोग कलिङ्ग आक्रमण के समय नष्ट हो गये किन्तु फिर भी वह भूलती नहीं । जब वह अपने पिता के कंचुकी विनयवसु को देखती है तब वह कहती है - प्रियदर्शिका-(विलोक्य) कथं कंचुकी आर्यविनयवसुः । (सास्रम्) हा तात हा अम्ब । (४। ९२) कंचुकी प्रियदर्शिका को आश्वासित करते हुये कहता है - कंचुकी अलं रुदितेन । कुशलिनौ ते पितरौ वत्सराजप्रभावतः । पुनस्तदवस्थमेव राज्यम् ।
(४। ९३)

वासवदत्ता -

वासवदत्ता महासेन की पुत्री और राजा उदयन की ज्येष्ठा नायिका है । प्रियदर्शिका नाटिका में उसके बहुत से अनेक गुण प्रकट होते हैं । नाटिका में वह सर्वप्रथम नाटक के विषय में जानने के लिये सांकृत्यायनी के साथ प्रकट होती है और उसके द्वारा रचित सुन्दर नाटक की प्रशंसा करती है - वासवदत्ता- भगवति ! अहो ते कवित्वम् । येनैतं वृत्तान्तं नाटकीयं निबद्धं सानुभवमपि अस्माकं आर्यपुत्रचरितं अदृष्टपूर्वमिव दृश्यमानं अधिकतरं कौतुकं वर्धयति । (। ३७)

रङ्गमंच पर उसके प्रेमालाप को न्यूनाधिक अतिरंजित करके प्रदर्शित किये जाने के कारण उसकी लज्जाशीलता उसे देखने की स्वीकृति नहीं देती । - वासवदत्ता - भगवति प्रेक्षस्व त्वम् । अहं पुनः आलोकं न पारयामि प्रेक्षितुम् ।
(३। १०६)

वासवदत्ता के हृदय में राजा के प्रति इतनी सम्मान की भावना है कि वह यह भूल जाती है कि मनोरमा द्वारा राजा का प्रतिनिधित्व किया जायगा और राजा के रूप में मनोरमा का ही हर्ष से स्वागत करने से अपने को रोक नहीं पाती - वासवदत्ता- (सविलक्षस्मितमनुसृत्य) हर्षं मनोरमा उत्कोचम् मया पुनर्ज्ञातं आर्यपुत्र एष इति । (३। ७६)

किन्तु एक साधारण नारी की भाँति वासवदत्ता में ईर्ष्या की भावना भी है । सर्वप्रथम यद्यपि राजा और आरण्यका ने परस्पर देखा भी नहीं है फिर भी वासवदत्ता आरण्यका के सौन्दर्य के कारण उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी समझ कर उसे राजा की दृष्टिगत नहीं होने देती । जब उसे राजा और आरण्यका के परस्पर प्रेमालाप के विषय में ज्ञात होता है तब उसके क्रोध की सीमा नहीं रहती - वासवदत्ता- आरण्यिके । एवं कुपितेति आर्यपुत्रः प्रसादयति तदुपसर्प । (इति हस्तेनाकर्षति) (३। १२८)

किन्तु सच्चा प्रेम होने के कारण वह सरलता पूर्वक क्षमा कर देती है । जब राजा वासवदत्ता को बताते हैं कि दृढ़वर्मन की मुक्ति के लिये वह आवश्यक कार्य कर चुके हैं और अभियान की सफलता की प्रतीक्षा कर रहे हैं उस समय वह राजा का आभार ग्रहण करती है और उनको स्वीकृति दे देती है --

वासवदत्ता- यद्येवं प्रियं मे प्रियम् । (४/ ३७) ।

कंचुकी द्वारा दृढ़वर्मन की मुक्ति की सूचना दिये जाने पर वह आरण्यका की मुक्ति की भी आज्ञा देती है - वासवदत्ता ([illegible]यनीमवलोक्य सस्मितं) मोचिता [illegible] आरण्यिका । (४। [illegible]४) उसका भगिनी प्रेम सन्तुष्टि को प्राप्त हो जाता है और वह राजा से आरण्यका को स्वीकार करने की प्रार्थना करती है - वासवदत्ता- .... (राजानं निर्दिश्य सस्मितं) देव । प्रसारय हस्तम् । भगिन्याः अनुरूपं ते पारितोषिकम् दापयिष्यामि । (४/ ६६)

वह अपमान से भयभीत रहती है । उसे यह भय रहता है कि विष द्वारा नायिका की मृत्यु हो जाने पर प्रजा उसके विषय में असत्य भाषण करेगी । अतः वह हर तरह से राजा की परिचारी द्वारा भी उसकी सुरक्षा का प्रयास करती है क्योंकि वह उसे राजा की दृष्टिगत भी नहीं होने देती थी ।

नाटिका में वासवदत्ता अधिक आयु वाली और मर्यादित चरित्र वाली प्रतीत होती है । तृतीय अङ्क के अन्त में उसकी लज्जाशीलता और चतुर्थ अङ्क में उसकी मर्यादा पूर्णता को प्राप्त हो जाती है ।

साङ्कृत्यायनी —

वासवदत्ता की सखी साङ्कृत्यायनी कार्यविदी है और राजा तथा वासवदत्ता द्वारा सम्मानित होती है । वह सदैव भगवती के रूप में रहती है । नाटक के स्वरूप को उचित रूप देने के लिये वह राजा के चरित्र को उसने कुछ परिवर्तित कर दिया है - साङ्कृत्यायनी-(विहस्य) आयुष्मति ! ईदृशमेव कार्य्यं भविष्यति । (३ । १००)

साङ्कृत्यायनी शास्त्रकुशल है । जब वासवदत्ता राजा द्वारा नायिका का हाथ पकड़े हुये देखती है और उस स्थल से चली जाती है उस समय साङ्कृत्यायनी कहती है कि यह तो विवाह का गान्धर्व रूप शास्त्र विहित है । इसमें वासवदत्ता को परेशान होने की कोई आवश्यकता नहीं है और उसे रानी द्वारा एकाएक न रोके जाने की प्रार्थना करती है - साङ्कृत्यायनी-राजपुत्रि ! धर्मशास्त्रविहित एवं गान्धर्वो विवाहः । किमत्र लज्जास्थानम् ? प्रकरणीयमेवेदम् । तन्न युक्तमस्थाने रसभङ्गं कृत्वा गन्तुम् ।

एक परिव्राजिका के अनुरूप वह रङ्गमञ्च को छोड़ देती है जब उसे यह ज्ञात हो जाता है कि राजा नायिका के साथ नाटक कर रहा है और इसके पीछे

सच्ची कथा है - साङ्कृत्यायनी -(सर्वानवलोक्य सस्मितं कर्णे अन्यदेवेदं प्रहणीयकं संवृत्तम् (अभूमिरियमस्माभिधानम् । '(इति निष्क्रान्ता) (३। १२३)

वह इस पक्ष में नहीं रहती कि वासवदत्ता द्वारा आरण्यिका को कारागार में डाला जाय क्योंकि वह जानती है कि नाटक में राजा ने स्वतः भी भाग लिया है और किसी प्रकार की दी गई सजा अनुचित प्रकार की होगी - साङ्कृत्यायनी किं वा तया तपस्विन्या कृतम् ? (७।५५) इसीलिये जब रानी आरण्यिका की मुक्ति की आज्ञा देती है तब साङ्कृत्यायनी उसको प्रसन्न करने के लिये स्वतः जाने का प्रस्ताव रखती है ।

इस प्रकार साङ्कृत्यायनी के चरित्र का भी सुन्दर वह सफल चित्रण हुआ है ।

इसके अतिरिक्त इन्दीवरिका एवं मनोरमा नामक दो अन्य नीच स्त्री पात्रों का चरित्र भी वर्णनीय है । इन्दीवरिका आरण्यिका से ईर्ष्या की भावना रखती है और मनोरमा आरण्यिका के दुःख के समय सदैव उसकी सहायता करती है । और गम्भीर प्रकृति की चेटी है ।

इसके अतिरिक्त दृढवर्मन के कंचुकी विनयवसु, उदयन के सेनापति विजयसेन, रुमण्वान्, यशोधरा, कांचनमाला आदि अन्य पुरुष एवं स्त्री पात्रों के चरित्र का भी यथावत् चित्रण हुआ है ।

विद्धशालभंजिका नाटिका -

नायक विद्याधरमल्ल -

शास्त्रीय ग्रन्थों में नाटिका के नायक के लिये जो लक्षण वर्णित किये गये हैं, विद्धशालभंजिका नाटिका के नायक में वे कतिपय गुण विद्यमान हैं । राजा विद्याधरमल्ल धीरललित प्रकृति के नायक हैं । राजा जहाँ पर मृगाङ्कावली के सौन्दर्य का वर्णन करता है वे स्थल उसकी कलाप्रियता एवं विचक्षणता के व्यंजक

हैं राजा स्वप्नदृष्ट मृगाङ्कावली के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है -
राजा - इयमपूर्वैवास्माकं न पुनरनङ्गस्य । (सम्यगवलोक्य) सैवेयमस्मन्मनःसागरशशि-
लेखा । अहोरूपसम्पदेतस्याः ।

चन्द्रमेचमम्भोजं........ वैदग्ध्यमभ्यस्यति ।।३३ ।

वह धीर, गम्भीर, सरल तथा मृदु स्वभाव के पुरुष हैं । उनकी
कुलीनता का उत्कृष्ट परिचय उस समय मिलता है जब वे नवानुरागा मृगाङ्कावली
के प्रेम में आसक्त होने पर भी देवी के प्रति अपने सम्मान में शिथिलता नहीं आने
देते । तृतीय अङ्क के अन्त में देवी के लतामण्डप में आने की सूचना पाते ही वे
घबरा जाते हैं और भय से विलासस्थल को छोड़ देते हैं । इसी प्रकार तृतीय अङ्क
में जब विदूषक मेखला से बदला चुकाता है तो रानी रोती हुई चली जाती है । इससे
राजा को अत्यन्त पीड़ा होती है - राजा- अतिविलक्षा देवी यतो रुदती गता ।

लाट के राजा चन्द्रवर्मा जब अपने दूत को सूचना देने के लिये भेजते हैं
तो उसकी उक्ति द्वारा भी राजा के सौन्दर्य एवं गुणों की व्यंजना की गई है -

देया कस्यचिदिन्दुसुन्दरयशःपुस्तस्य पृथ्वीपतेः ।।१।१६।।

इसी प्रकार कुरङ्गक भी राजा के गुणों की प्रशंसा करते हुये कहता
है - कुरङ्गकः - भीः पटहस्येव मे मुखमस्ति न पुनर्वाणी ।

इन कतिपय गुणों के विद्यमान् होने पर भी नाटिका में एक भी स्थल
ऐसा नहीं है जहाँ राजा अपने राज्य की सुदृढ़ता एवं उसमें शान्ति बनाये रखने
की चर्चा करता है । वह अपने मित्र विदूषक के साथ रति-विलास में ही लगा
रहता है । धीरललित्व की दृष्टि से भी उसे सफल नहीं कहा जा सकता । वह
कठोर तथा अरोचक है । वत्सराजउदयन के शक्तिशाली और जानदार चरित्र के
सम्मुख विद्याधरमल्ल का चरित्र स्थिर और अरुचिकर है ।

नायिका मृगाङ्कावली -

मृगाङ्कलेखा नाटिका की नायिका मृगाङ्कावली है । वह लाट देश के राजा चन्द्रवर्मा की पुत्री तथा देवी मदनवती की मौसेरी भगिनी है । लाट देश के राजा की पुत्री होना ही मृगाङ्कावली के नृपवंशजत्व का सबसे बड़ा प्रमाण है-

'लाटेन्द्रश्चन्द्रवर्मा....... मृगाङ्कगुणयन्त्रम्' ।।१६।।

नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा ।( )
के अनुसार नाटिका की नायिका को दिव्या, मुग्धा और लावण्ययुक्त होना चाहिये । उसके रूप लावण्य के सम्बन्ध में राजा ने उसको स्वतः निरुपम सौन्दर्यवती के रूप में स्वीकार किया है । राजा ने अपने मित्र विदूषक से उसके सौन्दर्य का वर्णन स्पष्टतया किया है - राजा - (तं प्रति) सखे चारायण ! सैवय-मस्मन्मनःशिखण्डिताण्डवयित्री वर्षालक्ष्मीः । इदमन्य कथयामि न पुराणप्रजापति-निर्माणमेषा । यतः:-

चन्द्रो जडः कदलिकाण्डमकाण्डशीत-
मिन्दीवराणि च विमुक्तविभ्रमाणि ।
येवाक्रियन्त सुतनोः स कथं विधाता
किं चन्द्रकान्तविदशीतरुचिः प्रसूते ।।२४।।

मंत्री भागुरायण ने उसको सार्वभौमपतिका मानकर उसको अन्तःपुर में रानी की एक दासी विचक्षणा की सहायता से रख दिया था । इससे मृगाङ्कावली की दिव्यता का भी प्रमाण मिलता है । दासी विचक्षणा अपनी सखी सुलक्षणा से कहती है - विच० - तच्छृणु । अथैकदा भगवता भागुरायणेन सबहुमानं भणिता यथा विचक्षणे त्वयास्माकं राजकुल्ये साहाय्यं कर्तव्यमिति ।
ततस्तां परिणीय महाराजश्रीविद्याधरमल्लदेवेन महीतल-चक्रवर्तिना भवितव्यम् ।

मृगाङ्कावली नायिका अन्तपुर से सम्बद्ध है । मंत्री भागुरायण विचक्षणा की सहायता से उसे अन्तःपुर में सप्रयोजन रख देता है जिससे राजा को

दृष्टि उस पर पड़े दोनों का अनुराग हो फिर अन्त में दोनों का परिणय हो सकेगा। अन्त:पुर में रहने के कारण दोनों का परस्पर सहज अनुराग हो जाता है और शनै: शनै: वर्द्धित होकर अन्त में यह अनुराग दोनों के परिणय सूत्र बन्धन के रूप में प्रकट हुआ - देवी - आर्य। मातुलसन्देशमन्तरेणापि मया परिणायितैवैषा।

वह मुग्धा श्रेणी की नायिका है। देवी मदनवती की कनिष्ठा भगिनी होने के कारण नववयस्का है। द्वितीयाङ्क में राजा ने उसके सौन्दर्य का जो वर्णन किया है उससे उसके नवयौवना होने के पूर्ण लक्षण स्पष्ट हैं --

स्मरशरधिनिकाशं कर्णपाशं कृशाङ्गी -
रयविगलिततालीपत्रताटङ्कमेकम्।
वहति हृदयचौरं कुङ्कुमन्यासगौरं
वलयितमिव नालं लोचनेन्दीवरस्य ।।१० ।।

राजा के भिन्न निम्न कथन से उसका नवकालिक कामवती होना भी सिद्ध होता है --

इयं चरणकुङ्कुमच्छुरितकुट्टिमा मेदिनी -
निवेदयति कुन्दुकव्यनिकरं कुरङ्गीदृश:।
हहा किमिदमद्भुतं न च कृशोदरी दृश्यते
भवत्वगतं स्मरं सृजति मोहमायामिमाम् ।।१२।।

मृगाङ्कावली के स्वप्नदर्शन के पश्चात् ही राजा के हृदय में जो अनुराग उत्पन्न हो जाता है वह इतना प्रगाढ़ हो गया कि राजा कामभाव से पीड़ित रहने लगता है। वह अत्यन्त व्याकुल हो उठता है --

जाने स्वप्नविधौ ममाथ चुलुकोत्सेकयं पुरस्तादभूत् -
प्रत्यूषे परिवेषमण्डलमिव ज्योत्स्नासपत्नं मह:।
तस्यान्तर्नवनिस्तुषीकृतशरच्चन्द्रप्रभैरङ्गकै -
र्दृष्टा काप्यबलात्कृतवती सा मन्मथं मन्मथम् ।।१५ ।।

वह कांतिमति, कलाओं में कुशल, केलिप्रिया तथा चक्रवर्तिगृहिणीभावा है। दूत: -

भव्या कांतिर्मति कलासु कुशला केलिप्रिया नीतिभू:।
देवज्ञोदितचक्रवर्तिगृहिणीभावा मृगाङ्कावली
देया कस्यचिदिन्दुसुन्दरयश:पूतस्य पृथ्वीपते:।।[१]१६।

अस्तु, इस नाटिका की नायिका मृगाङ्कावली अनुरागवती, सौन्दर्यवती, कलाओं में कुशल, केलिप्रिया, दिव्या तथा कांतिमति होते हुये भी सङ्गीत, कला, चित्रकर्म आदि में निपुण न होने के कारण सर्वगुणसम्पन्ना नहीं कही जा सकती है। परन्तु रूप-लावण्य की भूमि होने के कारण वह अपने पाणि-ग्रहण से राजा को चक्रवर्ती बना देती है।

रानी मदनवती -

रानी मदनवती कर्पूरवर्ष के शक्तिशाली राजा विद्याधरमल्ल की प्रधान महिषी हैं। उन्हीं के अधीन नायक - नायिका (राजा एवं मृगाङ्कावली) का पूर्णतया मिलन हुआ है -

देवी - आर्य! मातुलसन्देशमन्तरेणापि मया परिणायितैवैषा।

वस्तुत: नायक-नायिका के पारस्परिक अनुराग के फलित करने का श्रेय देवी मदनवती ही धारण करती है अत: समस्त कथानक उन्हीं में केन्द्रित रहता है।

नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार वह कतिपय गुणों से सम्पन्न है। वह प्रगल्भा, नृपवंशजा एवं प्रौढा युवती है। नायक एवं नायिका दोनों ही देवी से भयभीत रहते हैं। तृतीय अङ्क के अन्त में राजा और मृगाङ्कावली का प्रेमालाप होता रहता है। उसी समय नेपथ्य द्वारा देवी के आगमन की सूचना मिलती है। राजा उसके यह सूचना पाते ही भयभीत होकर विदूषक के साथ चला जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि देवी मदनवती शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार इस नाटिका की ज्येष्ठा नायिका हैं और नायक तथा नायिका के बाद उन्हीं का महत्त्व है लेकिन फिर भी रत्नावली आदि नाटिकाओं की ज्येष्ठा नायिका की तुलना में देवी मदनवती को सर्वगुणसम्पन्ना नहीं कहा जा सकता । शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार इस ज्येष्ठा नायिका के चरित्र-चित्रण में नाटककार को सफल नहीं कहा जा सकता । देवी को प्रगल्भा, गम्भीरा तथा पद पद पर मान करने वाली कहा गया है । इस सम्पूर्ण नाटिका में कहीं कहीं उसकी प्रगल्भता, गम्भीरता एवं मानिनी होने का चित्रण किया गया है जबकि रत्नावली, प्रियदर्शिका, कुवलयावली आदि नाटिकाओं में उसके इस स्वरूप का सुन्दर चित्रण हुआ है । वह मुग्धा नायिका तथा राजा के प्रेम के विषय में जानकर मान करती है, अपनी गम्भीरता एवं प्रगल्भता को प्रकट करती है किन्तु विद्धशालनाटिका में कहीं भी उसको मान करते हुये नहीं दिखाया है । इसी प्रकार रत्नावली, चन्द्रकला इत्यादि नाटिकाओं में उसके प्रौढा युवती होने का, भावानुभावों के प्रकट-गोपन आदि क्रिया-कलापों का सुन्दर चित्रण हुआ है किन्तु इस नाटिका में देवी के चरित्र के इन पक्षों का चित्रण नहीं हुआ है ।

अतः यह कहा जा सकता है कि देवी मदनवती के ज्येष्ठा तथा नृपवंशजा नायिका होने पर भी शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार उसके नायिकात्व का विवेचन करने पर उनके चरित्र-चित्रण में नाटिकाकार को सफल नहीं कहा जा सकता ।

विदूषक चारायण --

संस्कृत नाटकों में विदूषक को एक सामान्य पात्र तथा हास्य-प्राय माना गया है ।(हास्यकृच्च विदूषकः - [illegible]) । वह राजा के प्रणय-व्यापार में उनकी सहायता करता है । विद्धशालभंजिका नाटिका में चारायण राजा विद्याधरमल्ल का सुहृद है । वह आरम्भ से अन्त तक राजा के प्रत्येक कार्य (चाहे वह प्रणय व्यापार हो अथवा मनोरंजन में रञ्जक के रूप में उपस्थित है । वह प्रकृत्या वाचाल, परिहास प्रिय, वाक्पटु एवं स्वाभिमानी मूर्ख है । समयानुसार यथोचित वेष-धारण

शरीर प्रदर्शन, क्रिया-सम्पादन आदि में दक्ष, कलह तथा रति दोनों में रुचि रखने वाला है। शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार उसका नाम चारायण है। वह गायन तथा नृत्य आदि में भी रुचि रखने वाला है। राजा के विवाहोत्सव की तैयारी के समय वह भी विचक्षणा इत्यादि के मध्य नाचने गाने को तैयार हो जाता है --

विदूषक :-- भो एतासां मध्ये अहमपि गास्यामि नर्तिष्यामि।

वह राजा का सर्वत्र सहायक है। प्रत्येक बात का अकाट्य उत्तर देता है। उसके प्रत्येक कथन में परिहास का मिश्रण रहता है।

इस नाटिका के विदूषक में कतिपय शास्त्रीय लक्षण ही विद्यमान हैं। शास्त्रीय गुणों की दृष्टि से अन्य नाटिकाओं के विदूषकों की तुलना में आर्य चारायण को अधिक सफल नहीं कहा जा सकता।

भागुरायण --

भागुरायण राजा विद्याधरमल्ल का मन्त्री तथा राज्य-शासन का संचालक भी है। शास्त्रीय नियमों के अनुसार धीरललित नायक की सिद्धि का श्रेय उसके मंत्री पर निर्भर करता है। इस नाटिका के नायक धीरललित प्रकृत के हैं। भागुरायण की सहायता से ही उनको अपने प्रणय व्यापार मृगाङ्कावली की प्राप्ति में सफलता मिलती है। भागुरायण को भी अपनी सफलता से प्रसन्नता होती है तभी तो वह कहता है - (स्वगतम्) फलितं नो नीतिपादपततयाधिया।

वह बड़ी कुशलतापूर्वक राज्य का संचालन करता है। वह सदैव राजा के हित चिन्तन और साधन में लगा रहता है। वह नाटिका के केवल प्रथम और चतुर्थ अङ्क में ही उपस्थित हुआ है किन्तु सम्पूर्ण नाटिका में उसका महत्व है।

इसके अतिरिक्त विचक्षणा, सुलक्षणा, मेखला आदि अन्य पात्रों का नाम भी उल्लेखनीय है।

कर्णसुन्दरी -

नायक त्रिभुवनमल्ल--

कर्णसुन्दरी नाटिका के नायक त्रिभुवनमल्ल धीरललित प्रकृति के नायक हैं। जब वेष स्वप्नद्रष्टा कर्णसुन्दरी का चित्र तरङ्गशाला में देखते हैं और उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हैं वे स्थल उनकी कलाप्रियता और विचक्षणता के व्यंजक हैं। वे तद्रङ्गशाला में कर्णसुन्दरी के चित्र को देखकर कहते हैं -

एतदेव सितदेवतरुप्रसून-
सौभाग्यमङ्गकविलासवेश्म।
नेत्र स एव च विलोचनयोर्विलास:।
सैवेन्दुसुन्दरमुखी लिखितेयमास्ते ।।१।५८ ।।

वह धीर, सरल और मृदु स्वभाव के व्यक्ति हैं। उनकी कुलीनता का प्रमाण है कि वे नवानुरागा कर्णसुन्दरी के प्रति आसक्त होने पर भी देवी के प्रति अपने सम्मान में कोई कमी नहीं आने देते। नाटिका के द्वितीय अङ्क के अन्त में देवी के उपवन में आने की सूचना पाते ही वे घबरा जाते हैं और भयभीत होकर कहते हैं - राजा- (अग्रतोऽवलोक्य) कथं सत्यमेवागता देवी। अहो बुभुक्षन्धीरमुष्य फलितमङ्गलेन।

यद्यपि देवी कर्णसुन्दरी की प्राप्ति में राजा के लिये व्यवधान ही बनी रहती है, फिर भी वे उसकी आकांक्षाओं पर व्यवघात नहीं पहुँचाते। तृतीय अङ्क के अन्त में देवी के क्रोधित हो जाने पर वे उन्हें मनाने का प्रयास करते हैं और देवी की प्रसन्नता में ही अपना कल्याण समझते हैं --विदूषक: - भो: किं किमरण्यरोदनेन। देव्येवानुसियताम्। राजा-एवमिति ।

कर्णसुन्दरी के प्रति त्रिभुवन मल्ल के हृदय में प्रगाढ़ प्रेम है। कर्णसुन्दरी के साथ परिणय हो जाने पर राजा अत्यन्त प्रेमाभिभूत हो उठते हैं - राजा- (स्वगतम्)

मदन कनकपुङ्खा: सन्त्वसंस्था: पृषत्का:

स्फुरतु विजयलक्ष्मीकर्मठं कार्मुकं ते ।
अपि च सदस्यचरणाां कापि संपच्चकास्तु
प्रियजनविरहधीरेण जातो यदन्तः ।।४।१६ ।।

गर्जननगर के लिये गया हुआ वीरसिंह जब लौटकर राजा को विजय की सूचना देता है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वह एक शक्तिशाली राजा था-
वीरसिंह : --जयति देवः साम्राज्येन ।

इसीप्रकार वीरसिंह द्वारा शत्रुओं के पराजय का जो चित्रण किया गया है उससे राजा के राजनीति निपुण होने का भी परिचय मिलता है । वह राजा के प्रति कहता है --

त्रातारं जगतां विलोलवलयक्वणाकुलेकारवं
सोन्मादामरसुन्दरीभुजलतासंसक्तकण्ठग्रहम् ।
कृत्वा गर्जनकाधिराजमधुना त्वं भूरिरत्नाङ्कुर-
च्छायाविच्छुरिताम्बुराशिरशनादाम्नः पृथिव्याः पतिः ।।४। २२।

किन्तु इन कतिपय गुणों के होने पर भी वह सङ्गीत प्रेमी नहीं है । राज्य की सुदृढ़ता की चर्चा कहीं भी नहीं करता । धीरललित्व की दृष्टि से भी विशेष रोचक नहीं है । अतः एक शक्तिशाली और जानदार चरित्र की दृष्टि से विश्वेश्वर को त्रिभुवनमल्ल के चरित्र-चित्रण में विशेष सफल नहीं कह सकते ।

नायिका कर्णसुन्दरी --

कर्णसुन्दरी प्रस्तुत नाटिका की नायिका और कर्णाटक के राजा विद्याधर की तनया है । राजा विद्याधर की पुत्री होने से उसके नृपवंशजा होने का प्रमाण मिलता है - सूत्रधारः --

विद्याधरेन्द्रतनयां नयनाभिरामां
लावण्यविभ्रमगुणां परिणीय देवः ।

चालुक्यपार्थिवकुलार्णवपूर्णचन्द्र:
साम्राज्यमत्र भुवनत्रयगीतिर्मेति ।।१।१३।।

नायिका को मुग्धा और लावण्ययुक्त होना चाहिये । अपने मित्र विदूषक के साथ तरङ्गशाला में उसका चित्र देखकर उसके अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है - राजा --

एतदेव सिद्धेवतरुप्रसून -
सौभाग्यमङ्गकमनङ्गविलासवेश्म ।
नेत्र: स एव च विलोचनयोर्विलास:
सैवेन्दुसुन्दरमुखी लिखितेयमास्ते ।।१।५२ ।।

अमात्य प्रणिधि ने उसको सर्वभौमपतिका जानकर देवी के अन्त:पुर में रख दिया था । इससे उसकी दिव्यता का भी प्रमाण मिलता है । देवी ने स्वत: कर्णसुन्दरी को चारों समुद्र और पृथ्वी की रत्न-स्वरूपा के रूप में वर्णित किया है - देवी --

भजितच्चतु:समुद्रपृथिव्या रत्नम् ।

कर्णसुन्दरी नायिका अन्त:पुर से सम्बद्ध है । अमात्य प्रणिधि सप्रयोजन उसे अन्त:पुर रख देते हैं जिससे राजा की दृष्टि उस पर पड़े और परस्पर अनुराग होकर दोनों का परिणय हो सके । अन्त:पुर में रहने के कारण दोनों का परस्पर सहज अनुराग हो जाता है और शनै: शनै: वर्द्धित होकर अन्त में परिणय-सूत्र के रूप में प्रकट हुआ - देवी- एषा मया तुभ्यं समर्पिता । इति हस्ते समर्पयति ।)

वह मुग्धा श्रेणी की नायिका है और कनिष्ठा नायिका होने के कारण नववयस्का है । राजा ने द्वितीयाङ्क में उसके सौन्दर्य का जो चित्रण किया है उससे उसके नवयौवना होने के पूर्ण लक्षण स्पष्ट हैं --

धूमश्यामलितेव तापनवशाच्चामीकरस्य च्छवि-
श्चन्द्रो मुक्त इव श्रिया किसलया निर्धौतरागा इव ।
नि:सारेव धनुर्लता रतिपते सुप्तेव विद्युत्प्रभा
तस्या: किं च पुरो विभान्ति कदलीस्तम्भा हदम्भा इव ।।२।१।।

राजा का दर्शन करने के पश्चात् उसके मन में जो अनुराग-भाव उत्पन्न हुआ, वह इतना प्रगाढ़ हो गया कि उसे राजा का वियोग असह्य होने लगता है। अनुभूत वियोग-ताप-दु:ख से व्याकुल होकर कहती है -

नायिका- को जानाति कदा भविष्यति फलं चन्द्रार्धचूडामणि-
प्राणेशाचरणप्रसादतरोर्मेऽस्या चिन्तितस्यापि ।
मूर्च्छन्ती मदनानलेन बहुलं सोढं क्रतापुन-
रिदानीमेव तत्र चरामि परमं यद्दवस्थान्तरम् ।। २।२६ ।।

वह शीलस्वभावा:अत्यन्त लज्जावती है। द्वितीय अङ्क में राजा स्पर्श किये जाने पर किंचित समाश्वसित होकर जब वह राजा को देखती है तो लज्जा-वश नतमुखी हो जाती है।

किन्तु इन कतिपय गुणों से युक्त होने पर भी वह सङ्गीत-कला, चित्र-कला आदि में निपुण नहीं है।

देवी -

देवी चालुक्य राजा त्रिभुवनमल्ल की प्रधान महिषी है। उन्हीं के अधीन नायक एवं नायिका (राजा और कर्णसुन्दरी) का पूर्णतया मिलन हुआ है -
देवी- एषा मया तुभ्यं समर्पिता । भजैतच्चतु:समुद्रपृथिव्यारत्नम् । (इति हस्ते नायिकां समर्पयति ।)

वस्तुत: राजा और कर्णसुन्दरी के पारस्परिक अनुराग के फलित होने का श्रेय देवी ही धारण करती है अत: समस्त कथानक उन्हीं में केन्द्रित रहता है।

नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार वह कतिपय गुणों से युक्त है। प्रगल्भा, नृपवंशजा और प्रौढ़ा युवती है। राजा और कर्णसुन्दरी दोनों ही देवी से भयभीत रहते हैं। द्वितीय अङ्क के अन्त में राजा और कर्णसुन्दरी दोनों का प्रेमालाप होता रहता है। उसी समय विदूषक द्वारा देवी के आगमन की सूचना मिलती है। कर्णसुन्दरी यह सूचना पाते ही अपनी सखी तरङ्गवती के साथ चली जाती है और राजा भी विदूषक के साथ देवी की प्रसन्नता का प्रयास करता है।

राजा की प्रधान महिषी होने के कारण वह राजा के ऊपर अपना एकाधिकार समझती है और यही कारण है कि कर्णसुन्दरी और राजा के प्रेम विषय में उसे ज्ञान हो जाने पर वह अत्यन्त क्रोधित हो उठती है और राजा द्वारा प्रसन्न किये जाने पर भी वह चली जाती है। यह उसकी प्रगल्भता और उसके मान का उत्कृष्ट प्रमाण है।

जब वह तरङ्गशाला में राजा को कर्णसुन्दरी का चित्र देखते हुये देख लेती है उस समय भी वह अपने मान को प्रकट करती है और रुष्ट होकर चली जाती है। इससे ज्ञात होता है कि उनमें ईर्ष्या की भावना भी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि देवी इस नाटिका की ज्येष्ठा नायिका है और नायक तथा नायिका के बाद उन्हीं का महत्व है किन्तु रत्नावली, चन्द्रकला आदि नाटिकाओं की ज्येष्ठा नायिकाओं की तुलना में देवी का चरित्र विशेष सफल नहीं कहा जा सकता। रत्नावली, चन्द्रकला आदि नाटिकाओं में उसके प्रौढ़ा युवती होने का भावानुभावों के प्रकट-गोपन आदि क्रियाओं में निपुण होने का सुन्दर चित्रण हुआ है किन्तु प्रस्तुत नाटिका में देवी के चरित्र में इन पक्षों का सफलतापूर्वक चित्रण नहीं हुआ है।

विदूषक -

कर्णसुन्दरी नाटिका में विदूषक राजा त्रिभुवनमल्ल का मित्र है। वह

राजा के प्रत्येक कार्य में आरम्भ से अन्त तक सहायक के रूप में उपस्थित है । वह प्रकृत्या वाचाल, परिहास-प्रिय, वाक्पटु और स्वाभिमानी मूर्ख है । समयानुसार यथोचित वेष-धारण आदि में दक्ष तथा कलह और रति दोनों में समान रुचि रखने वाला है । वह ब्राह्मण के सभी गुण भोजन, पारितोषिक आदि ग्रहण करने में सदा अनुरक्त रहने वाला, सुस्वादु व मिष्ठान्न का अत्यधिक प्रेमी है । द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में कहता है - विदूषक: -
पिअवअस्सचलणावडणसंतुट्ठदेवीपसादलद्धेहिं मोदएहिं पुट्ठभुट्ठं चिट्ठदि मे उअरं ।
(प्रियवयस्य चरण-पतनसंतुष्टदेवीप्रसादलब्धैर्मोदकै: पुष्टभुक्तं तिष्ठति मे उदरम्।

उसकी वाक्पटुता का परिचय उस समय मिलता है जब वह द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में कर्णसुन्दरी की सखी तरङ्गवती से कहता है - विदूषक: (सत्वर मुपसृत्य ।) भोदि, कीस अङ्ठादो गच्छीअदि । अहं तुह ससिलेहाए विअ मग्गं पलोएमि । तुमं राहुं व मं परिहरसि । किं णेदम् । (भवति) कुतो न्यतो गम्यते । अहं तव शशिलेखाया इव मार्गं प्रलोकयामि । त्वं राहुमिव मां परिहरसि । किं न्वेतत् ।

वह राजा का सर्वत्र सहायक है और व्युत्पन्न मति भी है । किसी भी बात का अकाट्य उत्तर देने में नहीं चूकता । उसके कथन में अधिकतर परिहास का मिश्रण रहता है । तृतीय अङ्क के अन्त में देवी जब राजा के ऊपर क्रोधित होकर चली जाती है तब वह देवी की प्रसन्नता के लिये राजा के प्रति कहता है -
विदूषक :-भो: , किमरण्यरोदनेन । देव्येवानुसियताम् ।

इस नाटिका के विदूषक में कतिपय शास्त्रीय लक्षण ही विद्यमान हैं । शास्त्रीय लक्षणों की दृष्टि से अन्य नाटिकाओं के विदूषकों की तुलना में प्रस्तुत नाटिका के विदूषक को विशेष सफल नहीं कहा जा सकता । नाटिका में कहीं भी विदूषक का नाम नहीं दिया गया है ।

इसके अतिरिक्त प्रणिधि, प्रतीहारी, वीरसिंह आदि पुरुष पात्र तथा हारलता, तरङ्गवती, मन्दोदरि, बकुलवति आदि स्त्री -पात्र भी उल्लेखनीय हैं ।

पारिजातमंजरी -

नायक अर्जुन -

पारिजात मंजरी नाटिका का नायक अर्जुन ऐतिहासिक होते हुए भी धीरललित प्रकृति का नायक है । जब वह राज्ञी के ताटङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखता है और उसके सौन्दर्य का वर्णन करता है वे स्थल उसकी कलाप्रियता के व्यंजक हैं । वह रानी के ताटङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखकर कहता है --

सद्यः साध्वसधूसरेण विकसल्लज्जालसापूरुषा
कर्णान्तालसदृष्टिनाधरपुटोद्भिन्नास्मितश्रीमता ।
स्तवर्णोष्यभिनयप्रफुल्लपुटोसौभाग्यशृङ्गारिणा
तन्व्योयं वदनेन्दुना मम दृशोदैव सुधावर्षिणाम् ।।२।४६ ।।

राजा अर्जुन के चरित्र में धीरता, सरलता और मृदुता के दर्शन होते हैं । इसका प्रमाण है कि वे नवानुरागापारिजातमंजरी के प्रति आसक्त होने पर भी रानी के प्रति अपने सम्मान में कोई भी कमी नहीं आने देते । नाटिका के द्वितीय अङ्क में कनकलेखा को जब राजा द्वारा रानी के ताटङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखने की बात ज्ञात हो जाती तब राजा यह सोचकर घबरा जाते हैं कि कनकलेखा समस्त समाचार रानी को बता देगी और वे उसी की प्रसन्नता का प्रयास करने लगे हैं - राजा- (विदूषकं प्रत्यपवारितकेन) सखे, नूनमनया दासीपुत्र्या दानसंमानपूर्वं चिरनिवारित याप्यथ सर्वं प्रकाशयिष्यते ।

यद्यपि राज्ञी पारिजातमंजरी की प्राप्ति में राजा के लिये व्यवधान बनी रहती है फिर भी वे उसकी आकांक्षाओं पर व्यवघात नहीं पहुँचाते । द्वितीय अङ्क के अन्त में राज्ञी के क्रोधित हो जाने पर वह उसको प्रसन्न करने के लिये पारिजातमंजरी को छोड़ देता है और पारिजातमंजरी आत्महत्या को धमकी देकर चली जाती है ।

पारिजातमंजरी नाटिका के दो ही अङ्क उपलब्ध होने के कारण राजा के बहुमुखी चरित्र का चित्रण करना सम्भव नहीं है ।

नायिका पारिजातमंजरी --

पारिजातमंजरी प्रस्तुत नाटिका की नायिका और चालुक्य नरेश की कन्या थी । राजा चालुक्य की कन्या होने से उसके नृपवंशजा होने का प्रमाण मिलता है - सूत्रधार: -

या चौलुक्यमहीमहेन्द्रदुहिता देवी जयश्री: स्वयं

.... ।।१।६।।

नायिका को मुग्धा और लावण्ययुक्त होना चाहिये । वह रानी के ताडङ्क में उसका प्रतिबिम्ब देखकर उसके अनुपम सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है - राजा -

सद्य: साध्वसधूसरेण विकसल्लज्जालसापाङ्गस्पृशा-
कर्णान्तालसदृष्टिनाधरपुटोद्भिन्नस्मितश्रीमता ।
श्लाघ्याभिनयभ्रूलताभृकुटीशोभाग्रपल्लवकारिणा
तन्व्यार्य वदनेन्दुना मम दृशोर्दत्तः सुधान्वयः णाम् ।।२।४६ ।।

नाटिका के आमुख में सूत्रधार नटी को सूचित करता है कि जयसिंह की सेना जब युद्ध में गई और विजयी अर्जुनवर्मन अपने हाथी पर विराजमान था उस समय उसके वक्षस्थल पर पारिजातमंजरी गिरी और एक तन्वी के रूप में परिवर्तित हो जाती है, उसी समय आकाशवाणी होती है --

मनोज्ञां निर्विशन्नेतां कल्याणीं विजयश्रियम् ।
सदृशो भोजदेवेन धाराधिप भविष्यति ।।१।६ ।।

इससे नायिका की दिव्यता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है ।

पारिजातमंजरी नायिका अन्त:पुर से सम्बद्ध है और मुग्धा श्रेणी की नायिका है । कनिष्ठा नायिका होने के कारण नववयस्का है । राजा के द्वितीयाङ्क

में उसके सौन्दर्य का जो चित्रण किया है उससे उसके नवयौवना होने के पूर्ण लक्षण स्पष्ट हैं --

मुखज्योत्स्नाङ्कुरैरस्याः पीते तमसि मांसले ।
इन्दुनीलाविव: शेषा: परभागं दधत्यमो ।।२।५६ ।।

राजा का दर्शन करने के पश्चात् उसके मन में जो अनुराग भाव उत्पन्न हुआ है वह इतना प्रगाढ़ हो गया है कि उसे राजा का वियोग असह्य लगने लगता है। अनुभूत वियोग ताप-दु:ख से व्याकुल होकर कहती है - नायिका -

यस्मिन्स्वभावसुखदे सर्वकलासंगते दृष्टे पि
दीप्य औषधाविव स दूरं दुर्लभो राजा ।।२।६२

किन्तु इन कतिपय गुणों से युक्त होने पर भी नाटिका के दो ही अङ्क उपलब्ध होने के कारण नायिका के चरित्र का सुचारु रूप से मूल्याङ्कन नहीं किया जा सकता ।

रानी (सर्वकला)

रानी धारा नरेश अर्जुनवर्मन् की प्रधान महिषी हैं और कुन्तल के राजा की पुत्री हैं --

समुच्चयेन या सृष्टा कलानां परमेष्ठिना ।
कुन्तलेन्द्रसुता सेयं राज्ञः सर्वकला प्रिया । १।११ ।।

वह प्रगल्भा, नृपवंशजा और प्रौढ़ा युवती है। राजाअर्जुन और पारिजात-मंजरी दोनों ही रानी से भयभीत रहते हैं। द्वितीय अङ्क में राजा द्वारा रानीके ताडङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखने की बात जब कनकलेखा को ज्ञात हो जाती है तब राजा और पारिजातमंजरी दोनों ही भयभीत हो उठते हैं।

राजा की प्रधान महिषी होने के कारण वह राजा के ऊपर अपना एकाधिकार समझती है और उसमें ईर्ष्या की भावना भी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रानी इस नाटिका की ज्येष्ठा नायिका हैं और नायक तथा नायिका के बाद उन्हीं का महत्व है किन्तु अन्य नाटिकाओं

की ज्येष्ठा नायिकाओं की तुलना में रानी का चरित्र विशेष सफल नहीं कहा जा सकता ।

विदूषक -

पारिजातमंजरी नाटिका में विदूषक राजा का अभिन्न मित्र है । वह सदैव राजा के सहायक के रूप में उपस्थित है । वह प्रकृत्या वाचाल और परिहास प्रिय है । उसकी वाक्पटुता का परिचय उस समय मिलता है जब वह द्वितीय अङ्क में राजा से कहता है - विदूषकः-वयस्य, मारितस्य मृतस्य चैकमेव नाम ।

~~इसके अतिरिक्त कुसमाकर आदि अन्य पुरुष~~ वह गायन तथा नृत्य आदि में रुचि रखने वाला है । नाटिका के प्रथमाङ्क में वह राजा से गर्वपूर्वक कहता है- विदूषकः (सदर्पम्) कथं गेयं न जानामि । यदा मे ब्राह्मणी बहुविकटदन्तसुन्दरम् मुखं प्रसार्य मङ्गलगानि गीयति तदाहं गोपीगेयग्राहितो हरिणा इव प्राणान्दानु- मिच्छति ।

इसके अतिरिक्त कुसमाकर आदि अन्य पुरुष पात्र तथा वसन्तलीला आदि स्त्री-पात्र उल्लेखनीय हैं ।

कुवलयावली -

नायक नाट्य शास्त्रों में नायक के लिए वर्णित लगभग सभी गुण कुवलयावली नाटिका के नायक प्रसन्नगोमलदेव में विद्यमान हैं । नाटिका के नायक धीरललित प्रकृति के हैं । कुवलयावली उनके सौन्दर्य की अतिशय प्रशंसा करती है -

कुवलयावली- (विलोक्य स्वगतम्) अहो सौन्दर्यविशेषो यद्देवस्य । अतिमात्रसम्मोहन- त्वमाकृतिविशेषस्य ।

राजा ने कभी अपनी शक्ति एवं अपने साहस की उपेक्षा नहीं की है । वह प्रतापी राजा थे । जिस समय कुवलयावली को दानव उठा ले जाता है, उस समय

रानी रुक्मिणी राजा को सहायता माँगती है। राजा अपनी शक्ति के बल से दानव का विनाश करके कुवलयावली को लाकर रुक्मिणी को सौंप देते हैं। जिस समय राजा कुवलयावली की खोज में जाते हैं, उसी बीच नारद जी आकर राजा की शक्ति का परिचय देते हुये रुक्मिणी से कहते हैं --

ऐसुरा: सप्ताब्धिपुरार्भं य (दे ? में)जनक्त महोदरम् ।
चक्रधाराग्निना सर्पिर्बिन्दुशीर्ष स शोषित: ।।६ ।।

वह सरल तथा मृदु स्वभाव के पुरुष हैं। जब रुक्मिणी उनसे अपनी रक्षा की प्रार्थना करती है उस समय राजा कितनी सरलता एवं सुशीलता के साथ सादरपूर्वक रुक्मिणी से कहते हैं -

राजा --(सादरमुपसृत्य) अयि विदर्भराजनन्दने । महादेवि ।

मयित्रातरि पातालभूतलस्वर्गवासिनाम् ।
तवाज्ञाकरतां प्राप्ते कुतस्ते भीतिरागता ।। ४१ ।

महारानी रुक्मिणी के प्रति उनके हृदय में इतनी अधिक श्रद्धा है कि कुवलयावली के प्रति आसक्ति होने पर भी वे अपनी महारानी के प्रति अपने मान, सम्मान, विनम्रता, सहनशीलता, स्नेह आदि के भावों में न्यूनता नहीं आने देते। देवी की सखी चकोरिका के आगमन का समाचार सुनते ही वे कुवलयावली को छोड़कर अँगूठी को गिराकर अपने मित्र श्रीवत्स के साथ छिप जाते हैं -

चन्द्रलेखा-(आकर्ण्य) अहो चकोरिका इत आगच्छति ।
(राजा कुवलयावलीं विसृज्य मुद्रिकां पातयन् सवयस्यस्तिरोहितस्तिष्ठति ।)

यद्यपि देवी कुवलयावली की प्राप्ति में राजा के लिये व्यवधान ही बनी रहती है लेकिन वे कभी देवी की आकांक्षाओं पर आघात नहीं पहुँचाते। देवी के क्रोधित हो जाने पर वे उन्हें मनाने के भी सारे प्रयास करते हैं। देवी की प्रसन्नता में ही वे अपना समस्त कल्याण समझते हैं -

नारद: -- (सप्रश्रयं नारदं प्रणम्य) भगवन् ! त्वत्प्रसादेन देवीप्रसादेन च कति कति वा श्रेयांसि न मामनुबध्नन्ति ।

नायिका कुवलयावली के प्रति भी राजा के हृदय में प्रगाढ़ प्रेम है । देवी क्रोधित हो जाने पर कुवलयावली को कितना कष्ट देंगी इस बात को सोचकर बहुत व्याकुल हो जाते हैं --

नायक -- सखे ! महोत्सवप्रनिवृत्ता देवी प्रसङ्गमिमाकर्ण्य कियत् पीडयिष्यत तव प्रियसखीमिति पर्याकुलो स्मि ।

यह सब नायक के ही मृदु स्वभाव का ही परिणाम था । इस प्रकार राजा प्रसन्नगोमलदेव धीरता, गम्भीरता, मृदुता, सुशीलता आदि सभी गुणों से युक्त होने के कारण नाटिका के लिये सर्वथा उपयुक्त नायक हैं ।

नायिका कुवलयावली --

'नवानुरागा कन्यात्र नायिका नृपवंशजा' (सा०द०। परि० ६) के अनुसार कुवलयावली नाटिका की सर्वगुण सम्पन्ना नायिका है । महर्षि नारद उसके पोषक पिता का स्थान ग्रहण करते हैं और रुक्मिणी उसकी ज्येष्ठा भगिनी है -'सा खलु महर्षिणा पुनरपि तपोवनं नीतेति प्रवादं कृत्वास्मादृशजनस्य दुर्गम सम्पत्कृतप्रासादपुरङ्गागृहे स्थापिता कुलक्रमागतेन विश्वासिना माधवकुलपरिजनेन सधौ रक्ष्यते' । राजा जब दानव को मारकर कुवलयावली को लाकर रुक्मिणी को सौंप देते हैं तो महारानी रुक्मिणी कहती हैं -'भगिनिके ! त्वया द्वितीया अज्ञात-शरीरया कौक्वादात् विमुक्तास्मि ।' इससे यह पता चलता है कि नायिका कुवलयावली नृपकुलोत्पन्ना है ।

वह सुन्दर, लज्जावती, मृदुस्वभावा, यौवनमदविकारपूर्ण मुग्धा नायिका है । वह अन्त:पुर से सम्बद्ध है -

नायक :-'सा किल भगवता नारदेन परिन्यासीकृत विदर्भराजनन्दनाया वशे वर्तते ।' महर्षि नारद ने उसे रानी के सान्निध्य में सप्रयोजन रखा था जिससे राजा की दृष्टि उस पर पड़े, दोनों का अनुराग हो फिर अन्त में परिणय सम्भव हो सकेगा ।

उसके रूप-लावण्य के सम्बन्ध में भी राजा ने उसको अनिन्द्य - सुन्दरी के रूप में स्वीकार किया है। उसकी सुन्दरता का वर्णन राजा ने स्पष्टतया किया है --

> विलोलद्भ्रूवीचीविचलितकटाक्षोत्पलवनात्
>
> कनद्ग्रीवाकम्बोः कुचयुगलचक्राङ्गमिथुनात् ।
>
> लताङ्ग्या लावण्यादमृतसरसः कैरपि कणै-
>
> र्विकीर्णैरन्यासां रुचिमपि तथातीतिकलये ।।६ ।।

अन्तःपुर में रहने के कारण कुवलयावली से राजा को, राजा से कुवलयावली को सहज अनुराग होता है और वह अनुराग: शनैः शनैः वर्द्धित होकर अन्त में दोनों के परिणाय-सूत्र बन्धन के रूप में प्रकट हुआ। नायिका कुवलयावली नाट्य शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार मुग्धा श्रेणी की नायिका है। वह महारानी की कनिष्ठा भगिनी होने के कारण नववयस्का है। राजा का दर्शन करने के पश्चात् उसके मन में जो अनुराग-भाव उत्पन्न हुआ वह इतना प्रगाढ़ हो गया कि उसे राजा का वियोग असह्य होने लगता है। अनुभूत वियोग ताप, दुःख से वह अत्यन्त व्याकुल हो उठती है - कुवलयावली-प्रथमं कर्पूरेण धूपितं मदनानलमिदानीं किमिति कदलीदलानिलैः प्रज्वलितं करोषि। (इति तान्यपश्यति) ३([illegible])

वह शीलस्वभावा अत्यन्त लज्जावती है। अपनी सखी सुनन्दना के साथ विचरती हुई जब भी राजा को वह देखती है, उसका मुख नम्र हो जाता है।

अस्तु, कुवलयावली, मृदुस्वभावा, अनुरागवती, लज्जावती होते हुये भी सङ्गीत एवं चित्रकला आदि में निपुण नहीं है, परन्तु रूप-लावण्य की भूमि होने के कारण वह अपने पाणि-ग्रहण से सनाथ राजा को महाबली का पात्र बना देती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नाटिका की नायिका कुवलयावली नाट्यशास्त्रीय लक्षणों से युक्त है।

रुक्मिणी --

महारानी रुक्मिणी महाराज की प्रधान महिषी हैं। उसी के अधीन नायक-नायिका (राजा एवं कुवलयावली) का पूर्णतया सम्मिलन हुआ -- रुक्मिणी (जनान्तिकम्) भगवन् । समर्पयामि कुवलयावलीमार्यपुत्रस्य ।

वस्तुत: समस्त कथानक देवी रुक्मिणी में ही केन्द्रित है, वही नायक नायिका के पारस्परिक अनुराग के अङ्कुरण, पल्लवन एवं अन्त में फलित करने का श्रेय कारण करती है।

नायक एवं नायिका दोनों ही इसमें भयभीत व सशङ्क रहते हैं। जैसा कि नाट्यशास्त्रीय देवी को होना चाहिये, सभी गुणों से वह सम्पन्न है। वह प्रगल्भा, मानवती, नृपवंशजा है और प्रौढ़ा युवती है।

अन्त में महारानी रुक्मिणी का चरित्र बहुत उज्ज्वल होकर प्रकट होता है। वह लोकवाद के भय से कुवलयावली को दानव से बचाने का प्रयास करती है और राजा की सहायता माँगती है - रुक्मिणी (सनिर्वेदम्) हला सुगन्धिके ! आत्मन उपेक्षातः साधुवन्दीकृतया कुवलयावल्या हन्त रुक्मिणी परिजनघातिनी निस्संशयमिति लोकवादे निमग्नास्मि । तत् कलङ्कपङ्किलेन किमात्मनो जीवितेन । विज्ञापयात्मनो व्यवसायमार्यपुत्रस्य । रुक्मिणी स्वयं कुवलयावली का राजा के साथ परिणय कराकर परमानन्द और सन्तोष का अनुभव करती है। रुक्मिणी- (जनान्तिकम्) भगवन् । समर्पयामि कुवलयावलीमार्यपुत्रस्य ।
नारद: - त्वमस्या: प्रभवसीति पूर्वं निवेदितमस्माभि: ।
रुक्मिणी- आर्यपुत्र । यथाहं तव माननीया तथेयं त्वयास्मन्निर्विशेषं द्रष्टव्या ।
(इति नायिकाहस्तं नायकस्य हस्ते समर्पयति ।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि महारानी रुक्मिणी नाटिका की सर्वगुणोपेता ज्येष्ठा नायिका है। नायक एवं नायिका के पश्चात् वस्तुत: इसी का नाटिका में महत्त्व है।

श्रीवत्स --

कुवलयावली नाटिका में श्रीवत्स राजा प्रसन्नगोमल्लदेव का सहायक है। यह राजा के प्रत्येक कार्य में (चाहे वह प्रणाय-व्यापर हो अथवा मनोरंजन) सहायक के रूप में नाटिका के प्रारम्भ से अन्त तक उपस्थित है। प्रकृत्या यह वाचाल, परिहास-प्रिय, वाक्पटु एवं स्वाभिमानी मूर्ख है। समयानुसार यथोचित वेष-धारण, शरीर प्रदर्शन, क्रिया-सम्पादन आदि में दक्ष, कलह-रति दोनों में रुचि रखने वाला यथावसर पठिता-वाणी-कुशल है। शास्त्रीय लक्षणों एवं आचार्यों के निर्देशानुसार ही इसका नाम श्रीवत्स है। वह ब्राह्मण के सभी गुण भोजन, पारितोषिक आदि ग्रहण करने में सदा अनुरक्त रहनेवाला, सुस्वादु, मिष्ठान्न का अत्यधिक प्रेमी है।

विदूषक राजा का सर्वत्र सहायक है। वह एक व्युत्पन्नमति भी है। किसी भी बात का अकाट्य उत्तर देने में वह कभी नहीं चूकता। उसके प्रत्येक कथन में परिहास का सम्मिश्रण अवश्य रहता है। वह वस्त्र और आभूषणों का भी प्रेमी है।

इसके अतिरिक्त सत्यभामा, चन्द्रलेखा, चकोरिका, नारद आदि का नाम उल्लेखनीय है।

चन्द्रकला नाटिका -

नायक चित्ररथ देव -

चन्द्रकला नाटिका के नायक चित्ररथदेव धीरललित प्रकृति के हैं। नाट्य शास्त्रों में वर्णित लगभग समस्त गुणों का समावेश उनके चरित्र में है। वे प्रशस्त कुलोद्भूत हैं। शत्रुओं को पराजित करके निश्चिन्त होकर राज्य करते थे। चोल, बंग, म्लेच्छ, लाट, कर्णाट आदि के समस्त राजा अपने शौर्य का राजा चित्ररथदेव

के महाप्रताप में विलयन कर चुके थे। कहीं किसी प्रकार शत्रुओं के विद्रोह का भय न था। सम्पूर्ण राज्य पर उनका प्रहरी बना रहता। विदूषक: - उत्पाटिताशेषकण्टकस्य राज्यपालननियुक्त धीसचिवस्यकलितरति मात्रकौतूहलस्य न खलु ते धरणी-चिन्ताकिन्तु तरुणीचिन्ता।

सम्पूर्ण नाटिका में किसी भी स्थल पर यह आभास नहीं होता कि वह राज्य में शान्ति आदि स्थापित करने की चर्चा करता हो। केवल सदैव अपने सुहृद् विदूषक (रसालक) के साथ हास-परिहास, विलास में लीन रहता है।

वह सङ्गीत तथा कलाप्रेमी है। समस्त कलाकारों को आदर-सम्मान देता है। उनकी कला के विकास में योगदान भी देता है।

उसकी कलाप्रियता के भावाभिव्यंजक वे स्थल नि:सन्देह एक कवि हृदय का परिचय देते हैं जब वह अपनी प्रियतमा चन्द्रकला के स्वभाव अथवा सौन्दर्य का कथन करता है -

> अव्याकुन्दमहीनिशं विकसितं सौवर्णमत्राश्रितं
> रम्भास्तम्भकुम्भयुगंततस्व पुलिनं लावण्यवारिप्लुतम्।
> तस्मिन्नन्दकुम्भयुगलं रेखैकलेशोद्धृतं
> राजत्यत्र पुन: कलङ्करहित: शीतद्युतेर्मण्डल: ।। १।१२ ।।

वह धीर, गम्भीर, कलासक्त और मृदु स्वभाववाला है। उसकी धीरता और गम्भीरता का परिचय उस समय मिलता है जबकि वह चन्द्रकला के प्रति आसक्ति

होने पर भी रानी वासवदत्ता के प्रति स्नेह भाव में कोई न्यूनता नहीं आने देता। वासवदत्ता उसके लिये चन्द्रकला-प्राप्ति में बाधक बनी रहती है फिर भी वह उसकी भावनाओं को आघात नहीं पहुँचाता। प्रतिपल महारानी को प्रसन्न करने के प्रयास में ही लगा रहता है।

उसकी मृदुता का परिचय उस समय मिलता है जब वह रसालक द्वारा मणिमन्दिर में पहुँचने का वसन्तलेखा द्वारा आमन्त्रण पाकर तुरन्त विदूषक के साथ वहाँ उपस्थित होता है। द्वितीय अङ्क में रात्रि में वसन्तलेखा के साथ स्वच्छ ज्योत्स्ना स्नात सरोवर-कमल देखता है और उसके मुख की प्रशंसा करता है -

विरहिकुलकृतान्तः काञ्चनकर्पूरकान्तः
कृपयुवधृतिमङ्गः सम्भृतानङ्गरङ्गः।
गगनजलधिहंसः स्थाणुचूडावतंसः
शमितकुमुदतन्द्रः शोभते शुभ्रचन्द्रः ।। २१ ।।

इस प्रकार राजा चित्ररथदेव का चरित्र-चित्रण नाटिका के अनुरूप हुआ है। इसीलिये नाटिका के अन्त में लक्ष्मी ने उसके दो अभीष्टों को पूरा होने की स्वीकृति दी है -

'आचन्द्रतारकं मातर्मा विमुंच कुलं मम।
भूयादविरतं भक्तिस्त्वयि मेऽव्यभिचारी ।। ४।१४

नायिका चन्द्रकला -

चन्द्रकला नाटिका की नायिका चन्द्रकला है। वह पाण्ड्येश्वर की द्वितीया कन्या है। प्रथम अङ्क की प्रस्तावना में मन्त्री सुबुद्धि का कथन उसके नृप कुलोत्पन्न होने की पुष्टि करता है -'राजवंश्यैषेति कथयित्वा यत्परितोष-कारिणा मदन्तिकं प्रहिता।' वह महारानी वसन्तलेखा की कनिष्ठा भगिनी है। पाण्ड्येश्वर के यहाँ से आये बन्दीगण जब कहते हैं - यत् किल वनविहारावसरे देव्याः समानाविह प्रभा काचित् कुमारिका केनचिदपहृत्य नीता। अङ्क ४।

उस समय महारानी ने आँखों में आँसू भरकर कहा- वहिणी कुदो उणावट्ठेदि (भगिनि तुक अब कहाँ हो ?) ।

नायिका चन्द्रकला अन्त:पुर से सम्बद्ध है । मंत्री सुबुद्धि कहता है कि महारानी के ही अन्त:पुर में अपनी सम्बन्धिनी कहकर रखवा दिया है - सुबुद्धि : मम वंशजेयं सखीपदे स्थापयित्वा परिपालनीयेति सादरं समर्पिता देव्या: । वह इसलिये आरण्यका को अन्त:पुर में रख देता है जिसे राजा की दृष्टि उस पर पड़े और दोनों का परस्पर अनुराग होकर अन्त में परिणाय हो सके, क्योंकि -

यस्तु भूमिपतिर्भूनो पाणिमस्या ग्रहीष्यति ।
लक्ष्मी: स्वयमुपागता वरमस्मै प्रदास्यति ।। १।६ ।।

चन्द्रकला सुन्दर और लज्जावती भी है । मंत्री सुबुद्धि ने उसके रूप-लावण्य के विषय में निरुपम सौन्दर्य लक्ष्मीरिव कहा है । पाण्ड्येश्वर से आये बन्दिगणों ने भी उसके सौन्दर्य का स्पष्टतया वर्णन किया है । राजा चित्ररथदेव उसके रूप-लावण्य का वर्णन करते हुये कहते हैं -

सा दृष्टिनवनीलनीरजमयी वृष्टिस्तदप्याननं
हेलामोहनमंत्रयंत्रजनिताकृष्टिर्जगच्चेतस: ।
सा भ्रूवल्लिरनङ्गशार्ङ्गधनुषो यष्टिस्तथास्यास्तनु-
र्लावण्यामृतपूरपूरणमयी सृष्टि: परा वेधस: ।। १।७ ।।

चन्द्रकला मुग्धा प्रकृति की नायिका है । वह नववयस्का नवकामवती, रति प्रतिकूला और क्रोध में कोमल है । वह वसन्तलेखा की कनिष्ठा भगिनी होने से नववयस्का है । प्रथमाङ्क में राजा के इस कथन से उसके नवयौवना होने की पुष्टि होती है -

राजा - अव्जद्वन्द्वमहर्निशं.......... शीतद्युतिर्मण्डल: ।।१।१३

राजा के ही नूनमियमन्तर्निगूढ मदनविकारा वर्तते (प्रथम अङ्क) इस कथनसे उसके नवकामवती होने का भी प्रमाण मिलता है । रतिप्रतिकूला होने के

कारण राजा के प्रथम दर्शन के समय ही उसे इतना प्रगाढ़ अनुराग हो जाता है कि राजा का वियोग उसे असह्य होने लगता है और वह अत्यन्त दुखी हो उठती है --

जरठलवलीपाण्डुक्षामं जटालशरीरका
ललितनलिनीपत्रे गात्रं निवेश्य मृगीदृशा ।
मुकुलितदृशा रागोद्भेद प्रभिन्नकपोलया
स्तिमितमनसा धन्यः प्रेयान् क एव विचिन्त्यते ।।

चित्रकला शीलस्वभाव वाली और लज्जावती है । अपनी सखी सुनन्दना के साथ विचरण करते समय वह राजा को देखकर अत्यन्त लज्जा का अनुभव करती है । सखी के साथ वार्तालाप में कोई रुचि न रखते हुये वह असङ्गत सा उत्तर देती है --

हसति परितोषरहितं निरीक्ष्यमाणापि नेक्षते किमपि ।
सख्यामुदाहरन्त्यामसमंजसमेवोत्तरं दत्ते ।।१/१४ ।

उसके अनुरागवती और लज्जाशीला होने का यह भी प्रमाण है कि विदूषक रसालक द्वारा चयन किये गये पुष्पों का षष्ठांश राजा की सम्पत्ति होने के कारण प्रदान किये जाने की बात जब कही जाती है तो चन्द्रकला वहाँ से लज्जावश हट जाती है किन्तु अनुरागाधिक्य के कारण उसके हाथ से पुष्प गिर जाते है । किन्तु वह चित्रकला और संगीत में निपुण नहीं है । इस प्रकार चन्द्रकला नाट्य शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार सर्वगुणसम्पन्ना नायिका नहीं कही जा सकती ।

वसन्तलेखा --

वसन्तलेखा चन्द्रकला नाटिका की ज्येष्ठा नायिका है । वह नाट्य-शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार लगभग सर्वगुण सम्पन्ना नायिका है ।[1] पाण्ड्यनरेश की ज्येष्ठा कन्या होने के कारण नृपवंशजा है । वह प्रगल्भा, मानवती और प्रौढा

---

१. सम्प्रवर्तेत नेतास्यां देव्यास्त्रासेन शङ्कितः ।
पदे पदे मानवतीतद्वशः संगमो द्वयोः ।। [illegible] । परि० ०६ ।

युवती है । नायक चित्ररथदेव और नायिका चन्द्रकला दोनों का मिलन उसी के अधीन रहता है । नाटिका के चतुर्थ अङ्क में पाण्ड्याधिपति के बन्दीगण कहते हैं - तदिदं यदा च वसन्तलेखा अनुजानाति तदा मदनुमत एव गृह्यतात् पाणिमस्या देवः इति (अर्थात् जिसका समाचार ब्राह्मणों ने भेजा था, उस कन्या के साथ आप, यदि वसन्तलेखा अनुमति दें तो पाणिग्रहण कर लेने को मेरी स्वीकृति है । अङ्क - ७)

नाटिका का समस्त कथानक रानी वसन्तलेखा में ही केन्द्रित है । चित्ररथ-देव और चन्द्रकला का मिलन उसी के अधीन रहता है । नायक और नायिका के अनुराग के पारस्परिक अङ्कुरण, पल्लवन और फलन का श्रेय प्राप्त करती है । नायक और नायिका दोनों उससे भयभीत रहते हैं । वह रामानुराग के भावानुभावों के प्रकट और गोपन में निपुण है । रात्रि की चन्द्र ज्योत्स्ना में प्रमदोपवन में राजा के साथ विचरती हुई कहती है - एतेन किल अमृतमधुरेण दीर्घिकाकुमुदिन्याः किसलयकरे स्वयमेव करोऽर्पितो वर्तते । तदिदानीं एतयोः परिणयार्थं तव सन्नि-धानमात्रं मया कांक्ष्यते - अङ्क २ ।

नाटिका के अन्त में वसन्तलेखा स्वयं चन्द्रकला और चित्ररथदेव का परिणय कराकर परमानन्द और सन्तोष का अनुभव करती है - आर्यपुत्र ! माता पित्रोर्मम-माप्यनुमत्या करे इदानीं गृहाणेनाम् अङ्क ४ (महाराज ! मेरे माता-पिता की और मेरी अनुमति से आप इसका पाणिग्रहण करें ।)

इस प्रकार नाटिका के अन्त में उसका चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल होकर प्रकट होता है । नायक और नायिका के बाद नाटिका में इसी का विशेष महत्त्व है ।

विदूषक रसालक -

रसालक राजा चित्ररथ देव का परम मित्र है । नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार ही उसका नाम रसालक है । वह प्रकृत्या वाचाल वाक्पटु, परिहासप्रिय, कलह और रति दोनों में रुचि रखने वाला है ।[१] वह स्वाभिमानी मूर्ख और यथा-

---

१. कुसुमवसन्ताद्यभिध कर्मवपुर्वेष भाषाद्यैः ।
हास्यकरः कलहरति विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः ।। सा० द० परि०३.

वसर पढ़ता वाणी कुशल है । प्रारम्भ से अन्त तक चाहे वह प्रणय व्यापार हो अथवा मनोरंजन, सर्वत्र राजा की सहायता करता है । ब्राह्मण होने के कारण भोजन, पारितोषिक आदि ग्रहण करने में उत्सुक रहने वाला मिष्ठान्न व सुस्वादुभोजन का अत्यधिक प्रेमी है । वस्त्रों और आभूषणों का भी प्रेमी है ।

वह सर्वत्र राजा का सहायक है । जब वह चन्द्रकला और चित्ररथदेव का मिलन सहज में होते नहीं देखता तब व्याघ्र का स्वांग रच कर सपरिवार महारानी को वहाँ से हटाने का उपाय ढूँढ लेता है और उसे सफलता भी मिलती है । वह व्युत्पन्नमति भी है । प्रत्येक बात का परिहास से युक्त अकाट्य उत्तर देता है ।

मंत्री सुबुद्धि -

सुबुद्धि राजा चित्ररथदेव का राज्य संचालित करने वाला मंत्री है । राजा की सफलता का श्रेय मंत्री सुबुद्धि की कार्य-कुशलता है क्योंकि धीरललित नायक की सिद्धि का श्रेय उसके मंत्री पर निर्भर करता है ।[१] वह नीतिपटुता के साथ राज्य का शासन चलाता है - राज्यपालननियुक्तधी सचिवः - (प्रथमाङ्क) वह राजा के हितों के चिन्तन में रहता है । यद्यपि उसकी उपस्थिति नाटिका के केवल प्रथम व चतुर्थ अङ्क में है किन्तु उसका महत्व सम्पूर्ण नाटिका में है ।

इसके अतिरिक्त सुनन्दना रतिकला, माधविका, अमात्य, पाण्ड्यदेशागत बन्दीगण आदि अन्य पात्र का चरित्र भी उल्लेखनीय है ।

मृगाङ्कलेखा नाटिका -

नायक -

शास्त्रीय ग्रन्थों में नाटिका के नायक के लिये जो लक्षण वर्णित किये गये हैं, मृगाङ्कलेखा नाटिका के नायक में लगभग वे सभी गुण विद्यमान् हैं ।

---

१. मंत्रिणा ललितः शेषा मंत्रिस्वायत्त सिद्धयः ।। द्वितीय प्रकाश ।

राजा कर्पूर तिलक धीरललित प्रकृति के नायक हैं। नायिका मृगाङ्कलेखा उनके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये कहती है -

मृगा० - ततस्तत्र प्रमदवने मदनमहोत्सवे कोऽपि नीलोत्पलश्यामलोऽङ्गो ति गम्भीराकृति मदन इव प्रत्यक्षीकृत शरीरो दृष्ट: कुमार: ।

राजा जहाँ पर मृगाङ्कलेखा के सौन्दर्य का वर्णन करता है वे स्थल उसकी कलाप्रियता एवं विचक्षणता के व्यंजक हैं। राजा सखियों के साथ मृगाङ्कलेखा को आते हुये देखकर विदूषक से उसके लावण्य का वर्णन करते हुये कहता है-

विषमशरशरप्रहार शीर्षैरपि मधुरीरयमङ्गना ङ्गकै: स्वै: ।
विशदयति मनोऽनुरागबन्धं विरुधिमुखी सुमुखी सखीजनेषु ।।२४।।

तथा हि

परिणामिरङ्गै: प्रतिपदुदितेन्दोरिव कला
विलासप्रागल्भ्यं प्रथयति च विश्वासमरसै: ।
विधेया तन्वङ्गी स्मरदहनसन्तापसुभगे
कपोले लावण्यं ललितलवलीपाकमधुरम् ।।२५।।

राजा ने कभी अपने साहस एवं शक्ति की उपेक्षा नहीं की। वे महान् प्रतापी राजा थे। जब दानवाधिप शङ्खपाल मृगाङ्कलेखा का अपहरण करके उसको कालिकायतन में रख देता तब उसके वियोग में क्षुब्ध हृदय वाला राजा प्राण-परित्याग की इच्छा से श्मशान जाता है। वहाँ वह कालिकायतन में उस दानवेन्द्र को मारकर मृगाङ्कलेखा को वहाँ से लाकर एकान्त में स्थापित कर देता है। राजा के साहस शक्ति के परिचय का अङ्कन निम्न श्लोक द्वारा किया जा सकता है -

राजा - (सस्मितम्)

चद्रामो जनकात्मजा पहरणो भीमोऽपि यत्क्रोधन:
पाँचालीकचकर्षणो रचितवान् तत्किं न ते विश्रुतम् ।
क्रोधोन्माथितकण्ठपीठरुधिरैरभ्यर्च्य शम्भोः प्रिया
तत्कर्म करोमि येन भवतो नामाऽपि न श्रूयते ।। २६ ।।

वह धीर, गम्भीर, साहसी, सरल तथा मृदु स्वभाव के पुरुष हैं। उनकी शक्ति एवं मृदुता दोनों का परिचय उस समय मिलता है जब शङ्खपाल गजेन्द्र के रूप में आकर नागरिकजनों को आतङ्कित करता है। कामरूपेश्वर, देवी विलासवती, मृगाङ्कलेखा, विदूषक इत्यादि सभी पात्र भय से काँपने लगते हैं। राजा अपने सरल स्वभावानुसार सबको आश्वासित करते हुये कहता है -
राजा- भगवतीं नमस्कृत्य तिष्ठन्तु भवन्त:। यावदहमेतमास्कन्द्य संभावयामि ।

उनकी कुलीनता का उत्कृष्ट परिचय तो उस समय मिलता है जब वे नवानुरागा मृगाङ्कलेखा में आसक्त होने पर भी देवी विलासवती के प्रति अपने सम्मान में शिथिलता नहीं आने देते। मृगाङ्कपूजन के हेतु देवी के आगमन का समाचार सुनते ही वे घबरा जाते हैं और मृगाङ्कलेखा को दूसरी ओर भेज देते हैं इसकी व्यंजना राजा की निम्न उक्ति द्वारा होती है --

राजा - (ससम्भ्रमम्) सुन्दरि ! गच्छाग्रत:। अहमप्यागतस्त्वाऽनुपदम् ।

नायिका मृगाङ्कलेखा के प्रति भी राजा के हृदय में प्रगाढ़ प्रेम है। दानवेन्द्र जब मृगाङ्कलेखा को कालिकायतन में उठा ले जाता है तो उसके वियोग में प्राण त्यागने का भी तैयार हो जाते हैं --
राजा- तत्सुप्रावितो परित्यज्य तत्प्राप्तये श्मशानकालिकामेव स्वोयञ्जतजेन तोषयामि ।

कामरूपेश्वर के तनय चण्डघोष ने कलिङ्गेश्वर की राज्यशोभा का जितना सुन्दर वर्णन किया है उससे यह सिद्ध हो जाता है कि उसके राज्य की शोभा अतुलनीय थी --

एकस्तत्र गजाधिप: प्रतिगृहं मत्ता गजेन्द्रावली
तत्रैकस्तुरगोऽत्र वातजवनालङ्घाधिका: सैन्धवा: ।

तत्रैको बुधभावमञ्चति बुधाः सर्वेऽपि ते नागराः
स्तत्रैकाऽस्ति तिलोत्तमा मृगदृशः सन्त्यत्र सर्वोत्तमाः ।।८।।

इसी प्रकार नीतिवृद्ध (कामकेश्वरामात्य) भी चण्डघोष का समर्थन करते हुये कहते हैं--

नीतिवृद्ध :--भट्टदारक ! किमेतदाश्चर्यं भवतः ।

यच्छौर्याद् धवलीकृते त्रिभुवने मुग्धा किरातांगना
गुञ्जापुञ्जमियं जहाति विलासन्मुक्ताधिया सर्वतः ।
जम्बूकादपि भीतिमेति सहसा पारीन्द्रबुद्ध्या करी
स्वां नारीमपि हन्त कोकिलयुवा हंसीधिया मुञ्चति ।।९ ।।

कामकेश्वर राजा कर्पूरतिलक के गुणों तथा सौन्दर्य पर अतिशय ब अनुरक्त होकर कहते हैं - कामके० - अयं च निरुपमगुणो राजा कर्पूरतिलकः ।

(राजानमवलोक्य)

सौन्दर्येण मनोभवाकृतिरसौ शौर्येण सिंहोपमः
पाण्डित्येन बृहस्पतिप्रतिभटो लक्ष्म्या मराधीश्वरः ।
भूभारोद्वहने भुजङ्गमपतिश्चाणक्यशास्त्रे गुरुः
सन्तोषं कुरुते मदीयहृदये सोऽयं धराधीश्वरः ।।१२ ।।

इन समस्त गुणों के विद्यमान होने पर भी इस नाटिका में एक भी स्थल ऐसा नहीं है जहाँ यह आभास मिले कि राजा अपने राज्य की सुदृढ़ता एवं उसमें शासन तथा शान्ति बनाये रखने की चर्चा करता है । वह अपने मित्र विदूषक के साथ सदैव हास-परिहास तथा लास में ही लगा रहता है ।

इस प्रकार कतिपय कमी होने पर भी मृगाङ्कलेखा नाटिका के नायक राजा कर्पूरतिलक को धीरललित, धीर, गम्भीर, सुशील, मृदु, साहसी, कलासक्त, प्रशस्त, कुलोद्भूत, कुलीन तथा नाटिका के लिये सर्वथा उपयुक्त एक सफल नायक कहा जा सकता है ।

नायिका मृगाङ्कलेखा --

मृगाङ्कलेखा इस नाटिका की सर्वगुणसम्पन्ना नायिका है । वह कामरूपेश्वर की तनया तथा देवी विलासवती की भगिनी है -

सा तत्रभवती कामरूपाधिपतनया । उचितमेवैतत् । ((

एषा ते भगिनी, इदानीं यदुचितं तद्विधेहि ।

कामरूपेश्वर की पुत्री होना ही मृगाङ्कलेखा के नृपवंशजत्व का सबसे बड़ा प्रमाण है - 'अतएवास्मत्स्वामी कलिङ्गेश्वर: कामरूपेश्वरतनयां मृगाङ्कलेखां मृगयाप्रसङ्गेनावलोक्य न तथा चिरपरिचितां विलासवतीं मन्यते ।'

वह मुग्धा श्रेणी की नायिका है । उसे लावण्ययुक्त होना चाहिये । उसके रूप-लावण्य के सम्बन्ध में राजा ने उसको स्वत: निरुपम सौन्दर्यवती के रूप में स्वीकार किया है । राजा ने अपने मित्र विदूषक से उसके सौन्दर्य का वर्णन स्पष्टतया किया है - राजा-सखे किं वर्ण्यते सा । यस्या: -

नीलेन्दीवरमेव लोचनयुगं बन्धूकतुल्योऽधर:

कालिन्दीजलचारुकुन्तललता बाहू मृणालोपमौ ।

रम्भागर्भसमानमूरुयुगलं किं वा बहु ब्रूमहे

सेयं कापि नवीनमीननयना सर्वोपमानिर्मिता ।।२१।।

मंत्री रत्नचूड ने उसे सार्वभौमपतिका मानकर उसको अन्त:पुर में रख दिया, था ,इससे उसकी दिव्यता का भी प्रमाण मिलता है - 'सेयं मृगाङ्कलेखा कामरूपेश्वरतनया तां सिद्धकथितसार्वभौमपतिकामाकलय्य यावत्त्वदर्थं प्रार्थयामि तावद्भगवत्या । सिद्धयोगिन्या समाकृष्टेनान्त:पुरम् ।'

इसके अतिरिक्त मृगाङ्कलेखा अन्त:पुर से सम्बद्ध है - रत्नचूड - ((

यतस्तद्रूपोन्मादमोहितस्तां तिरस्करिण्या विद्यया यावदपहरति दानव: शङ्खपालो नाम तावद्भगवत्या सिद्धयोगिन्यामशराजैकपक्षपातिन्या समाकृष्टैवान्त:पुरम् । उक्तं च देवी प्रति स्थापनीया सखीवेयं बाला मृगाङ्कलेखा ।'

मन्त्री रत्नचूड ने उसे रानी के सान्निध्य में सप्रयोजन रखा है जिससे राजा की दृष्टि उस पर पड़े और दोनों का अनुराग हो, फिर अन्त में दोनों का परिणय हो सकेगा । अन्त:पुर में रहने के कारण मृगाङ्कलेखा से राजा को और राजा से मृगाङ्कलेखा को सहज अनुराग होता है और वह अनुराग शनै: शनै: वर्धित होकर अन्त में दोनों के परिणय सूत्र-बन्धन के रूप में प्रकट हुआ- विलास०- भगवति ! त्वम् आर्यपुत्रस्य हस्ते इमां प्रतिपादयस्व । < <

राजा - (तथेति हस्तौ प्रसार्य मृगाङ्कलेखां गृह्णाति) ।

मृगाङ्कलेखा देवी विलासवती की कनिष्ठा भगिनी होने के कारण नववयस्का है । प्रथमाङ्क में राजा ने उसके सौन्दर्य का जो वर्णन किया है उससे उसके नवयौवना होने के पूर्ण लक्षण स्पष्ट हैं -

> इन्दुं निन्दति पार्वणं शशिमुखी मीनाङ्गनां लोचने
> धम्मिल्लोऽपि कलिन्दशैलतनयां दन्तावली मौक्तिकम् ।
> किंचान्यत्कमनीयकांचनरुचस्तस्या: स वृद्धिंगतो
> लावण्याम्बुधिरन्ध्यत्यनुदिनं यूनां मन:सैकतम् ।।२२।।

राजा के निम्न कथन से मुग्धा होने के कारण उसका नवकामवती होना भी सिद्ध होता है -

> पाण्डु क्षामं वदनमधरो धूसर: श्वासहङ्गा -
> दङ्गाभोगे भवति मलिना मालतीपुष्पमाला ।
> लीलामन्दं गमनमधिकं (प्रेक्षते) शून्यशून्यं
> मन्ये चिन्तां चपलनयना चेतसा स्वीकरोति ।।३८ ।।

राजा के प्रथम दर्शन के पश्चात् ही मृगाङ्कलेखा के हृदय में जो अनुराग भाव उत्पन्न हुआ वह इतना प्रगाढ़ हो गया कि उसे राजा का वियोग असह्य होने लगता है । वह अनुभूतवियोग ताप-दु:ख से अत्यन्त व्याकुल रहती है -

चन्द्रश्चन्दनमुत्पलानि नलिनीपत्राणि मन्दानिल:
काल: कोऽपि च चैत्रनर्तितचलप्रोत्फुल्लमल्लोलत: ।
लीलामज्जनमुज्ज्वलं च वसनं श्य्या मृगाङ्कोज्ज्वला
यत्सौख्यकरं जनस्य मम तच्चिन्ताज्वरोद्दीपनम् ।। २६ ।।

वह शीलस्वभावा अत्यन्त लज्जावती भी है । अपनी सखी लवङ्गिका के साथ रहने वाली मृगाङ्कलेखा राजा को आता हुआ देखकर अत्यन्त लज्जित हो जाती है - राजा सुन्दरि । अलमलमायासेन ।
मृगा० - (लज्जावनतमुखीतिष्ठति)

अस्तु इस नाटिका की नायिका मृगाङ्कलेखा मृदु स्वभावा, अनुरागवती लज्जावती होते हुये भी सङ्गीत एवं चित्रकला आदि में निपुण नहीं है । परन्तु रूप लावण्य की भूमि होने के कारण वह अपने पाणि-ग्रहण से सनाथ राजा को महाबली का पात्र बना देती है ।

विलासवती -

देवी विलासवती कामरूपेश्वर की ज्येष्ठा कन्या तथा कलिङ्गराज कर्पूरतिलक की प्रधान महिषी हैं । उन्हीं के अधीन राजा एवं मृगाङ्कलेखा का पूर्णतया सम्मिलन हुआ है - विलास० - भगवति । त्वम् आर्यपुत्रस्य हस्ते इमां प्रतिपादयस्व ।

वस्तुत: नायक नायिका के पारस्परिक अनुराग के अङ्कुरण, पल्लवन एवं अन्त में फलित करने का श्रेय विलासवती ही धारण करती है अत: समस्त कथानक लगभग उसी में केन्द्रित रहता है ।

जैसा कि नाट्यशास्त्रीय देवी को होना चाहिये, वह सभी गुणों से सम्पन्न है । वह प्रगल्भा , मानवती, नृपवंशजा और प्रौढ़ा युवती है । नायक एवं नायिका दोनों ही देवी से भयभीत व सशङ्क रहते हैं । द्वितीय अङ्क के अन्त में राजा मृगाङ्कलेखा का आलिङ्गन करता है, उसी समय नेपथ्य द्वारा देवी

के आगमन की सूचना मिलती है, राजा यह सूचना पाकर अत्यन्त भयभीत होकर कहता है - राजा-(ससम्भ्रमम्) सुन्दरि ! गच्छाग्रत: । अहमप्यागतस्त्वाऽनुपदम् ।

अन्त में देवी विलासवती का चरित्र कितना उज्ज्वल होकर प्रकट होता है कि वह स्वयं मृगाङ्कलेखा का राजा के साथ परिणाय कराकर परमानन्द और सन्तोष का अनुभव करती है - विलास०-भगवति ! त्वम् आर्यपुत्रस्य हस्ते इमां प्रतिपादयस्व ।' सिद्धि० - (मृगाङ्कलेखां हस्ते गृहीत्वा) राजन् ! एषा यथा बन्धु जनशोचनीया न भवति तथा विधेहि ।' राजा -(तथेति हस्तौ प्रसार्य मृगाङ्कलेखां गृह्णाति ।)

इस प्रकार हम देखते हैं कि देवी विलासवती शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार इस नाटिका की सर्वगुणसम्पन्ना ज्येष्ठा नायिका है और नायक तथा नायिका के बाद उन्हीं का था लेकिन फिर भी रत्नावली आदि नाटिकाओं की ज्येष्ठा नायिकाओं की तुलना में देवी विलासवती को सर्वगुणसम्पन्ना नहीं कहा जा सकता । शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार इस ज्येष्ठा नायिका के चरित्र-चित्रण में नाटककार को सफल नहीं कहा जा सकता । देवी को प्रगल्भा, गम्भीरा तथा पद पद पर मानवती होना चाहिये किन्तु प्रस्तुत नाटिका में कहीं भी उसकी प्रगल्भता, गम्भीरता एवं मानिनी होने का चित्रण नहीं किया गया है जबकि रत्नावली प्रियदर्शिका, कुवलयावली आदि नाटिकाओं में उसके इस स्वरूप का स सुन्दर चित्रण हुआ है । वह मुग्धा नायिका तथा राजा के प्रेम के विषय में जानकर मानकरती है, अपनी गम्भीरता एवं प्रगल्भता को प्रकट करती है किन्तु मृगाङ्कलेखा नाटिका में कहीं भी उसको मान करते हुये नहीं दिखाया है । इसी प्रकार रत्नावली, चन्द्रकला इत्यादि नाटिकाओं में उसके प्रौढायुवती होने का, भावानुभावों के प्रकट-गोपन आदि क्रियाकलापों में सर्वथा निपुण होने का तथा उसके लावण्य का सुन्दर चित्रण किया गया है किन्तु प्रस्तुत नाटिका में विलासवती के चरित्र के इन पक्षों का चित्रण नहीं हुआ है ।

अत: देवी विलासवती के ज्येष्ठा नायिका नृपवंशजा आदि होने पर भी शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार उनके नायिकात्व का विवेचन करने पर उनके चरित्र-चित्रण में नाटिकाकार को सफल नहीं कहा जा सकता ।

विदूषक --

मृगाङ्कलेखा नाटिका में शाखामृगमुख नाम का विदूषक है । वह आरम्भ से अन्त तक राजा के प्रत्येक कार्य (चाहे वह प्रणय व्यापार हो अथवा मनोरंजन) में सहायक के रूप में उपस्थित है । वह प्रकृत्या वाचाल, परिहास-प्रिय, वाक्पटु एवं स्वाभिमानी मूर्ख है । उसकी हास्यप्रियता का उदाहरण उस समय मिलता है जब वह मृगाङ्कलेखा को आते देखकर भयपूर्वक राजा से रक्षा की प्रार्थना करता है । राजा द्वारा पूछे जाने पर मृगाङ्कलेखा को राक्षसी बताकर कहता है कि अपनी रक्षा के लिये नहीं वरन् तुम्हारी रक्षा की बात कर रहा हूं -

विदूषक :--(ससम्भ्रमं) परित्रायस्व २ ।

राजा - केयमलीकशङ्का ।

विदू०- आत्मन: कृते न भणामि ।

राजा- तत्कस्य कृते ।

विदू० - ननु तव कृते । यदेषा राक्षसी उन्मीलितलोचना इतोमुखीत्वामेव निध्यायन्ती इत एवागच्छति ।

राजा- (विलोक्य सोत्प्रासं) सखे । सैवेयमस्मन्मनश्चकोरोन्मादिनी बाला मृगाङ्कलेखा।

वह ब्राह्मण के सभी गुण भोजन, पारितोषिक आदि ग्रहण करने में सदा अनुरक्त रहने वाला , सुस्वादु तथा मिष्ठान्न का अत्यधिक प्रेमी है । चतुर्थ-अङ्क में कलकण्ठ जब उससे पूछता है कि तुम कहाँ जा रहे हो तो वह स्वभावानुसार कहता है कि जहाँ से मोदकों की गन्ध आ रही है वहीं जा रहा हूँ - कल०

भवता कुत्र प्रस्थितम् । विदू० - यत्र मोदकानां गन्ध आगच्छति ।

समयानुसार यथोचित वेष-धारण, शरीर प्रदर्शन क्रिया-सम्पादन आदि में दक्ष, कलह-रति दोनों में रुचि रखने वाला यथावसर पटिता-वाणी-कुशल है। राजा के द्वारा वसन्तावतार का वर्णन किये जाने पर वह मानों उनके पाण्डित्य को सहन न कर सका और स्वत: भी अपने पाण्डित्य-प्रदर्शन का प्रयत्न करने लगा -

विदू० - भो वयस्य ! एवं मारुतं वर्णयित्वा पाण्डित्यगर्वं मुद्रहसि। तदहमपि एवं सिन्दुवारमंजरीभि:सङ्कलितं मलयमारुतं वर्णयित्वा पण्डितो भविष्यामि।

विदूषक राजा का सर्वत्र सहायक है। चतुर्थ अङ्क में राजा मृगाङ्कलेखा के सङ्गम का उपाय सोचते हुये विदूषक की सहायता पाने के लिये उसका स्मरण करता है तभी विदूषक राजा की सहायता के लिये तुरन्त उपस्थित होते हुए कहता है -

राजा - (सचिन्तम्) हन्त वयस्योऽपि न सन्निहित:।

विदू० - एषोऽस्मि।

राजा - वयस्य ! इहोपविश्य विचिन्तनीयो हुङ्गनासङ्गमोपाय इति।

विदू० - भो वयस्य ! चिन्तयिष्यामि। यदि महानसाधिपतिरहं भविष्यामि।

शास्त्रीय लक्षणों के निर्देशानुसार ही इसका नाम शाखामृगमुख है। वह एक व्युत्पन्नमति भी है। किसी भी बात का अकाट्य उत्तर देने में वह कभी नहीं चूकता। उसके प्रत्येक कथन में परिहास का सम्मिश्रण अवश्य रहता है। वह वस्त्र और आभूषणों का भी परम-प्रेमी है।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटिका का विदूषक समस्त शास्त्रीय लक्षणों से युक्त है फिर भी मालविकाग्निमित्र, रत्नावली आदि नाटिकाओं के विदूषकों की तुलना में अधिक सफल नहीं कहा जा सकता।

रत्नचूड -

रत्नचूड राजा कर्पूरतिलक का मंत्री तथा राज्य शासन का संचालक है। शास्त्रीय नियमानुसार धीरललित नायक की सिद्धि का श्रेय उसके मन्त्री पर निर्भर करता है।[१] प्रस्तुत नाटिका के नायक कर्पूरतिलक धीरललित प्रकृति के हैं। मंत्री

रत्नचूड की ही सहायता से उनको अपने प्रणय-व्यापार में मृगाङ्कलेखा की प्राप्ति में सफलता मिलती है - रत्नचूड- "यद्यं मृगाङ्कलेखा आमव्ये वरतनया तां सिद्धकथितसार्वभौमपत्निकामाकलय्य यावत्त्वदर्थं प्रार्थयामि तावद्भगवत्या सिद्धियोगिन्या समाकृष्टैवान्त:पुरम् ।" वह बड़ी पटुता के साथ राज्य-शासन का संचालन करता है । प्रथम अङ्क के प्रारम्भ में ही राजा के दुर्बल शरीर एवं पाण्डुरकपोल-मण्डल को देखकर वह अपने कर्तव्यानुसार राज्यभार के निर्वाह की चिन्ता करने लगता है -

रत्नचूड- (ऊर्ध्वमवलोक्य) कथमयं देव: कर्पूरतिलकस्य सकलनिशाजागरसामगात्र: पाण्डुरकपोलमण्डल: द्वारा देशगतेन शाखामृगमुखेन प्रियवयस्येन सह्गच्छमानो मनसा तत्सम्बन्धिनीं कथां कथयन् शय्यामन्दिर मध्यास्ते । तदहमपि राज्यभारनिर्वाहाया-भ्यन्तरमेव प्रविशामि ।"

यही नहीं, वह सदा राजा के हित-चिन्तन एवं साधन में रत दिखाई पड़ता है । यद्यपि वह नाटिका के प्रथम तथा चतुर्थ अङ्क में ही उपस्थित होता है फिर भी उसका महत्त्व नाटिका के समस्त व्यापार सम्पादन में न्यून नहीं कहा जा सकता ।

इसके अतिरिक्त सिद्धियोगिनी, तर्वाङ्गका, कलहंसिका, कुण्डरुधिर, शङ्खपाल, नीतिवृद्ध, चण्डघोष आदि अन्य पात्रों का नाम भी उल्लेखनीय है ।

—

----

१ पिछले पृष्ठ का शेष -

मंत्रणा ललित: शेषा मंत्रिस्वायत्तसिद्धय: ।दशरूपकप्रकाश ।

नवमालिका -

नायक विजयसेन -

नाट्यशास्त्रों में नायक के लिये वर्णित कतिपय गुण-नवमालिका नाटिका के नायक विजयसेन में विद्यमान है। राजा विजयसेन धीरललित प्रकृति के नायक हैं। राजा जहाँ पर नवमालिका के सौन्दर्य का वर्णन करता है वे स्थल उसकी कलह-प्रियता और विचक्षणता के व्यंजक हैं। वह नवमालिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है -

> प्रालेयांशो: कलायामुपशतिमतये दृश्यतावाश्यताया
> मालानां कौसुमीनामपि मृदुलरताव्यत्यय-प्रत्याप।
> अप्रमाण्याय वाण्यास्त्रीवमृगदृशां व्यवसायराया:
> विस्तारायाद्भुतानामिह भुवि भवेन भासते भाविनीयम् ।।३।३ ।।

वह गम्भीर, सरल तथा मृदु स्वभाव के पुरुष हैं। उनकी कुलीनता का उदाहरण है कि नवानुरागा नवमालिका में आसक्त होने पर भी वे देवी चन्द्रलेखा के प्रति अपने सम्मान में शिथिलता नहीं आने देते। सारिका द्वारा देवी के आगमन का समाचार सुनते ही वे घबड़ा जाते हैं - राजा- (विलोक्य) अहो संवाद:।

यद्यपि चन्द्रलेखा नवमालिका की प्राप्ति में व्यवधान ही बनी रहती है, फिर भी वे उसकी आकांक्षाओं पर व्यवधान नहीं पहुँचाते। देवी के क्रोधित हो जाने पर वे उन्हें मनाने के सारे प्रयास करते हैं। वे देवी की प्रसन्नता में ही अपना समस्त कल्याण समझते हैं - राजा - ((तदत्र देवी प्रसादनमेव प्राप्त-कालं पश्याम:।

नायिका नवमालिका के प्रति राजा के हृदय में प्रगाढ़ प्रेम है। नव-मालिका के साथ परिणय हो जाने पर देवी जब नवमालिका का हाथ राजा के हाथ में समर्पित करती है उस समय राजा अत्यन्त प्रेमाभिमुख होकर कहते हैं - राजा (स्पर्शमनुभूय)

सञ्जीवनावधि भवामि नवप्रवाल -
प्रालेयशीतसुकुमारतराभिरामः ।
स्पर्शी प्रयाश्यकुशेश्यपल्लवस्य
सार्धं क्षणेन पुलकाकुलमालनोति ।।४।३१ ।।

अङ्गराज हिरण्यवर्मणा अपने अमात्य सुमति को सूचना देने के लिये भेजते हैं उस समय सुमति अवन्तिराज के वैभव की प्रशंसा करते हुये कहता है -
सुमति :- (स्वगतम्) अहो वैभवमवन्तिराजस्य । तथाहि -

प्रवेशप्रस्तावाभिमतियुक्तजनपदो-
प्रहारप्राचुर्यं प्रतिपदकृतं पत्नमपदा-
मनुद्वेगोद्विल्लज्जर्यीधिजलवल्लङ्कलङ्घया ।
प्रयासेनापार्श्वं न सुकरगतिर्नैरपदवो ।।४।१२॥

इन कतिपय गुणों के होने पर भी नाटिका में एक भी स्थल ऐसा नहीं है जहाँ विजयसेना राज्य की सुदृढ़ता और उसमें शान्ति बनाये रखने की चर्चा करता हो । वह रति-विलास में ही लगा रहता । धीरललितत्व की दृष्टि से भी उसे विशेष सफल नहीं कहा जा सकता । रत्नावली के नायक वत्सराज उदयन के जानदार चरित्र के सम्मुख नवमालिका नाटिका के राजा विजयसेन का चरित्र अरुचिकर सा प्रतीत होता है । इस प्रकार राजा विजयसेन को नाटिका के लिये सर्वथा उपयुक्त नायक नहीं कहा जा सकता ।

नायिका नवमालिका --

नवमालिका नाटिका की नायिका नवमालिका है । वह अङ्गराज हिरण्यवर्मणा की पुत्री है और देवी चन्द्रलेखा की भगिनी है । अङ्गदेश के राजा की पुत्री होना ही नवमालिका के नृपवंश का सबसे बड़ा प्रमाण हैं - राजा- कथं परम्परानुवर्तमानमूर्धाभिषिक्तवंश प्रभवस्याङ्गराजस्य हिरण्यवर्मणो दुहितेयम् ?

सुमति: - देव । एवमेवैतत् ।

राजा विजयसेन का मन्त्री नीतिनिधि जब दिग्विजय के लिये जाता है तब दण्डकारण्य में दो सखियों के साथ किसी कन्या (नवमालिका) को देखकर उसे अवन्तिदेश को लाता है और उसमें तीनों लोकों की सम्राज्ञी के लक्षणों को देखकर राजा के सार्वभौमत्व की कामना से देवी चन्द्रलेखा के संरक्षण में रख देता है। इससे नवमालिका की दिव्यता का भी प्रमाण मिलता है -नीतिनिधि -

तत्रत्यां नवदेवतामिव श्रीद्भिन्ने स्थितां यौवने
कन्या कामपि कन्ययो: सवयसोर्मध्ये स्थितामन्ययो: ।
दृष्ट्वा तन्मुखतस्तदीयकमितुस्साज्यमाश्रित्य
श्रुत्वा दिव्यसरस्वतीरितवरं दित्साामि तां स्वामिने ।।१।१०

नवमालिका नायिका अन्त:पुर से सम्बद्ध है। मन्त्री नीतिनिधि उसे अन्त:पुर में सप्रयोजन रख देता है जिससे राजा की दृष्टि उस पर पड़े और दोनों का परस्पर अनुराग हो फिर अन्त में दोनों का परिणय हो सकेगा। अन्त:पुर में रहने के कारण दोनों का सहज अनुराग हो जाता है और शनै: शनै: वर्द्धित होकर अन्त में परिणय-सूत्रबन्धन के रूप में प्रकट हुआ देवी-आर्यपुत्र परिणायतामेषा किं विलम्बेन ।

वह मुग्धा श्रेणी की नायिका है। देवी चन्द्रलेखा की कनिष्ठा भगिनी होने के कारण नववयस्का है। प्रथमाङ्क के अन्त में राजा ने उसके सौन्दर्य का जो चित्रण किया है उससे उसके नवयौवना होने के पूर्ण लक्षण स्पष्ट है - राजा - ((विचिन्त्य)

विना बिम्बं तावत्प्रभवदनुबिम्बं न घटते
न चारोप: शक्य: प्रथममगृहीते विषयिणि ।
मनोजन्यं भेदं गतिमनुविवर्धेत न मनयो:
परिच्छेत्तुं नैव प्रभवति मन: किंचिदपि(मे) ।। १।३० ।।

राजा के निम्न वचन से उसका नवकामवती होना भी सिद्ध होता है—
राजा —

शीतांशोरपरा तनुरिव मुखं स्वकस्यानुकूल्यायितं
वक्षोजे तपनीय पद्ममुकुलं तस्या विधातुं क्षमौ ।
ऊरु नन्दनकाण्ड एव कदली काण्डस्य पाण्डित्यकृत्
साबाधाधिपतेरतेरपि रतेरालम्बनत्वोचिता ।।२।३ ।

मुग्धा नायिका की सौन्दर्यवती होना चाहिये द्वितीयाङ्क में राजा ने उसके लावण्य का जो चित्रण किया है उससे उसके अनुपम सौन्दर्यवती होने का प्रमाण मिलता है - राजा — < <

वयस्यासावस्या यदपि सखी सङ्गमयितुं
मया सार्द्धं नव प्रभवति चकोरीक्षणमुम् ।
प्रियाया: लावण्यातिशयसहकारेण सहसा
महीयान् पुष्पेषु: प्रभवति नवीयानपि कुत: ।।२।१३ ।

राजा के प्रथम दर्शन के पश्चात् ही नवमालिका के हृदय में जो अनुराग भाव उत्पन्न हुआ वह अत्यन्त प्रगाढ़ हो गया । वह अत्यन्त व्याकुल होकर कहती है -

तस्मिन् जने सुलभे विषमत्वेन
आलम्ब्यविषमयी अरतिरुत्सवम् ।
देहो पि उन्मदो स्ति सखि नेदानीं
का नाम चित्रफलकस्य तथा कथापि ।।२।१२ ।।

इन कतिपय गुणों के होते हुये भी वह संगीतकला आदि में निपुण नहीं है । इतनी लज्जावती भी नहीं है । विश्वेश्वर को नवमालिका के चित्रण में विशेष सफल नहीं कहा जा सकता ।

देवीचन्द्रलेखा -

देवीचन्द्रलेखा नवमालिका नाटिका की ज्येष्ठा नायिका है । वह अवन्तिदेश के राजा विजयसेन की प्रधान महिषी है । उन्हीं के अधीन राजा और नवमालिका का मिलन हुआ है - (देवी नवमालिकाया हस्तमादाय राज्ञो हस्ते समर्पयति) ।

समस्त कथानक देवी चन्द्रलेखा में ही केन्द्रित रहता है, वही नायक-नायिका के पारस्परिक अनुराग के अङ्कुरण, पल्लवन और अन्त में फलित होने का श्रेय धारण करती है ।

वह प्रगल्भा, मानवती, नृपवंशजा और प्रौढा युवती हैं । नायक एवं नायिका दोनों ही देवी से भयभीत और सशङ्क रहते हैं । तृतीय अङ्क में राजा और नवमालिका का मिलन होने पर चन्द्रिका द्वारा देवी के आगमन की सूचना पाकर दोनों भयभीत हो उठते हैं - नवमालिका (नवमालिका भयं नाटयति) राजा-(विलोक्य) अहो संवादः ।

वह प्रगल्भा और मानवती भी हैं । राजा और नवमालिका के मिलन के विषय में सुनकर मान करती है - देवी - आर्यपुत्र, उपक्रान्तविरुद्धं खल्विदानीं प्रियेति आमन्त्रणम् ।

अन्त में चन्द्रलेखा का चरित्र उज्ज्वल होकर प्रकट होता है । वह स्वयं नवमालिका का राजा के साथ परिणय करा देती है (देवी नवमालिकाया हस्तमादाय राज्ञो हस्ते समर्पयति ।)

इस प्रकार देवी चन्द्रलेखा नाट्य शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार सर्व-गुणसम्पन्ना नायिका तो हैं और नायक नायिका के बाद उन्हीं का महत्व है किन्तु रत्नावली आदि नाटिकाओं की तुलना में उनको सर्वगुणसम्पन्ना नहीं कहा जा सकता । उनके प्रौढा युवती होने का भावानुभावों के प्रकट गोपन आदि

क्रिया कलापों में निपुण होने का, तथा उसके लावण्य आदि का सुन्दर चित्रण नहीं किया गया है।

अतः चन्द्रलेखा के नायिकात्व का विवेचन करने पर उसके चरित्र-चित्रण में नाटिकाकार को विशेष सफल नहीं कहा जा सकता।

विदूषक -

नवमालिका नाटिका में रौहिणायन राजा के प्रत्येक कार्य (चाहे वह प्रणय व्यापार हो अथवा मनोरंजन) सहायक के रूप में नाटिका के प्रारम्भ से अन्त तक उपस्थित है। वह प्रकृत्या वाचाल, परिहास प्रिय, वाक्पटु एवं स्वाभिमानी मूर्ख है। उसकी हास्यप्रियता का उदाहरण उस समय मिलता है जब राजा उससे सारसिका के विषय में पूछता है कि उसने किस तरह सारसिका के परिचारिकात्व को जाना तब वह कहता है - विदूषक : - तदानीं खलु तव पृष्ठतः क्षणं स्थितासीत्।

वह ब्राह्मण के सभी गुण भोजन, पारितोषिक आदि ग्रहण करने में सदा अनुरक्त रहने वाला है। प्रथम अङ्क में राजा जब चन्द्रलेखा के नासिकारत्न में नवमालिका के प्रतिबिम्ब देख लेता है तब विदूषक कहता है - विदूषक:- भो वयस्य! अनुरागविशेषैः पुष्पे पुष्पादृशरनां - दक्षिणादानपूर्वकं पुष्पसमर्पणमिव परितोषावहं न किमेतस्ता वने गत्वा विक्रमिष्ये किं वा........ एतं स .... । राजा(विहस्य करादवतार्य रत्नवलयं ददाति।)

वह राजा का सर्वत्र सहायक है। व्युत्पन्न मति भी है किसी भी बात का आकाट्य उत्तर देने में नहीं चूकता। शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार ही उसका नाम रौहिणायन है। किन्तु विदूषक का चरित्र विशेष उज्ज्वल नहीं कहा जा सकता।

नीतिनिधि -

नीतिनिधि राजा विजयसेन का राज्य संचालित करने वाला मन्त्री है। शास्त्रीय नियमानुसार नायक की सिद्धि का श्रेय उसके मन्त्री पर निर्भर करता है। नवमालिका नाटिका के नायक विजयसेन धीरललित प्रकृति के हैं। मन्त्री प्रतिनिधि

को ही सहायता से उनको नवमालिका की प्राप्ति में सफलता मिलती है --
नीतिनिधि :- ‹ ‹ सा हि कन्याम्येयं कन्यका काचिदरण्यवा वनभूमौ समासादिता । प्रज्ञातिशयशालितया सकलकलाकलापेषु देव्या अन्तेवासिनी भवितु-मर्हतीत्यभिधाय देव्याश्चन्द्रलेखाया उपहारीकृता ।

वह सदैव राजा के हित-चिन्तन और साधन में रत रहता है तथा अपने कर्तव्य का पूरा ध्यान रखता है । नीतिनिधि -प्रत्यर्थितदेवादेशस्य देवायपदमूल मुपगतस्य कियानपि समयो निवृत्त: । अद्यापि सा कन्यकाऽस्मत्स्वामिनो वन्तिपतेमहा-राजस्य विजयसेनस्य चक्षुर्गोचरतां नासादितवती । अनन्तरं देवमेव प्रमाणम् । (विलोक्य) ‹ ‹ तदादेशव्यतिरेकेणा नायमस्मत्सन्निधानामुपसर्पणा-वसर: ।

यद्यपि नाटिका के प्रथम और चतुर्थ अङ्क में ही नीतिनिधि की उप-स्थिति हुई है फिर भी उसका महत्त्व नाटिका के समस्त व्यापार सम्पादन में न्यून नहीं कहा जा सकता ।

इसके अतिरिक्त सारसिका, चन्द्रिका, प्रभाकर नामक तपस्वी, अमात्य सुमति आदि अन्य पात्रों का नाम भी उल्लेखनीय है ।

मलयजाकल्याणम् --

नायक देवराज --

शास्त्रीय ग्रन्थों में नाटिका के नायक के लिये जो गुण वर्णित किये गये हैं उनमें से कतिपय गुण मल० नाटिका के नायक देवराज में विद्यमान हैं । राजा देवराज धीरललित प्रकृति के नायक हैं । वे जहाँ पर मलयजा के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं, वे स्थल उनकी कलाप्रियता एवं विदग्धता के परिचायक हैं । प्रथम अङ्क में राजा नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहते हैं --

लावण्यं विधिरैन्दवांशुनिचयरवच्छाम्भसा शोधान्
यद्यत्राग्रिमधूसरं समभवन्नोर्वशीं निर्ममे ।
यत्वस्योदरवर्ति निर्मलतमं लावण्यमेतेन तां
चक्रे चन्द्रमुखीं अथ न्वितरथा सा निस्तुला स्यादभुवि ।।१७।।

इसी प्रकार तृतीय अङ्क में भी राजा ने नायिका के सौन्दर्य का मनोरम वर्णन किया है --

लावण्यामृतमेक.... ... ।।१३।। ये.......लावकरकान्तभाजौ ।।१६।।

यह धीर, गम्भीर, सरल तथा मृदु स्वभाव के हैं । उनकी कुलीनता का उत्कृष्ट परिचय उस समय मिलता है जब वे नवानुरागा मलयजा के प्रेम में आसक्त होने पर भी महादेवी के प्रति अपने सम्मान में शिथिलता नहीं आने देते । यद्यपि देवी मलयजा की प्राप्ति में व्यवधान हो बनी रहती हैं । लेकिन वे कभी उनकी आकांक्षाओं पर आघात नहीं पहुँचाते । देवी के क्रोधित हो जाने पर वे अत्यधिक दु:खी हो जाते हैं और उन्हें मनाने का भी प्रयास करते हैं -
देवराज - (उत्थाय विलोक्य च) हन्त ! गतैव वामोरु: । कथं प्रतिसमाधेयमिदं संवृत्तम् । प्रियवयस्यो वापि न निर्गच्छति ।

नायिका मलयजा के प्रति भी राजा के हृदय में प्रगाढ़ प्रेम है । देवी के क्रोधित हो जाने पर वह मलयजा के विषय में सोचकर अत्यन्त दु:खी हो जाते हैं --
देवराज - (विमृश्य) सखे, सर्वथा केरलिया प्रहितेन मलयदेश । ललामभूताया निदेशशासनेन विपरीतं वृत्तम् ।

तृतीय अङ्क में जब राजा नायिका मलयजा के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं, उस समय महादेवी राजा के वर्णन-नैपुण्य की प्रशंसा करती हुई कहती हैं --
महादेवी - (स्वगतम्) कथमतिमात्रमेनां वर्णयत्यार्यपुत्र: अथवेदृशमस्या: स देहसौभाग्यम् । (प्रकाशम्) वर्णन नैपुण्यं महाभागस्य ।

नाटिका के चतुर्थ अङ्क में जब मलयराज अपनी पुत्री मलयजा के विवाहो-त्सव के विषय में भार्गव एवं ऋषि जामदग्न्य से परामर्श करते हैं उस समय भार्गव राजा के गुणों की प्रशंसा करते हुये कहते हैं -

'सेवायात महीमहेन्द्र परिषन्माणिक्य कोटीलस-
द्रत्नोदंचदभ्ररोचिररुणद्यद्राणाङ्गविपङ्क्तिकः।
किंचित् कुंचितया भ्रुवं निवमयन्भुवापवल्यारिपुन
जमाता भवति प्रियो गुणगणोत्तो० हारचन्द्रस्तव ।।६।।

इसी प्रकार चतुर्थ अङ्क के अन्त में ही जब लेखवाह आकर राजा को प्रतिपक्षियों के पराजय की सूचना देता है उससे यह विदित होता है कि राजा अपने राज्य -शासन की सुदृढ़ता के प्रति भी विशेष सतर्क रहता था ।

इस प्रकार मलयजा नाटिका के नायक देवराज को धीरललित,धीर, गम्भीर, सुशील, मृदु, साहसी, कलासक्त, प्रशस्त, कुलोद्भूत, कुलीन तथा नाटिका के लिये सर्वथा उपयुक्त नायक कहा जा सकता है ।

नायिका मलयजा -

मलयजा इस नाटिका की सर्वगुणसम्पन्ना नायिका है । वह मलयराज की पुत्री तथा महादेवी की भगिनी है । मलयराज - आनयन्तु । परिणाय- नेपथ्य परिष्कृतां ससखीं वत्सां सह कुलवृद्ध पुरन्ध्रिजनैः) । मलयदेश के राजा की पुत्री होना ही मलयजा के नृपवंशजत्व का सबसे बड़ा प्रमाण है ।

नायिका तादृशी मुग्धा दिव्या चातिमनोहरा ([illegible])
नाटिका की नायिका को मुग्धा, दिव्य और सौन्दर्यवती होना चाहिये । उसके रूप लावण्य के सम्बन्ध में राजा ने उसको अनिन्द्य-सुन्दरी के रूप में वर्णित किया है । उसकी सुन्दरता का वर्णन राजा ने तृतीय अङ्क में विदूषक से स्पष्टतया किया है -

देवराज- (सशङ्क) सम्यगालक्ष्यन्ते प्रियतमायाः प्रत्यङ्ग -

शोभा-कौमुदी-सम्पर्कात् ।

तरुणि तव चन्द्रवक्त्रे तरुणीनामर्हस्तस्तेनेन कुम्भधर: ।
रोमावलिपुष्करतो नाभीसरसो न सलिलमादत्ते ।।११।।

इसके अतिरिक्त नायिका को अन्त:पुर से सम्बद्ध होने केकारण नायक के लिये श्रुत तथा दृष्ट होनी चाहिये, साथ ही नायक के प्रति उसका अनुराग प्रारम्भ होकर उत्तरोत्तर बढ़ते रहना चाहिये । मलयजा नायिका अन्त:पुर से सम्बद्ध है - मलयदेवी-(स्वगतम्) अतिमात्र नाम स्निग्धा वत्सायां महादेवी । (प्रकाशम्) प्रिय सखीभ्यां केरलिकामंजरिकाभ्यां सहान्त:पुरे वर्तते ।

अन्त:पुर में रहने के कारण राजा और नायिका मलयजा दोनों का परस्पर सहज अनुराग हो जाता है और शनै: शनै: वर्द्धित होकर यह अनुराग दोनों के परिणय-सूत्र-बन्धन के रूप में प्रकट हुआ -
मलयराज-आनयन्तु परिणय-नेपथ्य-परिष्कृतां सखीं वत्सां सह कुलवृद्धपुरन्ध्रिजनै: ।

नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार मलयजा मुग्धा श्रेणी की नायिका है। मलयजा महादेवी की कनिष्ठा भगिनी होने के कारण नववयस्का है । प्रथमाङ्क में राजा ने उसके सौन्दर्य का जो वर्णन किया है उससे उसके नवयौवना होने के पूर्ण लक्षण स्पष्ट हैं - देवराज -

लावण्यैर्विधिरैन्दवांशुनिवयस्वच्छाम्भसा शोधयन्
यस्त्राग्रमधुसरं समभवत्तेनोर्वशीं निर्ममे ।
यत्वस्योदरवर्ति निर्मलतमं लावण्यमेतेन तां
चक्रे चन्द्रमुखीं कथन्वितरथा सा निस्तुला स्याद्भुवि ।।१६ ।।

राजा का दर्शन करने के पश्चात् उसके मन में जो अनुराग भाव उत्पन्न हुआ, वह इतना प्रगाढ़ हो गया कि उसे राजा का वियोग असह्य होने लगता है । अनुभूत वियोग-ताप-दु:ख से वह अत्यन्त व्याकुल हो उठती है -

मलयजा --तस्य वा महाभागस्य हृदयधापि न दर्शितं कीदृशो व तस्या प्रेमावलम्बित्वं । हा किमत्र दुष्ट-दैवेन एषा निर्माणविषयीकृतास्मि । अथवा केन जन्मान्तरपरिणामेन स्त्रीजन्माप्तवत्यस्मि । ...... ।

वह शीलस्वभावा अत्यन्त लज्जावती है । तृतीय अङ्क० में राजा जब नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं उस समय मलयजा लज्जावश नतमुखी हो जाती है ।

यह मृदुस्वभावा, कोमलस्वभावा, अनुरागवती एवं लज्जावती होने के साथ संगीतकला में भी निपुण है । द्वितीय अङ्क० में वीणावादन द्वारा प्रियाल वृक्ष पुष्पित हो जाता है, साथ ही राजा भी उसकी वीणावादन चातुरी देखकर उस पर और भी अधिक आसक्त हो जाते हैं ।

इस प्रकार नाटिका की नायिका शास्त्रीय लक्षणों से युक्त लगभग सर्वगुणसम्पन्ना नायिका है ।

रानी महादेवी --

रानी महादेवी मलयराज की ज्येष्ठा कन्या एवं तोण्डीर देश के राजा की प्रधान महिषी हैं । उन्हीं के अधीन नायक नायिका (राजा एवं मलयजा) का पूर्णतया सम्मिलन हुआ है । देवराज महादेवी की अनुकूलता के विषय में कहते हैं --
देवराज : --(दृष्ट्वा सहर्षम्) मुखप्रसाद एव प्रथमति महादेव्या आनुकूल्यम् ।

नायक नायिका के पारस्परिक अनुराग को फलित करने का श्रेय वस्तुत: महादेवी ही धारण करती हैं । अत: सम्पूर्ण कथानक उन्हीं में केन्द्रित रहता है ।

नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार वह कतिपय गुणों से युक्त है । वह प्रगल्भा, मानवती, नृपवंशजा एवं प्रौढा युवती है । नायक एवं नायिका दोनों ही महादेवी से भयभीत रहते हैं । नाटिका के तृतीय अङ्क० में राजा और मलयजा का प्रेमालाप होता रहता है, उसी समय मञ्जरिका-वेष धारण की हुई महादेवी के वास्तविक स्वरूप को जानकर राजा भयभीत हो जाता है । दासी केरलिका मंजा-

रिका से कहती है -

केरलिका - (जनान्तिकं मलयजां प्रति) सखि, अत्याहितम् अत्याहितम् । न खल्वेषा प्रियसखी मंजारिका । खल्वेव साध्वर्स महाभागस्य । तन्मन्ये देवी एषा । आहो-स्विन् किं कुर्मः ?

अन्त में जब महादेवी मलयजा को अपनी कनिष्ठा भगिनी स्वीकार कर लेती है उस समय उसका चरित्र और भी उज्ज्वलतर होकर प्रकट होता है । महादेवी मंजारिका - (महादेवीं प्रति) महाभागे, सर्वात्मना तव शीलेन विक्रयं मम हृदयम् ।

महादेवी -

नन्वहं तव प्रथमा द्वितीया मलयजा । तत् किं पुनः विप्रतिपत्तिः ?

इस प्रकार हम देखते हैं कि शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार महादेवी इस नाटिका की ज्येष्ठा नायिका हैं और नायक तथा नायिका के बाद उन्हीं का महत्व है किन्तु रत्नावली, प्रियदर्शिका आदि नाटिकाओं की ज्येष्ठा नायिकाओं की तुलना में इसे सर्वगुणसम्पन्ना नायिका नहीं कहा जा सकता । ज्येष्ठा नायिका को शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार प्रगल्भा और गम्भीरा तथा पद पद पर मानिनी कहा गया है । रत्नावली आदि नाटिकाओं की नायिकाओं के चरित्र-चित्रण में जितनी प्रगल्भता, गम्भीरता मिलती है एवं उनके मानिनी होने का जितना सुन्दर चित्रण किया गया है उतना सुन्दर वर्णन इस नाटिका में नहीं किया गया है । वह मुग्धा नायिका तथा राजा के प्रेम के विषय में जानकर मान करती है अपनी गम्भीरता एवं प्रगल्भता को प्रकट करती है किन्तु सम्पूर्ण नाटिका में उसको मान करते हुये कहीं नहीं दिखाया है । इसी प्रकार रत्नावली आदि नाटिकाओं की नायिकाओं में उसके प्रौढा युवती होने का, भावानुभावों के प्रकट-गोपन आदि क्रियाओं में निपुण होने का तथा लावण्य का सुन्दर चित्रण हुआ है किन्तु इस नाटिका में इन पक्षों का चित्रण सफलतापूर्वक नहीं हुआ है ।

अन्त में, ज्येष्ठा, नृपवंशजा आदि होने पर भी महादेवी के नायिका रूप चरित्र चित्रण में नाटिकाकार को विशेष सफलता नहीं कहा जा सकता।

विदूषक -

मलयजा नाटिका में विदूषक राजा देवराज का सुहृद् है। वह राजा के प्रत्येक कार्य में आरम्भ से अन्त तक (चाहे वह प्रणय व्यापार हो अथवा मनोरंजन) सहायक के रूप में उपस्थित है। वह प्रकृत्या, वाचाल, वाक्पटु, परिहास प्रिय एवं स्वाभिमानी मूर्ख है। समयानुसार यथोचित वेष-धारण, शरीर-प्रदर्शन, क्रिया सम्पादन आदि में दक्ष, रति एवं कलह दोनों में रुचि रखने वाला है। वह ब्राह्मण के सभी गुण भोजन, पारितोषिक आदि ग्रहण करने में सदा अनुरक्त रहने वाला, सुस्वादु, मिष्ठान्न का अत्यधिक प्रेमी है। तृतीय अङ्क में जब मलयजा केरलिका के साथ राजा से मिलने जाती है उस समय विदूषक कहता है - भवति, अहं प्रतिभूर्भविष्यामि युष्माकं विवादस्य। मह्यं मोदकं देहि।

विदूषक राजा का सर्वत्र सहायक है। वह एक व्युत्पन्नमति भी है। किसी भी बात का आढ्य उत्तर देने में नहीं चूकता। उसके कथन में अधिकतर परिहास का मिश्रण रहता है। वह वस्त्र और आभूषणों का प्रेमी है। तृतीय अङ्क में मलयजा के साथ देवराज के प्रेमालाप के समय महादेवी के आ जाने से देवराज अत्यन्त घबरा जाते हैं। उस समय विदूषक की हास्यपूर्ण उक्तियाँ दर्शनीय हैं --

विदूषक :--(सस्मितम्) वयस्य, न खलु भेऽस्ति भयम्। यत्वया पूर्वमेव देव्या अभयं पारितोषिकं दत्तम्।

इस नाटिका में विदूषक में कतिपय शास्त्रीय लक्षण ही विद्यमान हैं। शास्त्रीय गुणों की दृष्टि से अन्य नाटिकाओं की विदूषकों की तुलना में इस नाटिका के विदूषक को अधिक सफल नहीं कहा जा सकता।

इसके अतिरिक्त दाक्षायणा, वेवधन, दोवारिक आदि पुरुष पात्र तथा मंजारिका, वल्लरिका आदि स्त्री-पात्र भी उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार समस्त नाटिकाओं के पात्रों के विवेचन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि सभी नायक धीरललित प्रकृति के हैं। नायिका मुग्धा श्रेणी की है। ज्येष्ठा-नायिका देवी है। दोनों ही राजकुलोत्पन्न हैं। नायक का सुहृद विदूषक है। राजा के राज्य-संचालन के लिये एक मन्त्री है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य स्त्री एवं पुरुष पात्रों की योजना की गई है। पात्रों के चरित्र समस्त नाटिकाओं में लगभग समान रूप वाले हैं।

अध्याय – ६

`नाटिकाओं में चित्रित लोक तथा प्रकृति`

संस्कृत नाटिकाकारों ने जहाँ नाट्यकला में कुशलता व्यक्त की है, वहाँ उनकी नाटिकायें काव्य-गुणों से भी रिक्त नहीं हैं। उनमें नाट्य-शास्त्रीय विशेषताओं के अतिरिक्त लोक तथा प्रकृति का भी सफल चित्रण हुआ है। यद्यपि इस क्षेत्र में उन लोगों ने कालिदास, भवभूति आदि जैसे महान् कवियों का अनुकरण अवश्य किया है और उनके नाटकों के समान ही इनकी रचनाओं में नाट्य-गुणों और काव्य-गुणों का समन्वय भी है किन्तु संस्कृत नाटिकाकार उनकी समास-बहुला भारी भरकम गौड़ी रीति से प्रभावित नहीं है और उन्होंने अधिकांशतः प्रसाद-गुण-युक्त वैदर्भी रीति को ही अपनाया है।

रत्नावली –

वस्तुतः श्रीहर्षदेव की अमर कृति रत्नावली नाटिका न केवल नाट्य-वैशिष्ट्य की दृष्टि से अपितु काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। उसमें लोक तथा प्राकृतिक उपादानों और नायक-नायिका के मनोगत भावों का सफल चित्रण हुआ है।

प्रकृति चित्रण के समय सन्ध्या-वर्णन के प्रसङ्ग में नाटिका के निम्नलिखित दो श्लोकों में कवित्व की अपूर्व चारुता, स्वाभाविकता एवं चित्रात्मकता दर्शनीय है। सन्ध्या समय स्वभावतः झुके हुये कमलिनी के मस्तक पर प्यार से अपना किरणहस्त फेरता हुआ अस्ताचलोन्मुख सूर्य उसे याद दिलाता हुआ कहता है कि –

`यातोऽस्मि पद्मनयने समयो ममैष
सुप्ता मयैव भवती प्रतिबोधनीया।
प्रत्यायनामयमितीव सरोरुहिण्याः
सूर्योऽस्तमस्तकनिविष्टकरः करोति ।।३।६।।

इसमें कितना मनोहर प्रेमालाप है, कितनी मधुरता है और प्रसङ्गानुसार कितनी ध्वन्यात्मकता है इसे काव्य-रसिक ही जान सकते हैं।

इसी प्रसङ्ग में सूर्यास्त का वर्णन भी प्रशंसनीय है —

'अध्वानं नैकचक्रः प्रभवति भुवनभ्रान्तिदीर्घं विलङ्घ्य
प्रातः प्राप्तुं रथो मे पुनरिति मनसि न्यस्तचिन्ताभरः।
सन्ध्याकृष्टावशिष्टस्वकरपरिकरस्पष्टहेमारपङ्क्तिः
व्याकृष्यावस्थितो स्तक्षितिभृति नयतीवैष दिक्चक्रमर्कः।।'

इसी प्रकार सन्ध्या वर्णन के प्रसङ्ग में राजा वासवदत्ता के सौन्दर्य का वर्णन करता हुआ कहता है —

देवि! त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम्।।१।२५।।

कवि के प्राकृतिक चित्रण को पढ़ते समय हृदय प्रकृति के साथ तादात्म्य सा स्थापित करने लगता है। वसन्तकालीन मलयानिल जनमानस के लिये कितना सुखदायी है —

उद्यद्द्रुमकान्तिभिः किसलयैस्ताम्रां त्विषं बिभ्रतो
भृङ्गालीविरुतैः कलैरविशदव्याहारलीलाभृतः।
घूर्णन्तो मलयानिलाहतिचलैः शाखासमूहैर्मुहुः
भ्रान्तिं प्राप्य मधुप्रसङ्गमधुनामत्ता इवामी द्रुमाः।। १८।।

वसन्तोत्सव के समय कौशाम्बी नगरी की शोभा का सुन्दर चित्रण हुआ है —

कीर्णैः पिष्टातकौघैः कृतदिवसमुखैः कुङ्कुमक्षोदगौरैः
हेमालङ्कारभाभिर्भरनमितशिखैः शेखरैः कैङ्किरातैः।
एषा वेषाभिलक्ष्यस्वविभवविजितशेषवित्तेशकोशा
कौशाम्बी शातकुम्भद्रवखचितजनेवैकपीता विभाति।।१।११

युद्ध-क्षेत्र की भयङ्करता और कुरूपता का भी सुन्दर ढङ्ग से चित्रण किया गया है —

`अस्त्रव्यस्तशिरस्त्रशस्त्रकषणै: कृतोत्माहङ्गे कर्णो
व्यूढासृक्सरिति स्वनत्प्रहरणे वर्मोच्मदृङ्गिनि ।
आम्यानिमुखे स कौसलपतिर्भग्ने प्रधाने बले
एकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्तद्विपस्थो हत: ।। ५। ६।।

सेनापति रुमण्वान् की वीरता का जो वर्णन हुआ है उससे उसके साहसी व्यक्तित्व का आभास मिलता है --

योद्धुं निर्गत्य विन्ध्यादभवदभिमुखस्तत्क्षणं दिग्विभागान्
विन्ध्येनेवापरेण द्विपपतिपृतनापी बन्धेन रुन्धन् ।
वेगात्प्राप्तान्विमुञ्चन्नथ समदगजोत्पिष्टपत्तिर्निर्गत्य
प्रत्यायातश्छित्वाप्ति द्विगुणितरभसस्तं रुमण्वान्क्षणेन ।। ५। ४।।

अन्त:पुर में अग्निकाण्ड का वर्णन भी प्रशंसनीय है --

`हर्म्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव निचयैरर्चिषामादधान:
सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्रप्रताप: ।
कुर्वन्क्रीडामहीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातै:
एष प्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितो न्त: पुरे ग्नि: ।।४।१४।।

श्री हर्ष ने प्रेम के गम्भीर पक्ष की बड़ी मधुर व्यंजना की है । उसमें स्वाभाविकता के साथ साथ मार्मिकता भी है । सागरिका राजा उदयन को देखकर इतनी आत्मविभोर हो जाती है कि उन्हें ही साक्षात् कामदेव समझने लगती है । उदयन भी उसकी रूपमाधुरी से आकृष्ट होकर सागरिका की ओर से अपने हृदय को हटाने में असमर्थ पाता है । चित्रगत सागरिका के सौन्दर्य का कितना सुन्दर वर्णन किया है --

कृच्छ्रादूरुयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले
मध्ये स्यास्त्रिवलीतरङ्गविषमे निष्पन्दतामागता ।
दृष्टिस्तृषितेव सम्प्रति शनैरारुह्यतुङ्गौ स्तनौ
साकाङ्क्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने ।। १० ।।

इसी प्रकार कवि ने एक ही श्लोक में विवशता, पराधीनता, असफलता, ग्लानि, लज्जा, भय, सङ्कोच आदि भावनाओं का कितना मार्मिक चित्रण किया है --

क्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं
द्वयो र्दृष्ट्वालापं कलयति कथामात्मविषयाम् ।
सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकं
प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातङ्कविधुरा ।। ३४।।

इस प्रकार रत्नावली नाटिका में नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अतिरिक्त लोक तथा प्रकृति का भी सुन्दर चित्रण हुआ है । यद्यपि वे रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से कालिदास और भवभूति के समक्ष नहीं ठहर पाते फिर भी विशाखदत्त और भट्टनारायण की अपेक्षा इनमें नाटकीयत्व और लालित्य अधिक है ।

प्रियदर्शिका --

प्रियदर्शिका नाटिका न केवल नाट्य-वैशिष्ट्य की दृष्टि से अपितु काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है । उसमें प्राकृतिक उपादानों का नायक, नायिका के मनोगत भावों का, उद्यान की शोभा का तथा लोक आदि का सुन्दर चित्रण हुआ है । नाटिका के गद्य और पद्य दोनों के प्रयोग में कवि को समान सफलता मिली है ।

कवि हर्ष ने प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है । उस चित्रण को पढ़ते समय कवि का हृदय मानों प्रकृति से तादात्म्य सा स्थापित करने लगता है । उद्यान की शोभा का अति सुन्दर चित्रण किया गया है --

वृन्तैः तद्रुप्रवालस्थगितमिव तलं भाति शेफालिकानां
गन्धः सप्तच्छदानां सपदि गजमदामोदमोदं तनोति ।
एते चोन्निद्रपद्मच्युतबकुलरजः पुञ्जपिङ्गाङ्गरागाः
गायन्त्यव्यक्तवाचः किमपि मधुलिहो वारुणीपानमत्ताः ।। २।२ ।।

और पुन: -

बिभ्राणा मृदुलां शिरीषकुसुमश्रीधारिभिश्शाद्वलै:
सद्य: कल्पितकुट्टिमा मरकतशोदैरिव क्षालितै: ।
एषा संप्रति बन्धादिगलितैर्बन्धूकपुष्पोत्करै-
रधापि क्षितिरिन्द्रकोपकशतैश्छन्नेव संलक्ष्यते ।। ३।।

प्रियदर्शिका में राजा द्वारा जलाशय के सन्निकट पहुँचने पर जिस आनन्द की भावना का वर्णन है वह चन्द्रापीड की उस भावना की याद दिलाता है जिसका अनुभव चन्द्रापीड ने अच्छोद झील के निकट जाने पर किया था और जिसका वर्णन बाण की कादम्बरी में भी है -

श्रोत्रं हंसस्वनो यं सुखयति दयितानूपुराह्लादकारी
दृष्टिप्रीतिं विधत्ते तटतरुविवरालक्षिता सौधपाली ।
गन्धेनाम्भोरुहाणां परिमलपटुना जायते घ्राणसौख्यं
गात्रस्याह्लादमेते विदधति मरुतो वारिसंस्पर्शशीता: ।। ४।।

अन्तपुर की शोभा का भी हर्ष ने सुन्दर चित्रण किया है -

आभाति रत्नशतशोभितशातकुम्भ-
स्तम्भावसक्तपृथुमौक्तिकदामरम्यम् ।
अध्यासितं युवतिभिर्विजिताप्सरोभि:
प्रेक्षागृहं सुरविमानसमानमेतत् ।। ३ ।।

सूर्य की किरणों के प्रेमी सूर्यास्त हो जाने पर निराश हो जाते हैं। उनकी निराशा का वर्णन हर्ष ने इस प्रकार किया है -

हत्वा पद्मवनद्युतिं प्रियतमेवेयं दिनश्रीर्गता
रागोऽस्मिन् मम चेतसीव सवितुर्बिम्बेऽधिकं लक्ष्यते ।
चक्राह्वोऽहमिव स्थित: सहचरीं ध्यायन्नलिन्यास्तटे
संजाता: सहसा ममेव भुवनस्याप्यन्धकारा दिश: ।। १० ।।

ग्रीष्म अथवा पतझड़ के समय दिन की असह्य गर्मी में नागरिक जन वृक्षों की छाया में उनके द्वारा (वृक्षों द्वारा) अनुगृहीत होने का अनुभव करते हैं और जलाशय

के शीतल जल के लिये जाते हैं -

आभात्यर्कांशुतापात्क्वथदिव शफरोद्वर्तनैर्दीर्घिकाम्भः
छत्राभं नृत्तलोलाशिखमपि शिखी बर्हभारं तनोति ।
छायाचक्रं तरूणां हरिणशिशुरुपैत्यालवालाम्बुलुब्धः
सद्यस्त्यक्त्वा कपोलं विशति मधुकरः कर्णपालीं गजस्य ।। २। १२।।

हर्ष प्रेम वर्णन के स्थल पर अधिक आनन्द का अनुभव करते हैं । आरण्यिका के दुःख के समय भी उसके जिस परम सौन्दर्य का वर्णन किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है -

पातालाद्भुवनावलोकनधिया किं नागकन्योत्थिता
मिथ्या तत्खलु दृष्टमेव हि मया तस्मिन् कुतस्त्वीदृशी ।
मूर्ता स्यादिह कौमुदी न घटते तस्या दिवा दर्शनं
केयं हस्ततलस्थितेन भवती कमलेनालोक्यते श्रीरिव। २।६ ।।

प्रियदर्शिका के मुख सौन्दर्य का वर्णन कला का एक सुन्दर अंश है, भले ही यह कल्पना पश्चिमी कवियों के लिये असहृ०गत प्रतीत हो सकती है -

अयि विसृज विषादं भीरु भृङ्गास्तवैते
परिमलरसलुब्धा वक्त्रपद्मे वसन्ति ।
विकिरसि यदि भूयस्त्रासलोलायताक्षी
कुवलयवनलक्ष्मी तत्कुतस्त्वां त्यजन्ति ।। २। ८ ।।

राजा द्वारा अपराध किये जाने पर उनको दण्डित न कर सकने पर उच्च-कुलोत्पन्ना वासवदत्ता प्रज्वलित क्रोध से अत्यन्त पीड़ा का अनुभव करती हैं किन्तु वह उसका बहुत कम प्रदर्शन करती है -

भ्रूभङ्गं न करोषि रोदिषि मुहुर्मुग्धे क्षणं केवलं
नातिप्रस्फुरिताधरानवरतं निश्वासमेवोज्झसि ।
वाचं नापि ददासि तिष्ठसि परं प्रध्यातनम्रानना
कोपस्ते स्तिमितोऽतिपीडयति तां गूढप्रहारोपमः ।।४।३।।

वह अपने क्रोध को शान्तिपूर्वक उदासीनता के आवरण में छिपाने का प्रयत्न करती है किन्तु उसकी बाह्य (भौतिक) प्रतिक्रियायें उसकी भावनाओं को छिपाने में सर्वथा असमर्थ रहती हैं. -

स्निग्धं यद्यपि वीक्षितं नयनयोस्ताम्रातथापि द्युति:
माधुर्येऽपि सति स्खलत्यनुपदं ते गद्गदा वागियम् ।
निश्वासा नियता अपि स्तनभरोत्कम्पेन संलक्षिता:
कोपस्ते प्रकटप्रसादविधृतोऽप्येष स्फुटं लक्ष्यते ।। ४।।

चतुर्थ अङ्क के नवें श्लोक द्वारा यह ज्ञात होता है कि जहाँ सच्चा प्रेम होता है वहाँ सच्चे प्रेमियों का एक ही जीवन हो जाता है -

एषा मीलयतीदमीक्षणयुगं जाता ममान्धा दिश:
कण्ठोऽस्या: प्रतिरुध्यते मम गिरो निर्यान्ति कृच्छ्रादिमा: ।
एतस्या: श्वसितं हृतं मम तनुर्निश्चेष्टतामागता
मन्ये स्या विषवेग एव हि परं सर्वं तु दु:खं मयि ।। ६ ।।

एक सच्चे योद्धा की युद्धप्रियता, सदैव आक्रमण के लिये उसका उत्सुक रहना और कभी युद्ध में पीछे हटने का स्वप्न भी न देखना, इन सबका सुन्दर ढङ्ग से चित्रण किया गया है -

पादातं पविरेव प्रथमतरमुर:क्षेपमात्रेण पिष्ट्वा
दूरं नीत्वा शरौघैर्हरिणकुलमिव त्रस्तमश्वीयमाशा: ।
सर्वत्रोत्सृष्टसर्वप्रहरणनिवहस्तूर्णमुत्खाय खड्गं
पश्चात्कर्तुं प्रवृत्त: करिकदलीकाननच्छेदलीलाम् ।। १।६ ।।

इसके विपरीत निम्न श्लोक द्वारा उसमें सुरक्षा की भावना भी परिलक्षित होती है -

अस्मद्बलैर्विजयसेनपुरस्सरैस्ते -
राक्रान्तबाह्यविषयो विहतप्रताप: ।
दुर्गं कलिङ्गहतक: सहसा प्रविश्य
प्राकारमात्रशरण: किल वर्तते सो ।। ४ ।।

कंचुकी (विजयसेन ?) अपने स्वामी उदयन के समीप पहुँचने पर जिस भय का अनुभव करता है उसका भी स्पष्ट चित्रण किया गया है —

तत्क्षणमपि निष्क्रान्ताः कृतदोषा इव विनापि दोषेण ।
प्रविशन्ति शङ्कमाना राजकुलं प्रायशो भृत्याः ।। १।८ ।।

कंचुकी (अथवा विजयसेन ?) जब अपने स्वामी उदयन की आज्ञा पूरी कर लेने में सफलता प्राप्त कर लेता है, उस समय वह जिस असीम प्रसन्नता का अनुभाव करता है उसका चित्रण भी हर्ष ने भलीभाँति किया है —

सुखनिर्भरो ऽन्यथापि स्वामिनमवलोक्य भवति भृत्यजनः ।
किं पुनरखिलविघटननिर्व्यूढप्रभुनियोगभरः ।।

इस प्रकार प्रियदर्शिका नाटिका की रचना में हर्ष को न केवल नाट्य-शास्त्र की दृष्टि से अपितु लोक तथा प्रकृति के चित्रण में भी निपुण कहा जा सकता है ।

विद्धशालभंजिका —

विद्धशालभंजिका नाटिका नाट्य-वैशिष्ट्य की दृष्टि से यद्यपि महत्वपूर्ण नहीं है लेकिन लोक तथा प्रकृति-चित्रण एवं साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से इसके महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । राजशेखर कवित्व की दृष्टि से श्रेष्ठ और नाटककार की दृष्टि से अनुत्तम कलाकार हैं । कौशिकी वृत्ति से युक्त इस नाटिका में कवि को गद्य की अपेक्षा पद्य के प्रयोग में अधिक सफलता मिली है ।

कवि ने प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है । विलासोद्यान की रमणीयता सराहनीय है । राजा पवन का स्पर्श करते हुये कहता है —

राजा - (पवनस्पर्शमभिनीय)

ये दोलाकेलिकाराः किमपि मृगदृशां मानतन्तुच्छिदो
ये सद्यः शृङ्गारदीक्षाव्यतिकरगुरवो ये च लोकत्रयेऽपि ।
तं कण्ठे लोठयन्तः परभृतवयसां पंचमं रागराजं
वान्ति स्वैरं समीराः स्मरविजयमहासाक्षिणो दाक्षिणात्याः ।।१।२६।।

सुरतभर.................... क्रियते ।।२८।।

इतना ही नहीं, माध्यन्दिनी सन्ध्या के वर्णन में भी कवि की कुशलता देखी जा सकती है। नेपथ्य द्वारा माध्यन्दिनी सन्ध्या का वर्णन किया गया है -

धत्ते मज्जनलतादले प्युरुपरि स्वं कर्णं तालं द्विप:
अप्यस्तम्बरसान्नियच्छति शिखी मध्येशिखण्डं शिर: ।
मिथ्या लेढि मृणालकोटिरभसादृष्ट्वाङ्कुरं सुन्दरी
मध्याह्ने महिषश्च वाञ्छति निजच्छायामगाधकर्दमम् ।।१।२३ ।।

नायिका के सौन्दर्य-कथन एवं उसके विरहावस्था काल में उसके हृद्गत भावों को परखने में भी कवि को सफलता मिली है। नायिका के स्वप्नदर्शन के बाद नायक के प्रेमाभिभूत मानस की गति का वर्णन करते हुये कवि कहता है -

राजा - (मदनाकुलमभिनीय)

बाणान् संहर मुञ्च कार्मुकलतां लक्ष्यं मदीयं मन: ।
तत्कारुण्यपरिग्रहात्कुरु दयामस्मिन्विधेये जने
स्वामिन्मन्मथ तादृशं पुनरपि स्वाप्नाद्भुतं दर्शय ।।१२२ ।।

राजा उसके सौन्दर्य पर इतना मोहित हो गया है कि उसके वियोग में वह अपने हृदय को उससे अलग रखने में असमर्थ है। द्वितीय अङ्क में वह नायिका के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये कहता है --

राजा - < < इदमन्यत्कथयामि न पुराणप्रजापति निर्माणमेषा । यत: -

चन्द्रो जड: कदलिकाण्डमकाण्डशीत
मिन्दी वराणि च विसृजितविभ्रमाणि ।
येनाक्रियन्त सुतनो: स कथं विधाता
किं चन्द्रिकां क्वचिदशीतरुचि: प्रसूते ।।२४।।

नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार शृङ्गार रस प्रधान है। इसमें शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया गया है।

नायक नायिका के हृदयों में अनुराग-भावों का प्रस्फुरण अप्रत्याशित गति से हुआ है। राजा उसके प्रेम में आतुर होकर निज:स्थिति को भूलने लगते हैं। वह अपने मित्र विदूषक से कहते हैं -

राजा- किमात्थ सन्तापकारिणीति। तत्र पंचमकाकलीकलगीतय: कर्णौ कलुषयन्ति। सुधास्यन्दिनी चन्द्रमूर्तिचक्षुषी तापयति। चन्दनरसनिष्यन्दस्तनुं दहति।

सपत्नीडाह का भी कवि ने सुन्दर वर्णन करने का प्रयास किया है। रानी मदनवती लाट देश के राजा चन्द्रवर्मा द्वारा भेजी हुई उसकी पुत्री मृगाङ्कावली को लड़का समझकर कुवलयमाला से उसका विवाह करना चाहती है किन्तु अन्त में स्वत: धोखा खा जाती है और कुवलयमाला तथा मृगाङ्कावली दोनों का विवाह उसे राजा से करना पड़ता है -

देवी -- (जनान्तिकेन) प्रसीदस्व देव दुर्ललितानि यन्मयाकेलिकौतुहलित्वेनालीकं परिकल्पितं तत्सत्यत्वेन परिणतम्।

कवि ने सुन्दर उक्तियों के प्रयोग द्वारा भी अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया है। रानी मदनवती सपत्नीडाह के कारण नायिका मृगाङ्कावली का विवाह राजा से कर देने पर पश्चात्ताप करती है। उस समय राजा कहता है -

राजा- < < अनुगुणं हि दैव सर्वस्मै स्वस्ति करोति।

राजशेखर की अभिव्यक्ति उसकी भाषा शैली और शब्द-चयन सुन्दर और शक्तिशाली है-इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। विद्धशालभंजिका की नान्दी द्रष्टव्य है -

कुलगुरुरबलानां केलिदीक्षाप्रदाने
परमसुहृदनङ्गो रोहिणीवल्लभस्य।
अपि कुसुमपृषत्कैर्देवदेवस्य जेता
जयति सुरतलीलानाटिकासूत्रधार: ।। १ ।।

नारी के स्निग्ध सौन्दर्य का चित्रण करने में राजशेखर की लेखनी दक्ष है। विरह के कारण रजत् रङ्ग को बनी हुई नायिका का चित्रण करते हुये कहते हैं —

दरदलितहरिद्राग्रन्थिगौरे शरीरे
स्फुरति विरहजन्मा को प्ययं पाण्डुभावः।
बलवति सति यस्मिन् सार्धमावत्यं हेम्ना
रजतमिव मृगाक्ष्याः कल्पितान्यङ्गकानि ॥३।१७॥

ध्वन्यात्मकता में अर्थानुरूप ध्वनि देने वाले शब्दों के चयन में भी राजशेखर विशेष कुशल हैं। नायिका द्वारा गेंद के खेलने का वर्णन किया गया है जिसमें उसके आभूषणों के बजने की ध्वनि शब्दों से ही सुनाई पड़ रही है —

अमन्दमणिनूपुरक्वणनचारुचारिक्रमं
झणज्झणितमेखलास्खलिततारहारच्छटम्।
इदं तरलकङ्कणावलिविशेष वाचालितं
मनो हरति सुभ्रुवः किमपि कन्दुकक्रीडनम् ॥२।६॥

प्राकृत में भी कवि की शब्द-चयन शक्ति वही है जो संस्कृत में है। गेंद के खेल का ही चित्रण प्राकृत में भी दृष्टव्य है —

चंचल चलण चण्डचारक्कम चलिद चलअं
अविरल वेणि वेल्लिद भल्ल वलन च्चुद विअसिद मल्लिअं।
साहइ घण-रणित रसणा मणि किंकिणी चअं
बंद मुहीए रअण-रंगणो गेंदुअ-केलि-ताडवं ॥२।७॥

इस प्रकार राजशेखर के पास भावों में मौलिकता कम है और वह अधिकांशतः पुराने कवियों और परम्परा से प्राप्त है किन्तु उसकी अभिव्यक्ति अपनी है और वह सशक्त व सुन्दर है।

राजशेखर नाटककार की दृष्टि से असफल होते हुए भी कवि की दृष्टि से असफल नहीं कहे जा सकते। उनकी कविता का अभिव्यंजना पक्ष उनके पास है। उनकी शैली सशक्त है और इस दृष्टि से वह आगे के नाटिकाकारों के अनुकरणीय रहे हैं।

कर्णसुन्दरी --

महाकवि बिल्हण कवित्व की दृष्टि से श्रेष्ठ कलाकार हैं। कैशिकी वृत्ति से युक्त इस नाटिका में कवि को गद्य के पद्य में भी विशेष सफलता मिली है। लघु एवं सरल संवाद तथा सरस पद्य इसकी श्रेष्ठ अभिनेयता के प्रमाण हैं।

कवि ने प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। मदनोद्यान की रमणीयता सराहनीय है। विदूषक राजा से मदनोद्यान का वर्णन करते हुये कहता है --

विदूषक :--

भो वयस्य, अभिनवमधुरसतरंगितललितलतांगणडिंगतकुसुमविकसितलवणतरु-मण्डलं कुण्डलितकोदण्डचण्डप्रहारपटुमदनसुभटतीक्ष्णक्रियमाणसत्कारडिंकुरशिलीमुखं रज्यत्कण्ठकलकण्ठधारपंचमस्वरमुखरीक्रियमाणं मदनोद्यानं पश्यन्निर्वृतिमुपलभते भवान् ।

इसी प्रकार विदूषक वसन्तकालीन मलयानिल का वर्णन करते हुए कहता है - विदूषक: -

कुर्वाणाः प्राणनाथप्रणयकलिलहर्षं जर्जरं गुर्जरीणां
भिन्दानाः सान्द्रमानग्रहपटिमगर्वं मेदपाटाङ्गनानाम् ।
उन्मीलन्मालवस्त्रीवदनपरिमलग्राहिणो दुर्विलासम-
कामारम्भक्रमाम्भःकणहरणखेलाविलासिनो वान्तिवाताः ।।१।।५०।।

इसी प्रकार राजा वसन्तकाल की आरम्भिक शोभा का अत्यन्त सरल व सरस ढङ्ग से वर्णन करते हुये कहते हैं -

कुर्वन्ति कोकिलकुलोपवर्तिं लतासु
रुन्धन्ति वासभवनेषु समीरमार्गान् ।
किं तन्न यद्विरहिणीनिवहस्य सख्यः ।
सावज्ञमाकुलतया कलयन्त्यजस्रम् ।।१।४७ ।।

नायिका के सौन्दर्य वर्णन में भी कवि की काव्य प्रतिभा प्रकट हुई है। नायक के प्रेमाभिभूत मानस की गति को कवि ने कुशलतापूर्वक पहचाना है।

अपने मित्र विदूषक के साथ तरङ्गशाला में कर्णसुन्दरी का चित्र देखकर राजा कहता है - राजा

एतदेव सितदेवतरुप्रसून-
सौभाग्यमङ्गकमनङ्गविलासवेश्म ।
नेत्रः स एव च विलोचनयोर्विलासः
सैवेन्दुसुन्दरमुखी लिखितेयमास्ते ।।१।५२।।

राजा उसके सौन्दर्य पर इतना मोहित हो गया कि उसके वियोग में वह अत्यन्त ही व्याकुल रहता है । वह विरहावस्था काल में नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है - राजा -

धूमश्यामलितेव तापनवशाच्चामीकरस्य च्छवि-
श्चन्द्रो मुक्त इव श्रियाभिरखा निर्धौतरागा इव ।
निःसारेव धनुर्लता रतिपतेः सुप्तेव विश्वप्रभा
तस्याः किं च पुरो विभान्ति कदलीस्तम्भा सदम्भा इव ।।२।२ ।।

कवि बिल्हण ने प्रेम के गम्भीर पक्ष की व्यंजना की है । उसमें कितनी मार्मिकता है । राजा के प्रति कर्णसुन्दरी के हृदय में इतना अधिक प्रेम उत्पन्न हो जाता है कि वह उस असीम दुःख को सहने में असमर्थ होकर मृत्यु का सहारा चाहती है - नायिका -

गुर्वीं धुरं दुरभियोगनिधिमनोभू-
राज्ञवानविषये मनसोऽनुबन्धः ।
बंधुर्न कश्चिदपि निघ्नतया स्थितिश्च
हा निश्चितं मरणमेव ममेह जातम् ।।२।३५।।

नाटिका में संयोग की अपेक्षा वियोग का चित्रण अधिक सुन्दर बन पड़ा है ।

ईर्ष्याभाव का भी कवि ने सुन्दर वर्णन करने का प्रयास किया है । देवी भागिनेय कुमार को कर्णसुन्दरी की वेशभूषा पहनाकर उसकी विवाह राजा

के साथ करना चाहती है किन्तु अन्त में वह स्वतः धोखा खा जाती है और फिर उसे वास्तविक कर्णसुन्दरी के साथ राजा का विवाह करना पड़ता है - देवी-(आत्मगतम्) हा हतास्मि मन्दभागिनी । मया कथितमेव केवलमिति प्रत्यक्षं सैव २ रणेति । तर्वंचितास्मि । किं क्रियते । (इति धैर्यमवलम्ब्यते ।)

युद्ध-क्षेत्र की भयङ्करता और कुरूपता का भी सुन्दर ढङ्ग से चित्रण किया गया है -

पांसूनां सूचिभेद्यैः सकलमपि कुलक्ष्माभृतां छादनेच्छा-
बद्धोत्साहैः प्रवाहैरसृग्भिः रममवक्त्र्योमसीमान्तरालम् ।
गाढश्रेणीनिवेशश्रियमथ धरणीमण्डलं वार्ययाता
जातोर्वी तेन वीर विरचितविवरास्तत्र वाहो मुकुटैर्म् ।। ४।१७।।

कवि विल्हण ने सुन्दर उक्तियों के प्रयोग द्वारा भी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया है । नाटिका के प्रथम अङ्क के अन्त में देवी द्वारा राजा के प्रति क्रोध प्रकट किये जाने पर हारलता कहती है - हारलता-देव्या विनान्यः क एतन्मन्त्र्यते । विना मृगाङ्कलेखां कुतो ज्योत्स्नायाविलासः ।

इसी प्रकार द्वितीय अङ्क के प्रारम्भ में विदूषक कर्णसुन्दरी के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिये तरङ्गवती को खोज करते हुये उसके समीप पहुँचकर कहता है -

विदूषकः -(सत्वामुत्थाय) भवति, कुतोऽन्यतो गम्यते । अहं तव शशिलेखाया इव मार्गं प्रलोकयामि । त्वं राहुमिव मां परिहरसि । किं न्वेतत् ।

अभिनेयता की दृष्टि से भी इसके सरल और सरस पद्य सुन्दर व शक्ति-शाली बन पड़े हैं । यथा -

भव भव शतयामा यामिनि स्वामिनि त्वं
कुरु रजनिनाथ ज्योत्स्नया दिङ्मुखानि ।
अयि विरमय काम क्रीडितं कुर्वाणा-
व्ययपरिचयपर्वत्कर्मीणः कार्मुकस्य ।।३।६ ।।

इस प्रकार यह कृति राजशेखर की विद्धशालभंजिका से प्रभावित और रत्नावली की शैली पर निर्मित होने पर भी कवि की अभिव्यक्ति अपनी है और यह कृति लघु, सुन्दर, सरल,सरस और सशक्त है ।

पारिजातमंजरी -

पारिजात मंजरी नाटिका लोक तथा प्रकृतिचित्रण एवं साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है । कैशिकी वृत्ति सनाथ इस नाटिका में कवि को गद्य और पद्य दोनों के ही प्रयोग में समान सफलता मिली है ।

नाटिका में कतिपय स्थलों पर प्रकृति का सुन्दर चित्रण हुआ है । विदूषक देवी के पास जाते समय धारागिरि के लीलोद्यान का चित्रण करते हुये राजा से कहता है - विदूषक: - वयस्य, यथैष समकालोत्कण्ठितकेलिदीर्घिकाकल-हंसकूजित करम्बो सर्मंजसमंजीरकलकालो यथा च स्तोकोष्मायमाणकर्पूरपरिमलोन्मि-श्रित: क्लान्तकुसुमामोद: प्रत्यासन्नो भवति तथाहंसप्रथमिकामिलन्तीभिर्विकटनितम्बो-रुभरपरिस्खलच्चरणारविन्दाभिर्दक्षिणानिलान्दोलनशीलवसन्तमालामनोहराभि: स्थूलस्तनमण्डलोद्वहनपरिश्रमश्वसितमन्दप्रत्याख्यमानताम्बूलरसाभिर्वारविलासिनीभि: सेव्यमानाभ्युत्थिता देवी ।

नायिका के सौन्दर्य वर्णन में भी कवि की काव्य-प्रतिभा प्रकट हुई है । नायक के प्रेमाभिभूत मानस की गति को कवि ने भलीभाँति पहचाना है । रानी के ताटङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखकर कहता है - राजा - ‹ ‹
अये, जितं मनोरथै: । यदियं बलकुलिशघोरान्धकारदु:संचरसमरसंकेतनवाभिसारिका मे प्राणेश्वरी प्रथमप्राणेश्वरीताटङ्कदर्पणलोचनगोचरं गता ।

मदनपाल सरस्वती ने प्रेम के गम्भीर पक्ष की व्यंजना की है । राजा के प्रति नायिका के हृदय में इतना अधिक प्रेम उत्पन्न हो जाता है कि वह उस असीम दु:ख को सहने में असमर्थ होकर कहती है - नायिका- ‹ ‹ ‹
हा धिक्, एष निर्दय: प्रत्यक्ष एव कुसुमायुधो मां मन्दभागिनीं प्रहरति । तत्परि-त्रायतां परित्रायतामार्या ।

द्वितीय अङ्क में राजा द्वारा रानी के ताटङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखने की बात कनकलेखा को ज्ञात हो जाती है और वह जानती है कि रानी में सपत्नीडाह की भावना है अत: वह जाकर रानी से ताटङ्क प्रतिबिम्ब

की बात बताना चाहती है किन्तु राजा जब उसे सङ्केत द्वारा प्रसन्न कर लेते हैं उस समय रानी सपत्नीडाह की भावना से ही क्रोधित होकर चली जाती हैं। इसी प्रकार द्वितीय अङ्क के अंत में राजा जब रानी को प्रसन्न करने का प्रयास करता है तब पारिजातमंजरी आत्महत्या की धमकी देते हुए चली जाती है क्योंकि उसमें भी सपत्नीडाह की भावना विद्यमान रहती है।

कवि मदनपाल के सुन्दर उक्तियों के प्रयोग द्वारा भी अपनी साहित्यिक प्रतिभा का परिचय दिया है। रानी के क्रोधित होकर चले जाने पर राजा विदूषक से पूछता है कि अब क्या करना चाहिये उस समय विदूषक कहता है -
विदूषक: - < < भारितस्य मुक्तस्य चैकमेव नाम।

इस प्रकार मदनपाल सरस्वती की यह कृति अन्य नाटिकाओं की शैली पर निर्मित होने पर भी इसमें कवि की अपनी अभिव्यक्ति है और नाटिका में प्राचीनता तथा नवीनता दोनों का सुन्दर समन्वय है।

कुवलयावली -

प्रांजल भाषा, कैशिकी वृत्ति से युक्त इस नाटिका में प्राकृतिक उपादानों एवं नायक-नायिका के मनोगत भावों का सुन्दर चित्रण किया गया है। गद्य-पद्य दोनों के प्रयोग में कवि को सफलता मिलती है।

कवि ने प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर चित्रण किया है। विलासोद्यान की रमणीयता आश्चर्यजनक है। प्रथम अङ्क में राजा विलासोद्यान के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है - राजा < < < (पुरोऽवलोक्य)

अहो विलासोद्यानस्य रामणीयकविलास: इह हि।
अतिमधुरकण्ठनालैरभिनवसहकारकिसलयास्वादात्।
कलकण्ठैस्तरुलतिका: परस्परालापसुखमिवादधते ।।८।।

नायिका के सौन्दर्य-वर्णन तथा उसके हृदयगत भावों को परखने में कवि की काव्य-प्रतिभा अत्यन्त पर्यवेक्षणी होकर प्रकट हुई है। नायक के प्रेमाभिभूत मानस की गति को भी कवि ने बड़ी कुशलता से पहचाना है - नायक:- अथकिम्। सखे कदाचिदपि तां विलोकयिता -

सखे कदाचिदपि तां विलोकयिता भवानिति यथानुभवमेव ते निवेदयामि ।

नितम्बो बिम्बेन प्रहसति रथाङ्ग रतिपते:
करग्राह्यो मध्यस्त्रिवलिपरिणाढो वरतनो: ।
समाक्रान्तोपान्तं कुचयुगलमाकीलितमिव
स्वभावादालोले प्रकृतिपरिमेये च नयने ।।३।।

राजा कुवलयावली की लावण्य सम्पदा पर इतना अधिक प्रसन्न हो गया है कि वह अपने हृदय को उससे अलग रखने में असमर्थ है । कुवलयावली के सौन्दर्य का जो कथन कवि ने किया है वह श्लाघनीय है -

नायक :- सर्वातिशायीं तस्या लावण्यमसाक्षात्कुर्वतो भवतो यदुचितं तदभिद-धासि । किं बहुना, श्रूयताम् -

विलोलभ्रूवीचिर्विचलितकटाक्षोत्पलवनात्
कनदुग्रीवाकम्बो कुचयुगलचक्राङ्गमिथुनात् ।
लताङ्गया लावण्यादमृतसरस: कैरपि कणै-
र्विकीर्णैरन्यासां रुचिमकृत धातेति कलये ।।६।।

इससे भी मनोहारी वर्णन दृष्टव्य है -

नायक :-

क्वासौ दृशोरमृतवर्तिरलंकरणीया
क्वानन्दसिद्धिगुटिका निरुपाधिसिद्धा ।
क्वाकल्पनापरिणता नवकल्पवल्ली
क्वानङ्गरा वसति मोहनमूलविद्या ।।८।।

नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार शृङ्गार रस प्रधान है । कवि ने इसमें संयोग-वियोग दोनों पक्षों का सफल चित्रण किया है । नायक-नायिका के हृदयों में अनुराग-भाव का प्रस्फुरण स्वाभाविक गति से हुआ है । दोनों एक दूसरे के प्रेम में आतुर होकर निज:स्थिति को भूल जाते हैं । कुवलयावली का यह कथन दृष्टव्य है - 'प्रथमं कर्पूरेण धूपितं मदनानलमिदानीं किमिति कदलीदलानिलै:

प्रज्वलितं करोषि (इति तान्यपक्षिपति ।)

जब श्रीवत्स राजा से कहता है कि कुवलयावली को वेषभूषा उसके सन्ताप को पूर्णरूप से प्रकट रही है - उस समय राजा का प्रत्युत्तर भी द्रष्टव्य है -

आकल्पैरविलासान्द्रचन्द्रघुटिकाप्रायैस्तनोस्तर्पणं
श्रीगन्धद्रवलेपनेन कुचयोरत्यन्तमालेपनम् ।
लीलातामरसोदरेण करयोरक्षणो त्वसंवाहनं
प्रयस्याः प्रकटीकरोति विषमां हा न्त तापव्यथाम् ।।

तृतीय अङ्क में राजा और कुवलयावली के परस्पर अभिसरण के समय सत्यभामा वहाँ अचानक आ जाती है और दोनों के अभिसरण की बात उसे पता लग जाती है । वह राजा के ऊपर अत्यन्त कुपित हो जाती है । राजा उसको प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं -

बद्धभ्रूयुगले विभङ्गकुटिलं बद्धो स्मि वेगोत्थितै-
निःश्वासैरभिताड़ितेऽधरपुटे सन्ताड़ितोऽस्मि प्रिये । ।
कल्हारेऽरुणाया दृशा श्रुति सखे रुद्धे निरुद्धोऽस्मिमां ।।२२।।

कवि ने तृतीय अङ्क में कंचुकी के मुख से जरावस्था का अत्यन्त स्वाभाविक चित्रण कराया है - कंचुकी- (आत्मनो दशामनुसन्धाय)

रुन्धानया बहुमुखीं गतिमिन्द्रियाणां
बध्वेव गाढमनया जरयोपगूढः ।
अङ्गेन वेपथुमता च जडेन चाहं
गन्तुं पदादपि पदं गमितुं न चालम् ।।२१ ।।

चतुर्थ अङ्क में दानव राजा की नायिका कुवलयावली को उठा ले जाता है । राजा को विदूषक इत्यादि के द्वारा जब यह समाचार मिलता है तो वे उसके प्रेम में व्याकुल होकर उसकी सुरक्षा के लिये जाते हैं और राक्षस को मार कर कुवलयावली को वापस लाते हैं । राजा की इस विजय को सुनकर देवी रुक्मिणी भी अत्यन्त प्रसन्न हो उठती हैं । कवि ने राजा की वीरता का वर्णन अत्यन्त

सुन्दर शब्दों में किया है -

नारद : - ( ) । श्रूयताम् ।

सुरा: सप्ताब्धिपूरार्थं य (दे ? मै) ग्गन्त महोदरम् ।
चक्रधाराग्निना सर्पिर्बिन्दुशोषं स शोषित: ।।४।३।।

सपत्नीडाह के विषय में भी कवि ने अपने विचारों को प्रकट करने का प्रयास किया है । राजा के साथ अभिसरण रूप अपराध करने के कारण कुवलया-वली को रुक्मिणी अपने प्रासाद के एक कक्ष में बन्द कर लेती है । इससे (कुवल०) उसकी सखियाँ उसके विषय में चिन्तित होकर कहती हैं -

कस्तूरिका - किं त्वं न जानासि कुवलयावल्या उपरि देव्येव निर्विशेषं स्नेहं करोति । किन्त्विदानीं सपत्नीजनदाक्षिण्यं दारीकृत्य तस्य प्रतिन्यासकारिण्ये मह्यं : सापि साध्वसेन तां कन्यकामतिप्रयासेन द्रावयति ।।अ०३।४।।

राजा का नायिका के प्रति इतना अधिक प्रेम है कि जब सत्यभामा को राजा तथा कुवलयावली के अभिसरण की बात मालूम हो जाती है तो राजा कुव-लयावली की दशा के विषय में सोचकर अत्यन्त चिन्तित होने लगता है । वह अपने मित्र विदूषक से कहता है -

राजा - सखे, महोत्सवप्रतिनिवृत्ता देवी प्रसङ्गमिममाकर्ण्य किमुत् पीडयिष्यति नव प्रियसखीमिति पर्याकुलोऽस्मि ।

कवि ने सुन्दर उक्तियों के प्रयोग द्वारा भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है । समस्त गुणों से युक्त होने पर भी राजा के हृदय में कुवलयावली के प्रति अधिक अनुराग है । विदूषक राजा से कहता है -

श्रीवत्स:-- ( ) भो: ! राजानो नवप्रियाभवन्तीतीदानीं सत्यो लोकवाद: । यत् त्वं सकलगुणश्लाघनीयं देवीजनमवगत्य यां कामपि कन्यकामभि-नन्दसि । अथवा प्रसिद्धं खल्वेतत् ।

अन्यस्मिन् वसति गुणा: प्रभुणां चित्त: खलु रमतेऽन्यस्मिन् ।
कमले खण्डितप्रेमा चन्द्र: कुमुदं प्रसादयति ।।२।५।।

नायक: - सखे ! वस्तुगुणविशेषो विवेकिनां सौहार्दमुत्पादयति ।

इस प्रकार कुवलयावली नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के साथ साथ साहित्यिक गुणों से भी युक्त है किन्तु कालिदास, हर्ष आदि कवियों की तुलना में साहित्यिक-सौष्ठव की दृष्टि से शिङ्गभूपाल को अधिक सफल नहीं कहा जा सकता ।

चन्द्रकला -

चन्द्रकला नाटिका के नाट्य-वैशिष्ट्य के साथ उसमें चित्रित लोक तथा प्रकृति के वैशिष्ट्य की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती । विश्वनाथ द्वारा रचित दो काव्यों के आधार पर भी उनकी काव्य प्रतिभा सहज सिद्ध है । साहित्य दर्पण के तृतीय, षष्ठ, सप्तम, अष्टम और दशम परिच्छेदों में इस नाटिका के तेरह छन्द रस, ध्वनि, गुण, अलङ्कार आदि के उदाहरणस्वरूप उद्धृत किये गये हैं । कैशिकी वृत्ति सनाथ इस नाटिका में नायक-नायिका के मनोगत भावों प्राकृतिक उपादानों आदि का सहज चित्रण हुआ है । गद्यपद्य दोनों में विश्वनाथ जी सफल कलाकार हैं । अत: यह नाट्यकृति लोक तथा प्रकृति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है ।

प्राकृतिक चित्रण पढ़ते समय हृदय प्रकृति के साथ तादात्म्य सा स्थापित करने को विवश हो जाता है । प्रथम अङ्क का लताकुंजं गुंजन् .... दिशि दिशि छन्द पढ़ते समय वसन्तकालीन मलयानिल की मन्दगति का आभास होने लगता है । ऐसा प्रतीत होता है कि मलय-मारुत एक रस-रसिक की भाँति जन-मानस को मधु-मदिर भावों से उन्मत्त कर रहा है । उदीयमानचन्द्रमा उसकी ज्योत्स्ना एवं रात्रि के घनान्धकार का मनोरम वर्णन है । द्वितीय अङ्क में उदय होते हुये चन्द्रमा को देखकर राजा अपनी महारानी वसन्तलेखा से उसका वर्णन करते हुये उसको कर्पूर-चूर्ण के सदृश, आकाश सागर का राजहंस आदि संज्ञाओं से अभिहित करता है -

विरहिकुलकृतान्त: कण्ठकर्पूरकान्त:
कृतयुवधृतिभङ्ग: सम्भृतानङ्गरङ्ग: ।
गगनजलधिहंस: स्थाणुचूडावतंस:
कायितकुमुदतन्द्र: शोभते शुभ्रचन्द्र ।। २१ ।।

ऐसी चन्द्रमा की किरणों का जब प्रसार होने लगा तो कमलदल रूपी हृदय खिलने और घनतिमिर रूपी धैर्य विचलित होने लगा -

'सह कुसुमकदम्बै काममुल्लासयन्त:
सह घनतिमिरौघै: धैर्यमुत्सादयन्त: ।
सह सरसिजषण्डै: स्वान्तमामोलयन्त:
प्रतिदिशममृतांशो रंशव: संचरन्ति ।।२७।।

चन्द्रमा उदय हो रहा है - उसके प्रभाव से काम-भावनाएं उसी प्रकार विकसित और उल्लसित हो रही है, जैसे पुष्पों में विकास, उनकी किरणों के प्रसाद से जैसे तिमिर का नाश हो रहा है उसी प्रकार रसिक-मानस से धैर्य किनारा छोड़ने लगा है, कमल-दलों की भाँति हृदय विकचने लगे हैं।' रात्रि की युवावस्था में घनान्धकार इस प्रकार व्याप्त हो जाता है कि समस्त जगती की वस्तुयें उसके श्याम-वर्ण में रंगी सी अपने पृथक् अस्तित्व को भी उसमें विलीन कर देती हैं। इसका कथन कवि विश्वनाथ निम्न शब्दों में कर रहे हैं -

'आस्तीर्णा इव नीलचेलनिचये: पूर्णा इवेन्दीवरै-
राकीर्णा इव चूर्णितैर्मृगमदै: पूर्णा इवाम्भोनिधै: ।
रुन्द्धानेन विगृह्य लोचनपथं भेधेन सूचीमुखै-
राच्छन्नस्तमसा तमालमलिनच्छायेन सर्वा दिश: ।।३१३ ।।

नायिका के सौन्दर्य-कथन एवं उसके विरहावस्था काल में उसके हृदय-गत भावों को परखने और उनका अङ्कन करने में भी विश्वनाथ जी की काव्यप्रतिभा अत्यन्त ही पर्यवेक्षिणी होकर प्रकट हुई है और नायक चित्ररथदेव के प्रेमाभिभूत मानस की गति को भी उन्होंने बड़ी सावधानी से पहचाना है -

दरप्रकाशे कुचकुम्भमूले दूर्तं निपत्य द्रुतकर्बुराये ।
लावण्यपूरे विनिमग्नमुच्चैर्न मे कदाचिद् बहिरेति चेत: ।।१५ ।।

राजा चन्द्रकला की लावण्य-सम्पदा पर इस प्रकार मुग्ध हो गया है कि अपने हृदय को उससे विरत करना उसके लिये नितान्त दुभर हो गया । यही कारण है कि चन्द्रमा की किरणें उसके लिये अग्नि स्फुलिंग सा बरसा रही हैं -

कोमममण्डलकमिदं समाकुले तां चरुमुखललोचनां विना ।
शीतदीधितिमयूखेत्वार्न्दुचतीव मयि मुर्मुरं मुहु: ।।२ ।।

इसके अतिरिक्त तृतीय अङ्क का छन्द १८ और चतुर्थाङ्क का प्रथम छन्द भी (इस विषय का) काव्य - सौष्ठव की दृष्टि से उल्लेखनीय है ।

चन्द्रकला के सौन्दर्य का जो कथन राजा के द्वारा कवि ने किया है, वह वस्तुत: साहित्यिक पाठक के लिये हृदयावर्जक है -

आसावन्तर्स्फुरद्धिकचनवनीलाब्जयुगल-
स्तलस्फूर्जत्कम्बुर्विलसदलिसंघात उपरि ।
विना दोषासङ्गं सततपरिपूर्णाखिलकल:
कुत: प्राप्तश्चन्द्रो विगलितकलङ्क: सुमुखि ! ते ।।१।१७।।

नायिका के मुख सौन्दर्य का वर्णन कवि कितनी तन्मयता के साथ अपनी सूक्ष्म अन्वेषिणी दृष्टि से निरख कर कह रहा है - हे सुमुखि ! यह लोकोत्तर चन्द्रमा तुम्हें कहाँ से प्राप्त हो गया ? इसके मध्य में दो नील कमल (दो नेत्र) शोभा पा रहे हैं, उसके नीचे शङ्ख और उसके ऊपर भौंरों का दल मँडरा रहा है (श्यामवर्णी केशराशि) और यह चन्द्रमा रात्रि के बिना ही समस्त कलाओं से पूर्ण, ज्योतिष्मान् है । इससे भी मनोहारी वर्णन द्रष्टव्य है -

बिम्बस्यासुकृतेन दन्तवसनं मत्तेभकुम्भद्वय-
स्यापुण्येन पयोधरौ कुवलयस्याकर्मणा चक्षुषी ।
इन्दाभाग्यविपर्ययेण वदनं कुन्दावलेरेनसा-
दन्ताली कदलीतरोश्च दुरितेनोरुद्वयं निर्मितम् ।। ३।१६।।

और किस प्रकार सिंह अपनी क्षीण कटि को पराजित समझकर क्रोधाभिभूत होकर युवती के कुचकलशों के सदृश गजराज के गण्डस्थलों को विदीर्ण करता रहता है -

मध्येन मध्यं तनुमध्यया मे पराजयं नीतवतीतिरोषात् ।
कण्ठीरवोऽस्याः कुचकुम्भतुल्यं मेभकुम्भद्वितयं भिनत्ति ।।३७।।

नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार शृङ्गार-रस प्रधान है । संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का सफल चित्रण हुआ है । नायक-नायिका के हृदयों में पारस्परिक अनुराग-भावों का अङ्कुरण, प्रस्फुटनपल्लवन उचित रीति और अप्रत्याशित गति में होता है ।

दोनों ही आतुर होकर अपनी स्थिति को विस्मृत करने लगते हैं । सुधा-शीतल चन्द्र की रश्मियाँ दोनों के लिये अग्नि-कण की वर्षा करती प्रतीत होती है । राजा अशोक से निवेदन कर रहा है कि मेरे परिताप को शान्त करके अपने नाम को सार्थक करो -

'त्वमशोक शोकमपहृत्य मामकं
कुरु तावदाशु निजनाम सार्थकम् ।
अवलोकिताऽत्र भवता यदि सा
क्व नु विद्यते ननु निगद्यतां तदा ।। ३८ ।।

इसी प्रकार चन्द्रकला का कथन दृष्टव्य है - सखि क्षामिदानीमेते: । पुन: पुनरपि अङ्गेषु कलाकलं वर्षतो युष्मादृ-दुष्टजनोकराद् रक्षयितुमशरणाई प्रियसख्या - (२ अङ्क) । काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से द्वितीयाङ्क में व्याघ्र-वर्णन का भी छन्द कम महत्वपूर्ण नहीं है । वर्णन से व्याघ्र आँखों के समक्ष ही सारी क्रियाओं को सम्पादित सा करता प्रतीत होता है -

उदेस्यैकं पादं विटपिषु मुहु: स्कन्धकषणात्
कृतव्योमाभङ्ग: शकुनिकुलकोलाहल भरै: ।
परिभ्राम्यन्नुच्चै: प्रकट रसनो व्यात्तवदन:
तरक्षु क्रुद्धोऽयं क्षिपति मृगयूथानि परित: ।।२।६ ।।

व्याघ्र क्रुद्ध है । अपने एक पैर को उठाकर वृक्षों से अपना कन्धा बार-बार रगड़ रहा है, उसके गर्जन स्वर से आकाश फट सा रहा है । उसकी गर्जना से भयभीत होकर पक्षियों का समूह कोलाहल करने लगा है और मुँह फाड़कर अपने भयंकर दांतों को दिखाकर भय उत्पन्न करके मृगसमूह को भी वह तितर बितर कर रहा है ।

साहित्यिक सौष्ठव का पुष्ट प्रमाण यह भी है कि उसके `लाङ्गूलेनाभिहत्य - ( अङ्क २)` वसन्ते सैलैक .... `(अङ्क १)` सह कुसुमकदम्बै - .... ` (अङ्क २) और मध्येन तनुमध्या मे..... (अङ्क ३) साहित्य-दर्पण परिच्छेद में क्रमशः स्वभावोक्ति, दृष्टान्त, श्लेष एवं समाधि अलङ्कारों के उदाहरण में उद्धृत किये गये हैं । अस्तु ! चन्द्रकला नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों एवं साहित्यिक विशिष्ट गुणों से युक्त एक विशिष्ट कृति है । इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि आचार्य विश्वनाथ जी में साहित्य शास्त्रीय गुण सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक दोनों ही रूपों विद्यमान थे ।

मृगाङ्कलेखा -

आचार्य विश्वनाथ ने कुछ काव्यों की भी रचना की थी जिससे उनकी काव्य-प्रतिभा का और भी निखार हो गया है ।

प्रकृति-चित्रण के समय कवि के जिस पाण्डित्य का आभास मिलता है वह सर्वथा सराहनीय है । प्राकृतिक चित्रण पढ़ते समय हृदय प्रकृति के साथ मानों तादात्म्य सा स्थापित कर लेता है । वसन्तकालीन मलयानिल जनमानस के लिये कितना सुखदायी है -

राजा -

उन्निद्राम्भोजरेणूत्करदरदलनामोदभाम्यन्मिलिन्दः
स्पन्दन्माकन्दवीथीपथि पथिकदशालम्बनान्मन्दमन्दः ।
हिन्दोलाकेलिलीलाऽलसललितदृशां लासयन्कुन्तलाली
मुल्लासी शीतलाङ्गः क्लमयति मनश्चैत्रचारी समीरः ।।२८ ।।

इतना ही नहीं, प्रभातवेला के वर्णन में भी कवि की काव्य-कुशलता देखी जा सकती है। वैतालिक प्रातःकाल का वर्णन करते हुये कहता है --

फुल्लाम्भोजपरागमांसलमिलन्मत्तालिमालाकुल-
व्याहारैरियमत्र पङ्कजवनी वाचालभावं गता।
अस्तं याति कलानिधौ कुमुदिनी सङ्कोचदीनानना
जाता सम्प्रति चक्रवाकमिथुनं सन्तोषमालम्बते ।।१९६।।

भगवान् भानुमाली जिस समय अस्त हो रहे हैं उस समय का वर्णन कवि विश्वनाथ निम्न शब्दों में कर रहे हैं

मूले मूले तरूणां पिबति जलमसौ चक्रवाको वराकः
कुञ्जे कुञ्जे मृगीभिः सह हरिणयुवा पान्थगीतं शृणोति।
किंचात्यन्तं गभीरे सरसि निपतितं मत्तमातङ्गयूथं
त्यक्त्वा तापातिरेकात्सरसि विकसितां शल्लकीकाननालिम् ।।१४३।।

नायिका के सौन्दर्य कथन एवं उसके विरहावस्था काल में भी उसके उद्गत भावों को परखने में भी उसकी काव्य-प्रतिभा पर्यवेक्षणी होकर प्रकट हुई है। कवि नायक के प्रेमाभिभूत मानस की गति का सुन्दर वर्णन करते हैं --

राजा - (मदनाकुलमभिनीय)

बाणान्संहर पंचबाण किमु रे निर्मासि मर्मव्यथां
मा मा कोकिल काकलीकलकलैः कर्णास्य दाहं कुरु।
भो भो मारुत सिन्दुवारकलिकामादाय किं जृम्भसे
सा नो हन्त नवीननीरजमुखी कुत्रापि लभ्या मया ।।१३४ ।।

राजा मृगाङ्कलेखा की लावण्य सम्पदा पर इतना अधिक प्रसन्न हो गया है कि उसके वियोग में राजा का जीवित रहना मानों अत्यन्त दुष्कर हो गया है। वह नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है --

राजा- सखे किं वर्ण्यते सा। यस्याः -

नीलेन्दीवरमेव लोचनयुगं बन्धूकतुल्योऽधरः
कालिन्दीजलमारुचकुन्तललता बाहू मृणालोपमौ।
रम्भागर्भसमानमूरुयुगलं किं च बहु ब्रूमहे
सेयं कापि नवीनमीननयना सर्वोपमानिर्मिता ।।१२१।।

नायिका का इससे भी मनोहारी वर्णन कवि राजा द्वारा करा रहा है –

इन्दुं निन्दति पार्वणं मकराशी मीनाङ्गनां लोचने
धम्मिल्लो ऽपि कलिन्दशैलतनयां दन्तावली मौक्तिकम् ।
किंचान्यत्कमनीयकांचनरुचस्तस्याः स वृद्धिं गतो
लावण्याम्बुधिरन्ध्यत्यनुदिनं यूनां मनःसैकतम् ॥१/२२ ॥

नायिका को विरहावस्था में चन्द्रमा की किरणें भी उसके लिये कष्टप्रद हो गई हैं। कवि ने राजा द्वारा उसका सुन्दर अभिव्यक्तिकरण कराया है – राजा-प्रिये !

अमृतकिरणमाली कैरवानन्दकन्दो
हरमुकुटललामं मण्डनं यामिनीनाम् ।
भवति तदपि नित्यं दाहकारी जनानां
मलिनहृदयभाजामेष नूनं स्वभावः ॥४० ॥

नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार शृङ्गार प्रधान है। कवि ने इसमें नायक-नायिका के संयोग-वियोग दोनों पक्षों का वर्णन किया है। किन्तु संयोग की अपेक्षा वियोग के चित्रण में कवि को अधिक सफलता मिली है ।

प्रकृति-वर्णन, नायक-नायिका सौन्दर्य इत्यादि के अतिरिक्त कवि ने साहित्य के अन्य पक्षों का भी सुन्दर वर्णन किया है। जरावस्था का कवि ने अत्यन्तस्वाभाविक चित्रण कंचुकी के मुख से कराया है – कंचुकी, अहो जरा जर्जरीकरोति मे शरीरम् । इयं हि –

निःशङ्कं कम्पमङ्गे रचयति कुरुतेमानसे किं च मोहं
प्रत्यङ्गं सङ्गतेव स्फुरति मृदुवलीचारुभावं दधाना ।
सार्द्धं मार्गेऽपि यान्ती न च गुरुवचनं कर्णयोःश्रावयन्ती
कैयं हा हन्त दैवादजनि मम जरा क्लीबभावे प्रगल्भा ॥२/३॥

दानवेन्द्र शङ्खपाल राजा की मुग्धा नायिका मृगाङ्कलेखा का अपहरण करके उसको श्मशान ले जाता है। राजा अपनी प्रिया के वियोग में

प्राणत्याग की इच्छा से श्मशान जाता है । वहाँ पर पिशाचों की बीभत्सता देखकर राजा को अत्यन्त ग्लानि होती है । कवि ने राजा द्वारा श्मशान का जो चित्रण कराया है वह अत्यन्त स्वाभाविक रूप में वर्णित हुआ है —

आकृष्योल्बणदहनजैरमपि प्रेताङ्गमुत्कण्ठया
ज्वालाजालकरालिताद् स्तभुजः प्रीताः पिशाचाङ्गनाः ।
सँधिच्छेदनिर्यदुष्णाविकसव्यामोदमेदोभर-
स्नेहस्निग्धकपालमाकुललज्जिह्वालिहन्ति द्रुतम् ।।३.१८ ।।

गजेन्द्र वर्णन का छन्द भी काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं है । उसके समस्त क्रिया-कलाप प्रत्यक्ष दिखाई पड़ते हुये से प्रतीत होते हैं । नेपथ्य द्वारा सहसा राजवीथी में गजेन्द्र का प्रवेश सुनकर समस्त परिजन आतंकित हो जाते हैं —

गर्जन् संवर्तकालक्षुभितघनघटाचण्डगम्भीरधीरं
मार्गे पङ्कं वितन्वन् कटुकटविगलद्दानधारासहस्रैः ।
उद्यत्प्रौढासिधारास्फुरितनिकरैः पत्तिभिः प्रेक्ष्यमाणः
प्रभ्रष्टो यं करीन्द्रः प्रविशति सहसा राजवीथीं स्वयूथात् ।।१.१५।।

कलिङ्गेश्वर की राज्य-शोभा का जितना सुन्दर वर्णन किया गया है उससे भी कवि की साहित्यिक प्रतिभा का मूल्याङ्कन कर लेना अपर्याप्त न होगा । कलिङ्ग देश में आये हुये कामरूपेश्वर के पुत्र चण्डघोष कलिङ्गेश्वर की राज्यशोभा को अमरेश्वर से भी बढ़कर बताते हैं —

एकस्तत्र गजाधिपः प्रतिगृहं मत्ता गजेन्द्रावली
तत्रैकस्तुरगोऽत्र वातजवना लक्षाधिकाः सैन्धवाः ।
तत्रैको बुधभावमर्चति बुधाः सर्वेऽपि ते नागरा-
स्तत्रैका स्त्रि तिलोत्तमा मृगदृशः सन्त्यत्र सर्वोत्तमाः ।।८।।

इस प्रकार मृगाङ्कलेखा नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों एवं साहित्यिक सौष्ठव व लोक तथा प्रकृतिचित्रण की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है । यद्यपि हम

यह कह सकते हैं कि कालिदास आदि कवियों की तुलना में कवि विश्वनाथ को उनके समक्ष नहीं रखा जा सकता । फिर भी मृगाङ्कलेखा नाटिका पर कालिदास की कृतियों का प्रभाव अवश्य देखा जा सकता है ।

मृगाङ्कलेखा नाटिका के तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में राजा मयूर के कलापों को उलाहना देते हुये कह रहा है कि मेरी प्रिया के केशपाश के होते हुये मयूर अपने कलापों द्वारा विज्ञानविदों के मन को कैसे प्रसन्न कर रहा है --

राजा - < < कथं विलोभयत्ययं जनमन: कलापै: । ननु मूढ: खल्वसौ ।
मम प्रियाया: सति केशपाशेविशेष विज्ञानविदां मनांसि ।
अयं मयूरस्तरले: कलापै: प्रमोदवश्यानि कथं विदध्यात् ।।५ ।।

इसी प्रकार विक्रमोर्वशीय में राजा हंस को अपनी प्रिया की गति के लिये उलाहना देते हैं --

हंस प्रयच्छ मे कान्ता गतिरस्यास्त्वया हृता ।
विभाविते कदेशेन देयं यदभियुज्यते ।।४।१६।। विक्रमोर्वशीयम्

इसी प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तल का प्रभाव भी इस नाटिका पर दृष्टव्य है । प्रथम अङ्क के अन्त में राजा मृगाङ्कलेखा का हाथ पकड़ना चाहते हैं तभी इस वसन्तोत्सव को रोकने के लिये नेपथ्य द्वारा सिद्धयोगिनी के आगमन की सूचना दी जाती है - (इति पाणौ धर्तुमिच्छति) (नेपथ्ये) मृगाङ्कलेखे । विरम वसन्तोत्सवात् । भगवती सिद्धयोगिनी द्रष्टुमिच्छति ।
राजा- (ससम्भ्रमं मृगाङ्कलेखां विमुच्य) कथं सिद्धयोगिनी ।
मृगा०- (राजानमवलोकयन्ती प्रस्थितेव)

शाकुन्तल के तृतीय अङ्क के अन्त में जब शकुन्तला और दुष्यन्त का मिलन होता है तब उनके अनुचित व्यापार को रोकने के लिये नेपथ्य से सूचना मिलती है कि हे चक्रवाकवधू । अब तुम विदा लो, गौतमी तुमको ढूँढने के लिये आ रही है ।

नवमालिका --

नवमालिका नाटिका के नाट्य वैशिष्ट्य के साथ उसमें चित्रित लोक तथा प्रकृति और नायक-नायिका के मनोगत भावों का सफल चित्रण हुआ है। कैशिकी वृत्ति से युक्त इस नाटिका में गद्य की अपेक्षा पद्य के प्रयोग में कवि को विशेष सफलता मिली है।

कवि विश्वेश्वर ने राजा द्वारा प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर चित्रण कराया है। प्रथम अङ्क में राजा विदूषक से उपवन की रमणीयता का चित्रण करते हुये कहता है --

पृथग्जातीयानामपि सुमनसां सौरभभरा
विरावा भृङ्गाणामपि कलरवाणां कलकला:।
मिथो मिश्रीभूता युगपदुदयन्तो विषयतां
मतो तस्यां तस्या विदधाति चमत्कारमसमम् ।।१।१४।

अन्यतो विलोक्य)

मानोरोदयिकै: करैरिव समालग्नै: प्रवालोत्करै:
शैवालैरिव मंजरीसमुदयै: कर्णावर्तसोचितै:।
कामोज्जीवनमन्त्रगतिर्भिरिव स्फीताभिरुद्गीतिभि:
भृङ्गाणां युतिरीश बन्यविषया लभ्याशरीष द्रुमै: ।।१।१५।।

कवि के प्राकृतिक चित्रण को पढ़ते समय हृदय प्रकृति से तादात्म्य सा स्थापित करने लगता है। वसन्तकालीन मलयानिल किस भावुक के हृदय को सुखकर नहीं प्रतीत होगा-राजा - < ^ ^ ।

आमोदैरतिमेदुरैरय पृथग्रूपै: प्रसूनैर्मिथ:
तरुत्पुष्पमरन्दबिन्दुशिशिरैर्मन्दानिलैर्मारुते:।
आरब्धै: पिकसुन्दरीभिरभितोदीनालुकोलाहलै-
राराम:करणाय कस्य न भवेदेष प्रियं भावुक: ।। १।१६।।

इसीप्रकार प्रथम अङ्क में ही राजा पवन के स्पर्श द्वारा एक असीम सुख की अनुभूति करते हुये कहता है --

एते ते कामकेलावनिकुरवकान्दोलना दाक्षिणात्या
आमुन्दन्त: सुवेलाचलशिखरसमुन्मीलदेला वनान्तान् ।
आलम्बन्तोऽतिवेलाकुलमृगदृशां कामकेलावभीष्टा
मायाता हन्त वेलापरिसरविहितोत्लोलखेला: समीरा: ।।१।१८।।

अपि च --

कर्णाटीकर्णपूरोन्मिलनपरिमला मालवीभालवीथी-
सिन्दूरं दूरयन्तो विरचितनतय: कुन्तलीकुन्तलानाम् ।
संवृत्तानां ललाटाङ्गणगणजलकर्णीकावामलाटाङ्गनानां
निर्बन्धा गन्धसाराचलकृतजनयो गन्धवाहा वहन्ति ।।१।१९ ।।

नायिका के सौन्दर्य-वर्णन में भी कवि की काव्य-प्रतिभा प्रकट हुई है । नायक के प्रेमाभिभूत मानस की गति को भी कवि ने बड़ी कुशलता से पहचाना है । देवी चन्द्रलेखा के नासिका रत्न में नवमालिका का प्रतिबिम्ब देखकर राजा कहता है --

देव्या मया परिजने परिखोयमाने
नेयं न तावदियमन्यतमापि काचित् ।
एतद्विभूषणमणिप्रतिबिम्बिताङ्गी
दिव्याङ्गना रतिरिव स्फुरतीति चित्रम् ।।१।२९ ।।

राजा विजयसेन नवमालिका की लावण्य सम्पदा पर इतना अधिक मोहित हो गया है कि वह अपने हृदय को उससे अलग रखने में असमर्थ है --

विना बिम्बं तावत्प्रभवदनुबिम्बं न घटते
न चारोप: शक्य: प्रथममगृहीते विषयिणि ।
मनोजन्यं नेदं गतिमनुविवधे नयनयो:
परिच्छेत्तुं नैव प्रभवति मन: किंचिदपि (मे) ।।१।३०।।

इससे भी मनोहारी वर्णन दृष्टव्य है --

राजा -- वयस्यासावस्या यदपि सहते सङ्गमयितुं
मया सार्द्धं नव प्रचलति चकोरीदृशममुम् ।

प्रियाया: लावण्यातिशयसहकारेण सहसा
महीयान् पुष्पेषु: प्रभवति नहीयानपिकृत: ।।३।१३।।

यह नाटिका नाट्य शास्त्रीय लक्षणों के अनुसार श्रृङ्गार रस प्रधान है । वियोग की अपेक्षा संयोग का चित्रण अधिक सुन्दर बन पड़ा है ।

इसी प्रकार देवराज के अवन्ति देश के वैभव का जितना मनोरम चित्रण किया है उससे भी कवि की साहित्यिक प्रतिभा का परिचय मिलता है -

सुमति: - प्रवेशप्रस्तावाभिमतियुजत उज्जनपदो-
पहारप्राचुर्यं प्रतिपदकृतं पश्रमपदा-
मनुद्विग्नैर्दित्लज्जलधिजलवत्सङ्कलतया
प्रयासेनापीर्यं न सुकरगतिर्यारपदवी ।।४।१२ ।।

कवि ने सुन्दर उक्तियों के प्रयोग द्वारा भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है । द्वितीय अङ्क में विदूषक जब कहता है कि यह ज्ञात नहीं है कि नवमालिका द्वारा राजा को देखा गया है या नहीं, तब राजा का प्रत्युत्तर द्रष्टव्य है -

विदूषक : -न ज्ञायते प्रियवयस्यो पि तया लोकितो न वेति ।

राजा - न खलु परमात्मवृत्यो गुणा: परप्रत्यक्षा भवितुमर्हन्ति ।

इस प्रकार नवमालिका नाटिका में नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के साथ साथ लोक तथा प्रकृति एवं साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कृति है किन्तु अन्य नाटिकाओं की तुलना में इस कृति को विशेष सफल नहीं कहा जा सकता ।

मलयजाकल्याणम् -

इस नाटिका में प्राकृतिक चित्रण पढ़ते समय हृदय मानों प्रकृति से तादात्म्य सा स्थापित करने लगता है । तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में राजा देवराज प्रमदवन की शोभा वर्णन करते हुये कहते हैं -

देवराज - सखे, पश्य भूमिष्ठलोभनीयता प्रमदवनस्य ।

तथाहि- विलोकयन्ते द्विजा: पतगमुखरे वृक्षशिखरे
क्वचित्संध्यारागप्रसरदरुणा: सूर्यकिरणा: ।
इतो निद्रास्यन्त्या: प्रमदवनलक्ष्म्या: सलीलं
मुहुर्जृम्भारम्भे निवृतरसना संशयकरा: ।।१।।

प्रकृति-चित्रण के ही प्रसङ्ग में कमलिनी की उपयोगयोग्यता का वर्णन भी प्रशंसनीय है —

प्रच्छायद्रुमकोटरान्तरगता: स्वैराङ्कतान्यासिते-
नीवारै:सुक्तिा सहैव शिशुभिर्विबलात्वया पोषितै: ।
नोत्तिष्ठन्ति न चोत्पतन्ति विहग: प्रात: पिपासाकुला:
मध्याह्नेनिजयक्षणोषणामयात्पश्यन्त्यमुं केवलम् ।।४०।।

नायिका की विरहावस्था में उसके हृदयगत भावों को परखने एवं उसके सौन्दर्य-वर्णन में कवि की काव्य-प्रतिमा मुखरित हो उठी है । तृतीय अङ्क में जब राजा गोपनीय ढंग से मिलता है उस समय उसके सौन्दर्य का मनोहारी वर्णन कवि ने राजा के मुख से कराया है —

लावण्यामृतमथेन हाराहिनिबद्ध कुचगिरीन्द्रस्य ।
तारुण्याब्धौ धृत्यै कूर्मिमिवालक्ष्यसिन्धु दधाति पद्ममुखी ।।१२ ।।

अपि च —

नासावरंश - तरुपरि यत्क्रीडति नयनखंजयुगम् ।
तत एव चम्पकाङ्गया: तद..... योमङ्गता(?) निधिर्गूढ: ।।१३ ।।

राजा उसकी लावण्य सम्पदा पर इतना अधिक मोहित हो गया है कि वह उसके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये कहता है —

लावण्यं विधिरैन्दवांशुनिचयस्वच्छाम्भसाशोधयन्
यत्तत्राग्रिमधूसरं समभवत्तेनोर्वशीं निर्ममे ।
यत्वस्योदरवर्ति निर्मलतमं लावण्यमेतेन तां
चक्रे चन्द्रमुखीं कथ न्वितरथा सा निस्तुलास्याद्भुति ।।१७ ।।

राजा नायिका की लावण्य-सम्पदा पर मुग्ध होकर उसके विरह में अत्यन्त व्याकुल हो उठा है । कवि ने राजा के द्वारा स्वत: उसकी विरह दशा का जो वर्णन कराया है वह सर्वथा दयनीय है -

तादृक्केरलिका प्रसादसुरभि -स्वच्छासनालोकनात्
आरभ्य प्रमदवनान्तरजुषोऽदित्रा: क्षणा एव मे ।
एते ते दर हासनीरज-परीहास-स्फुरल्लोचने
निस्तीर्णा: खलु कल्पकोटय इव त्वदास्यहेतोर्मया ।।१६ ।।

यह नाटिका नाट्यशास्त्रीय लक्षणों के अनुसार शृङ्गार रस प्रधान है। इसमें संयोग-वियोग नामक शृंगार के दोनों पक्षों का मनोहारी चित्रण हुआ है।

नाटिका के द्वितीय अङ्क में कवि ने वीणावादन का जो प्रसंग उपस्थित किया है वह कवि के सङ्गीत प्रेमी होने का प्रतीक है।

इसी प्रकार देवराज के गुणों की प्रशंसा का जितना मनोरम चित्रण किया गया है उससे भी कवि की साहित्यिक प्रतिभा का मूल्याङ्कन किया जा सकता है —

साधारण्यदृशावरोधविषये दृष्ट्वा त्वयोन्याविर्क
जामातु: कथयन्तिकेचन न वास्माकं तदर्हं वच: ।
येदव्येन नवीयसी रसमपि प्राप्तुं लसत्कौतुकात्
पुण्यैर्नी स्वरसम्भृतैर्ममहि वत्साजनिष्ट स्वयम् ।।१२६ ।।

कवि ने सुन्दर उक्तियों के प्रयोग द्वारा भी अपनी साहित्यिक-प्रतिभा का परिचय दिया है —

महादेवी - < < (प्रकाशम्) यो यो विरहितानां दु:खकर: भवति सस सङ्गतानां सुखदायी भवति ।

इसके अतिरिक्त रसोद्बोध को और अधिक प्रेषणीय बनाने के लिये शब्द एवं भाव-सौन्दर्य के साथ लयात्मकता का संयोजन पद्यों की अपनी विशेषता है।

इस प्रकार मलयजा नाटिका नाट्य,शास्त्रीय लक्षणों एवं साहित्यिक सौष्ठव व लोक तथा प्राकृतिक चित्रण की दृष्टि से महत्वपूर्ण कृति है किन्तु कालिदास आदि कवियों की तुलना में इस नाटिका कार को विशेष सफल नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार नाटिकाओं में चित्रित लोक तथा प्रकृति एवं साहित्यिक-सौष्ठव एक ही जैसा है। सभी नाटिकाओं के प्रकृति-चित्रण में वसन्तकालीन मलयानिल का चित्रण अवश्य मिलता है। इसी प्रकार राजा द्वारा नायिका का

सौन्दर्य-वर्णन, सपत्नीडाह, की भावना, युद्ध-क्षेत्र की भयङ्करता आदि के चित्रण में भी कोई नवीनता नहीं है। केवल अन्तर यह है कि किसी नाटिका का प्रकृति-चित्रण अधिक सुन्दर बन पड़ा है जैसे चन्द्रकला नाटिका और किसी नाटिका में उतना सुन्दर नहीं है जैसे-विद्धशालभंजिका। किन्तु फिर भी नाटिकाकारों ने अपनी रचनाओं में लोक तथा प्रकृति का चित्रण अवश्य किया है।

अध्याय-७

रस-विवेचन

आदि-काल से ही मानव का लक्ष्य आनन्द की उपलब्धि रहा है। वह आनन्द कभी स्थूल रूप में उद्देश्य बनता है और कभी सूक्ष्म रूप में। जिस प्रकार चिन्तन और विचार का जगत् दर्शन का जगत् है उसी प्रकार ललित कलाओं का जगत् मूर्त तथा अमूर्त दोनों ही रूपों में दर्शन का जगत् है और अलौकिक आनन्द की अनुभूति कराता है। आनन्दमयी सत्ता की अनुभूति ही रस है। कला के क्षेत्र में भाव की आनन्दमयी अनुभूति का नाम रस है। श्रुति कहती है - 'रसोह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।' रस की अनुभूति अभिव्यक्ति मानव का सहज धर्म है। समस्त ललित कलाओं में यह रस की प्रवृत्ति विद्यमान है।

संस्कृत नाटिकाएं उपरूपक होते हुये भी पाठ्य हैं और रस तथा भाव की प्रधानता शास्त्र-विपरीत ढङ्ग से भी उनमें देखी जाती हैं। संस्कृत नाटिकाएं शृङ्गार रस प्रधान होती हैं और इसके चारों अङ्कों में कैशिकी वृत्ति व्यापक होती है।[1] दशरूपककार ने शृङ्गार रस की परिभाषा देते हुये लिखा है[2] -

---

१. शृङ्गारो ह्ङगी सलक्षणः। दशरूपक, तृ०प्र०।
   कैशिक्यङ्गैश्चतुर्भिश्च ।। ११४८ ।। दशरू०,तृ०प्र०।

२. रम्यदेशकलाकालवेषभोगादिसेवनैः ।।
   प्रमोदात्मा रतिः सैव यूनोरन्योन्यरक्तयोः।
   प्रहृष्यमाणा शृङ्गारो मधुराङ्गविचेष्टितैः ।। ११४८।। [illegible]

रत्नावली -

संस्कृत नाटिकाओं में नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तानुसार धीरललित नायक की प्रणय-लीलाओं का चित्रण हुआ है अतएव शृङ्गार-रस की प्रधानता होती है। रत्नावली में उदयन की प्रणय-लीलाओं का चित्रण हुआ है और शृङ्गार रस की प्रधानता है। प्रथम अङ्क में कामार्चन और वसन्तोत्सव के वर्णन द्वारा शृङ्गार रस के उपयुक्त वातावरण की सृष्टि की गई है और उदयन तथा वासवदत्ता के प्रेम का चित्रण है। तदनन्तर उदयन और रत्नावली के प्रणय-व्यापार पर नाटिका आधारित है। शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का सफल चित्रण हुआ है। हर्ष ने मान का अङ्कन करने का भी सफल प्रयास किया है।

प्रेम का उदय गुण-श्रवण, प्रत्यक्ष-दर्शन, चित्र-दर्शन आदि के द्वारा होता है। सागरिका सर्वप्रथम कामार्चन के समय वासवदत्ता के साथ लताकुंज की ओट से राजा उदयन के सौन्दर्य को देखकर उनको साक्षात् कामदेव समझ बैठती है किन्तु वैतालिक द्वारा उदयन का परिचय प्राप्त होने पर उदयन के प्रति आकर्षित हो उठती है। उदयन के हृदय में चित्र दर्शन से प्रेम उत्पन्न होता है। सागरिका द्वारा अङ्कित अपने चित्र के साथ सुसङ्गता द्वारा चित्रित सागरिका के चित्र को देखकर और सारिका के मुख से सागरिका की प्रेम दशा सुनकर राजा के हृदय में प्रेम की ज्वाला प्रज्वलित हो उठती है। वह चित्रस्थ सागरिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये अपनी रसिकता का परिचय देता है -

कृच्छ्रादूरुयुगं व्यतीत्य सुचिरं भ्रान्त्वा नितम्बस्थले
मध्येऽस्यास्त्रिवलीतरंगविषये निःस्पन्दतामागता।
मद्दृष्टिस्तृषितेव सम्प्रति शनैरारुह्य तुङ्गौ स्तनौ
साकाङ्क्षं मुहुरीक्षते जललवप्रस्यन्दिनी लोचने ।।२-११।।

चित्र के इस सौन्दर्य ने तथा उस चित्र में चित्रित सागरिका के आर्द्र नेत्रों ने तथा राजा के हृदय में और भी प्रेम का बीज बो दिया। वह उसके मुख-सौन्दर्य

के समक्ष चन्द्रमा को भी व्यर्थ समझता था ।

हर्ष ने राजा द्वारा वासवदत्ता के सौन्दर्य का मनोरम चित्रण किया है । प्राकृतिक-सौन्दर्य के सामंजस्य से उसकी सुन्दरता और भी बढ़ गई है । राजा वासवदत्ता के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये कहता है --

देवि त्वन्मुखपङ्कजेन शशिनः शोभातिरस्कारिणा
पश्याब्जानि विनिर्जितानि सहसा गच्छन्ति विच्छायताम् ।
श्रुत्वा त्वत्परिवारवारवनितागीतानि भृङ्गाङ्गना
लीयन्ते कुसुमान्तरेषु शनकैः संजातलज्जा इव ।। १-२५ ।।

शृङ्गार-रस में हाव-वर्णन का विशेष महत्व रहता है । हाव केवल उद्दीपन का ही कार्य नहीं करते अपितु नायिका के आन्तरिक-भावों की व्यंजना भी करते हैं । नायक के लिये परकीया नायिका के हावों का विशेष महत्व रहता है । यद्यपि रत्नावली में अभिसरण के प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा हावों का अभिनय नहीं कराया गया है क्योंकि नाट्य-शास्त्रीय नियमों के प्रतिकूल है फिर भी राजा के मुख से उसका वर्णन करा दिया है । उदयन अपनी विलासिता का परिचय देते हुये सागरिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हैं --

'प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता
घटयति घनं कण्ठाश्लेषे रसान्न पयोधरौ ।
वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो
रमयतितरां सङ्केतस्था तथापि हि कामिनी ।।३-६ ।।

परकीया की ये चेष्टायें हाव के अन्तर्गत आयेंगी । हर्ष को नारी मनोविज्ञान का सूक्ष्म ज्ञान था । जब प्रेयसी के प्रेम का उद्घाटन हो जाता है और वह प्रियतम के समान स्तर की न होने पर मिलन में असम्भवता देखती है, उस समय लज्जा और ग्लानि के कारण उसकी जो दशा होती है, कवि ने उसका सूक्ष्म चित्रण किया है । सागरिका के प्रेम के विषय में जब वासवदत्ता को ज्ञान हो जाता है तब वह उसकी कोपभाजना बन जाती है, उस समय उदयन उसकी होने वाली दशा का अनुभव करते हुये कहता है --

प्रिया सर्वस्यासौ हरति विदितास्मीति वदनं
द्वयोर्दृष्ट्वालापं कलयति कथामात्मविषयाम् ।
सखीषु स्मेरासु प्रकटयति वैलक्ष्यमधिकम्
प्रिया प्रायेणास्ते हृदयनिहितातङ्कविधुरा ।।३-४ ।।

प्रेम की असफलता, अपनी पराधीन अवस्था ,हीनता आदि के अनुभव से जो ग्लानि, भय आदि भावनायें उत्पन्न होती हैं, उनकी व्यंजना कवि ने एक साथ की है ।

रत्नावली में यद्यपि वियोग का प्राधान्य है किन्तु संयोग शृङ्गार का भी अभाव नहीं है । प्रथम अङ्क में काम-पूजन के समय उदयन और वासवदत्ता की प्रेममयी भावनायें संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत आयेंगी । वहाँ उदयन आश्रय, वासवदत्ता आलम्बन, वासवदत्ता का अनिन्द्य सौन्दर्य, मकरोद्यान, वसन्तकाल एवं वासवदत्ता की कामपूजन विधि, उद्दीपन तथा उदयन द्वारा सौन्दर्य-वर्णन अनुभावतथा हर्ष आदि संचारी भाव हैं । इस प्रकार संयोग-शृङ्गार की पुष्टि हो जाती है । संयोग का दूसरा अवसर सुसङ्गता द्वारा सागरिका को उदयन से मिलाने के समय आता है । वहाँ प्रेम का उदय दोनों के हृदय में हुआ है । अतएव एक के अनुभाव दूसरे के लिये उद्दीपन की कार्य पद्धति अपनाते हैं । उदयन द्वारा कर-स्पर्श करते ही सागरिका के अङ्ग से स्वेत द्रवित होने लगता है । यह स्वेद सागरिका का सात्विक भाव है और उदयन के लिये यह उद्दीपन भाव है । दोनों के पारस्परिक प्रेम की एक साथ व्यंजना कवि ने बड़े कौशल के साथ की है -

श्रीरेषा पाणिरप्यस्याः पारिजातस्य पल्लवः ।
कुतो न्यथा स्रवत्येष स्वेदच्छद्मामृतद्रवः ।।२-१८ ।।

प्रियतम के मिलन से सङ्कट की घड़ियां भी आनन्द की सृष्टि करती हैं । परकीया प्रेम में सङ्कट-काल प्रेमियों के लिये वरदान रूप में होता है क्योंकि इसी बहाने संयोग का अवसर प्राप्त होता है । अन्तःपुर में अग्नि लग जाने पर उदयन शृङ्खलाबद्ध सागरिका को बचाने के लिये अग्नि में ही कूद पड़ता है तथा

सागरिका के समीप पहुँचकर स्पर्श का अनुभव करते हुये कहता है - '(कण्ठे गृहीत्वा निमीलिताक्षः स्पर्शसुखं नाटयन्) अहो क्षणमेवापगतोऽयं सन्तापः । प्रिये समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।'

व्यक्तं लग्नोऽपि भवतीं न दहत्येव पावकः ।

यतः संतापमेवायं स्पर्शस्ते हरति प्रिये ।। ४।१८ ।।

इस प्रकार कवि ने संयोग शृंगार का सफलता पूर्वक चित्रण किया है ।

विप्रलम्भ शृङ्गार में सागरिका और उदयन का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा । वियोग की अग्नि से प्रज्वलित होती हुई सागरिका के प्रलाप का यह वर्णन उसके हृदय की वेदना को सूचित करता है - 'हद्धी अ अदिनिसंस जम्मदो पहुदि सहसंवहि्ढदं इमं जणं परिच्चइअ खणमेत्त दंसण परिचिदं जणं अणुगच्छन्तो ण लज्जसि । अह वा को तुह दोसो । अणङ्गसर पडण भीदेण दुए एव्वं अज्ज व्यवसिदं । भोदु । अणंगं दाव उवालहिस्सं भअवं कुसुमाउह विजिअ असअल सुरासुरो भविअ इत्थिआजणं पहरन्तो कधं ण लज्जसि । अहवा अणङ्गोऽसि । सव्वहा मम मन्दभाइणीए मरणं एव्व हदेण दुण्णिमित्तेण उवत्थिदं ।' [illegible] वियोग के समय शीतोपचार और भी दाहक प्रतीत होते हैं । सुसंगता द्वारा आनीत मृणालवलय और नलिनीपत्र को वह तुरन्त हटा देती है ।

उदयन की विरहावस्था का चित्रण भी हर्ष ने कुशलतापूर्वक किया है । उसकी दशा भी सागरिका के वियोग में अत्यन्त क्षीण हो जाती है । कामदेव के बाणों से आहत होकर भी वह उसे सम्बोधित करते हुये कहता है --

बाणाः पंच मनोभवस्य नियतास्तेषामसंख्यो जनः

प्रायोऽस्मद्विध एव लक्ष्य इति यल्लोके प्रसिद्धिंगतम् ।

दृष्टं तत्वयि विप्रतीपमधुना यस्मादसंख्यैरयं

विद्धः कामिजनः शरैरशरणो नीतस्त्वया पंचताम् ।।३।२।।

वियोगावस्था में प्रिय से सम्बन्धित व्यक्ति या वस्तु और भी सुन्दर लगती है । उदयन विदूषक से सागरिका की रत्नमाला प्राप्त करने पर उससे सान्त्वना प्राप्त करते हुये कहता है --

बाणाः पंच मनोभवस्य नियतास्तेषामसंख्यो जनः
प्रायोऽस्मद्विध एव लक्ष्यइति यल्लोके प्रसिद्धिंगतम् ।
दृष्टं तत्वयि विप्रतीपमधुना यस्मादसंख्यैरयं
विद्धः कामिजनः शैररशरणो नीतस्त्वया पंचताम् ।।३।३

वियोगावस्था में प्रिय से सम्बन्धित व्यक्ति या वस्तु भी और सुन्दर लगती है । उदयन विदूषक से सागरिका की रत्नमाला प्राप्त करने पर उससे सान्त्वना प्राप्त करते हुये कहता है -

कण्ठाश्लेषं समासाद्य तस्याः प्रभ्रष्टयानया ।
तुल्यावस्था सखीवेयं तनुराश्वास्यते मम ।।४।४ ।।

उदयन रत्नमाला का स्पर्श करते हुये यह सोचता है कि वह भी उसी के समान प्रियतमा सागरिका से वियुक्ता है अतः उसे यह सन्तोष होता है कि अन्य भी उसी के समान विरह-वेदना से पीड़ित है । इस प्रकार शृङ्गार के दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है ।

कवि हर्ष ने विदूषक की योजना द्वारा हास्य रस की भी सृष्टि की है । उसकी मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ और चेष्टायें हास्य का कारण होती हैं । वह बिना सोचे समझे नृत्य करने लगता है । इसी नृत्य के कारण चित्रपट गिर जाता है जिससे हास्य की सृष्टि होती है । मदनमहोत्सव के समय वह चेटियों के साथ नृत्य करते हुये उनके गान को चर्चरी बताता है और तब वे उसे द्विपदी खंड कहती हैं तब वह प्रसन्न होकर कहता है -'कि एदिणा खण्डेण मोअआ करीअन्दि ।' उसकी इस उक्ति से हास्य की सृष्टि होती है किन्तु इस नाटिका का हास्य उदात्त कोटि का नहीं है ।

यद्यपि रत्नावली नाटिका केवल अन्तःपुर की प्रणय लीला के चित्रण हेतु ही लिखी गई है किन्तु कवि हर्ष ने अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन हेतु वीर आदि रसों के संचार का भी प्रयास किया है । रुमण्वान् द्वारा कोशल विजय की घटना का

वर्णन कथानक के विकास की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है फिर भी वीर रस की सृष्टि के लिये इसे महत्व दिया गया है । कवि ने ओजपूर्ण शैली में युद्ध का वर्णन किया है -

अस्त्रव्यस्तशिरस्त्र शस्त्र कषणै कृतोन्नमाहुङ्गे क्षणं
~~व्युताव्यजिमुखे स कोसलपति भंग्ने प्रधाने बले~~
व्यूढासृक्सरिति स्वनत्प्रहरणे वर्मोर्मिमहन्तिहनि ।
आहूयाजिमुखे स कोसलपतिर्भग्ने प्रधाने बले
एकेनैव रुमण्वता शरशतैर्मत्त द्विपस्थो हतः ।।४।६ ।।

सहसा राजकीय बन्दर के छूट जाने और अन्त:पुर में अग्नि लग जाने की घटना का वर्णन करके कवि ने भयानक रस का संचार किया है -

कण्ठे कृत्तावशेषं कनकमयमधः शृङ्खलादामकर्ष-
न्क्रान्त्वा द्वाराणि हेलाचलचरणरणत्किङ्किणीचक्रवाल: ।
दत्तातङ्कोऽङ्गनानामनुसृतसरणिः संभ्रमादश्वपालैः
प्रभ्रष्टो यं प्लवङ्गः प्रविशति नृपतेर्मन्दिरं मन्दुरायाः ।।२।२

हर्म्याणां हेमशृङ्गश्रियमिव निचयैरर्चिषामादधानः
सान्द्रोद्यानद्रुमाग्रग्लपनपिशुनितात्यन्ततीव्राभितापः ।
कुर्वन् क्रीडामहीध्रं सजलजलधरश्यामलं धूमपातै-
रेष प्लोषार्तयोषिज्जन इह सहसैवोत्थितोऽन्त:पुरेऽग्निः ।।४-१४ ।।

कवि ने अग्नि की घटना द्वारा वासवदत्ता के शोक की भी व्यंजना की है । वसुभूति के द्वारा रत्नावली के समुद्र में डूबने का समाचार पाकर वासवदत्ता का रो पड़ना भी करुणा रस का व्यंजक है । ऐन्द्रजालिक के चमत्कारों ने अद्भुत रस की सृष्टि की है । इस प्रकार शृङ्गार रस का प्राधान्य होने पर भी अन्य रसों की व्यंजना करने में कवि का प्रयत्न श्लाघनीय है ।

प्रियदर्शिका --

नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार प्रियदर्शिका नाटिका में राजा उदयन की प्रणय लीलाओं का वर्णन हुआ है । नाटिका का अङ्गीरस शृङ्गार है । प्रस्तुत नाटिका राजा उदयन और प्रियदर्शिका के प्रणय पर आधारित है । शृङ्गार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण हुआ है ।

गुण-श्रवण, प्रत्यक्ष-दर्शन, चित्र-दर्शन आदि के द्वारा नायक-नायिका के हृदय में प्रणय का बीज उत्पन्न होता है । प्रथम अङ्क में वत्सराज का सेनापति विजयसेन विन्ध्यकेतु पर आक्रमण करके दृढ़वर्मा की पुत्री आरण्यिका को विन्ध्यकेतु की पुत्री समझकर उपहार रूप में वत्सराज के अन्तःपुर में रानी वासवदत्ता के संरक्षण में दासी रूप में रख देता है । अन्तःपुर में रहने के कारण राजा के हृदय में उसके प्रति आसक्ति हो जाती है । राजा विदूषक से अपनी आसक्ति के विषय में कहते हैं -- राजा -

क्षामां मङ्गलमात्रमण्डनभृतं मन्दोद्यमालापिनी-
मापाण्डुच्छविना मुखेन विजितप्रातस्त्वनेन्दुद्युतिम् ।
सोत्कण्ठां नियमोपवासविधिना चेतो ममोत्कण्ठते
तां दृष्टुं प्रथमानुरागजनितावस्थामिवार्यप्रियाम् ।।२-१ ।।

द्वितीय अङ्क में चेटी इन्दीवरिका के साथ आरण्यिका उपवन में जाती है । उस समय राजा उसके प्रत्यक्ष दर्शन से आकर्षित होकर प्रेमाभिभूत हो उठते हैं । वे अपने मित्र विदूषक से उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहते हैं --

पातालाद्भुवनावलोकनपरा किं नागकन्योत्थिता
मिथ्या तत्खलु दृष्टमेव हि मया तस्मिन्कुतोऽस्तीदृशी ।
मूर्ता स्यादिह कौमुदी न घटते तस्या दिवा दर्शनं
केयं हस्ततलस्थितेन कमलेनालोक्यते श्रीरिव ।।२-६ ।।

नायिका के इस सौन्दर्य ने उदयन के हृदय में इस प्रकार प्रेम का अङ्कुर जमा दिया कि उदयन उसके मुख सौन्दर्य के समक्ष कमलों को भी व्यर्थ मानने लगता है --

अच्छिन्नामृतबिन्दुवृष्टिसदृशीं प्रीतिं ददत्या दृशा
याताया विगलत्पयोधरपटाद्दृष्टव्यतां कामपि ।
अस्याश्चन्द्रमसस्तनोति करस्पर्शास्पदत्वं गता
नैते यन्मुकुलीभवन्ति सहसा पद्मास्तदेवाद्भुतम् ।। २-७ ।।

हर्ष नारी-मनोविज्ञान के सूक्ष्मदर्शी थे । जब प्रेयसी के प्रेम का उद्घाटन हो जाता है और वह प्रियतम के स्तर को न होने पर मिलन में असम्भवता देखती है उस समय वह लज्जा का अनुभव करती है । द्वितीय अङ्क में आरण्यिका राजा वत्सराज के असीम सौन्दर्य को देखकर हर्ष और लज्जा दोनों का एक साथ अनुभव करती है -

आर०- (राजानमवलोक्य सस्पृहं सलज्जं चात्मगतम्) अयं खलु महाराजो यस्याहं तातेन दत्ता । स्थाने खलु तातस्य पक्षपातः ।

शृङ्गार रस में हाव-वर्णन का विशेष महत्व होता है । हाव न केवल उद्दीपन का कार्य करते हैं अपितु नायिका की आन्तरिक भावनाओं के भी व्यंजक होते हैं । परकीया एवं अभिसारिका नायिका के हावों का नायक के लिये बहुत बड़ा मूल्य होता है । यद्यपि नाटिका में अभिसरण के प्रत्यक्ष दृश्य को उपस्थित करके हावों का अभिनय नहीं कराया जा सकता क्योंकि यह रङ्गमंचीय नियमों की दृष्टि से अनुचित था फिर भी उदयन के मुख से उसकी विलासप्रियता का परिचय इन शब्दों द्वारा दिया गया है -

अयि विसृज विषादं भीरु भृङ्गास्तवैते
परिमलरसलुब्धा वक्त्रपद्मे पतन्ति ।
विकिरसि यदि भूयस्त्राससोलायताक्षी
कुवलयवनलक्ष्मीं तत्कुलस्त्वां त्यजन्ति ।।८ ।।

प्रियदर्शिका के संयोग शृङ्गार का भी सुन्दर वर्णन किया गया है । संयोग की पुष्टि उस समय हुई है जब विदूषक द्वारा राजा को आरण्यका से मिलने का समय आता है । द्वितीय अङ्क में जब प्रियदर्शिका पुष्प-चयन के हेतु

उपवन में आती है। उस समय दोनों के हृदय में प्रेम का उदय हुआ। अतएव एक के अनुभाव दूसरे के लिये उद्दीपन का कार्य करते हैं। उदयन आश्रय, आरण्यका आलम्बन, आरण्यका का अनिन्द्य सौन्दर्य उद्दीपन तथा उदयन द्वारा सौन्दर्य वर्णन अनुभाव तथा हर्ष आदि संचारी भाव हैं।

संकट की घड़ियाँ प्रियतम के मिलन के बाद परकीया प्रेम में और भी सुखकर प्रतीत होती हैं। चतुर्थ अङ्क में विरहिणी आरण्यका विष खा लेती है। वासवदत्ता राजा से उसकी सुरक्षा की प्रार्थना करती है। राजा द्वारा आरण्यका की सुरक्षा किये जाने पर आरण्यका और राजा दोनों सुख की अनुभूति करते हैं। इस प्रकार संयोग शृङ्गार का परिपाक कवि ने सफलतापूर्वक किया है।

इस प्रकार नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार है। वह पूर्वानुराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है। रति-भाव का आश्रय उदयन है। आरण्यका आलम्बन विभाव है। उपवन की शोभा आदि सुन्दर दृश्य उद्दीपन हैं। कई व्यभिचारी भाव भी हैं। इस प्रकार समस्त अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की चर्वणा हुई है।

विदूषक की योजना द्वारा कवि ने कहीं कहीं हास्य-रस का संचार करने का भी प्रयास किया है। उसकी मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ हास्य-रस का कारण होती हैं। द्वितीय अङ्क में राजा का नायिका से मिलन होने पर 'अयि विसृज विषादं ....' इत्यादि शब्दों के द्वारा अपने प्रेम को प्रकट करता है और फिर वियोग हो जाने पर जब वह विदूषक से पुनः नायिका के मिलन का उपाय पूछता है तो उस समय विदूषक उनका परिहास करते हुये कहता है -

विदूषक :- तदिदानीं विस्मृतम्। यथा तूष्णीको भूत्वोपसर्पेति मया भणितम्। अतिसंकटे यद्भवान्प्रविश्यालीकपाण्डित्यदुर्विदग्धतया 'अयि विसृज विषादम्' इत्येतै रन्यैश्च कटुवचनैर्निर्भर्त्स्यं साम्प्रतं किं रोदिषि। पुनरप्य पायं पृच्छसि।

चतुर्थ अङ्क में राजा द्वारा प्रियदर्शिका की मुक्ति का उपाय पूछे जाने पर जब विदूषक राजा को उपाय बताता है तब राजा उसकी असम्भवता सिद्ध करता है। उस समय विदूषक उनका परिहास करते हुये कहता है - विदूषकः:-

'किमत्राश्चर्यम्। यतस्तावत्कुब्जवामनवृद्धकञ्चुकिवर्जितो मनुष्यो परो नास्ति तत्र।'

राजा - (सावज्ञम्) मूर्ख किमसम्बद्धं प्रलपसि। देव्याः प्रसादं मुक्त्वा नान्यस्तस्या मोक्षणाभ्युपायः। तत्कथय कथं देवीं प्रसादयामि।' विदूषकः - भोः मासोपवासं कृत्वा जीवितं धारय। एवं देवी चण्डीप्रसन्नस्यति।

राजा --(विहस्य) अलं परिहासेन।'

यद्यपि केवल अन्तःपुर की प्रणय लीलाओं का वर्णन करना ही नाटिका का प्रमुख उद्देश्य है। फिर भी कवि ने अपनी प्रतिभा द्वारा वीर आदि रसों का संचार करने का भी प्रयास किया है। चतुर्थ अङ्क में कंचुकी प्रतिपक्षियों के पराजय की सूचना देता है जिससे राजा एवं विजयसेन तथा सेनानुचरों आदि की वीरता का परिचय मिलता है -

कंचुकी --विजयसेन अवितथमेतत्। पश्य।

सुखनिर्भरा न्यथापि स्वामिनमवलोक्य भवति भृत्यजनः।

किं पुनररिबलविघटनानिव्यूढप्रभुनियोगभरः:॥ ६॥

< ^

कंचुकी - देव दिष्ट्या वर्धसे।

हत्वा कलिङ्गहतकं हृयस्तमत्स्वामी निवेशितो

देवस्य समादेशो निर्व्यूढो विजयसेनेन॥५।७॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि शृङ्गार रस की प्रधानता होने पर भी कवि ने हास्य, वीर आदि रसों की निष्पत्ति का भी प्रयास किया है किन्तु इस विवेचन की दृष्टि से नाटिका को अधिक महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता।

विद्धशालभंजिका -

नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार विद्धशालभंजिका नाटिका में राजा विद्याधर मल्ल नामक नायक की पुण्य लीलाओं का वर्णन हुआ है अतः इसका अङ्गी रस शृङ्गार है। यह नाटिका राजा तथा मृगाङ्कावली के प्रणय पर आधारित है। प्रथम अङ्क में वसन्तावतार की योजना द्वारा शृङ्गार के उपयुक्त वातावरण की सृष्टि की गई है। इसमें कवि ने शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण करने का प्रयत्न किया है।

प्रेम का उदय चित्र-दर्शन, गुण-दर्शन, स्वप्न दर्शन, प्रत्यक्ष-दर्शन आदि के द्वारा होता है। नाटिका के प्रथम अङ्क में ही लाट देश के राजा चन्द्रवर्मा अपनी पुत्री मृगाङ्कावली को मृगाङ्कवर्मन के रूप में राजा विद्याधरमल्ल के पास भेजते हैं। मंत्री भागुरायण ऐसी योजना बनाता है जिससे राजा और मृगाङ्कावली प्रणय सूत्र में बंध जायं। वह मृगाङ्कावली को अपने यहाँ बुलाता है किन्तु किसी को भी यह पता नहीं चलता। वह अपने शिष्य हरदास की सहायता से मृगाङ्कावली द्वारा सोते हुये राजा को माला पहनवाता है। राजा उसे देखकर भी केवल स्वप्न समझता है। सुबह जब वह जागता है तो उसी समय से उनके हृदय में स्वप्न में देखी गई मृगाङ्कावली के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है -

जाने स्वप्नविधौ ममाद्य चुलुकोत्सेक्य पुरस्तादभूत्-
प्रत्यूषे परिवेषमण्डलमिव ज्योत्स्नासम्पत्तं महः।
तस्यान्तर्नवनिस्तुषी कृतशरच्चन्द्रप्रभैरङ्गकै-
र्दृष्टा काव्यबला बलात्कृतवती सा मन्मथं मन्मथम् ।।१-१५ ।।

राजा नायिका के प्रति आकर्षित होकर प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं। वे उसके विरह में व्याकुल रहने लगते हैं। राजा विदूषक से नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहते हैं - राजा- इयमपूर्वैवास्माकं न पुनरनङ्गस्य। (सम्यगवलोक्य) सैवेयमस्यन्मनःसागरशशिलेखा। अहो रूपसंपदेतस्याः।

वक्त्रं मैवकमम्बुजं विजयते वक्त्रस्य मित्रं शशी
भ्रूसूनस्य सनाभि मन्मथधनुर्लावण्यपण्यं वपुः ।
लेखा कापि रदच्छदे च सुतनोर्गात्रे च तत्कामिनी-
मेनां वर्णयिता स्मरो यदि भवेद्वैदग्ध्यमभ्यस्यति ।।१-३३ ।।

कवि ने राजा के ही मुख से उनकी विरहावस्था का भी सुन्दर चित्रण कराया है -

बाणान् संहर मुञ्च कार्मुकलतां लक्ष्यं तव त्र्यम्बकः
के नामात्र वयं शिरीषकलिकाकल्पं मदीयं मनः ।
तत्कारुण्यपरिग्रहात्कुरु दयामस्मिन्विधेये जने
स्वामिन्मन्मथ तादृशीं पुनरपि स्वप्नाद्भुतां दर्शय ।।१-२२ ।।

जब राजा उद्यान में अपने मित्र विदूषक के साथ मृगाङ्कावली के वियोग में उससे मिलने का उपाय सोचते रहते हैं, तभी मृगाङ्कावली दिखाई पड़ जाती है । उस समय राजा उसके प्रति अत्यधिक आकर्षित होकर कहते हैं - राजा इदमन्द कथयामि न पुराणप्रजापतिनिर्माणमेषा । यतः --

चन्द्रो जडः कदलिकाण्डमकाण्डशीत-
मिन्दीवराणि च विसृत्वरविभ्रमाणि ।
येनाक्रियन्त सुतनोः स कथं विधाता
किं चन्द्रिकां क्वचिदशीतरुचिः प्रसूते ।।२-४।।

विद्धशालभंजिका में यद्यपि वियोग शृङ्गार का प्राधान्य है किन्तु संयोग का बिल्कुल अभाव नहीं कहा जा सकता । नाटिका के तृतीय अङ्क में नायिका से राजा का संयोग दिखाया गया है । उस समय दोनों की प्रेममयी भावनायें संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत आयेंगी । वहाँ पर राजा विद्याधरमल्ल आश्रय, मृगाङ्कावली आलम्बन उसका सौन्दर्य तथा उपवन की शोभा आदि उद्दीपन तथा राजा द्वारा नायिका का सौन्दर्य वर्णन अनुभाव तथा हर्ष आदि संचारी भाव हैं ।

प्रियतम से मिलन होने पर सङ्कट की घड़ियाँ और भी सुखकर लगती हैं । परकीया प्रेम में यह सङ्कट प्रेमी के लिये और भी सुखकर होता है । द्वितीय

अङ्क में कन्दुक क्रीड़ा करती हुई नायिका के प्रत्यक्ष-दर्शन के बाद तृतीय अङ्क में मिलने होने पर राजा अत्यधिक आनन्द की अनुभूति करते हैं, किन्तु नेपथ्य द्वारा देवी के आगमन की सूचना पाकर वह अत्यन्त व्याकुल होकर कहते हैं - राजा- अभ्यर्थिये हृदयं यदि प्रार्थनाभङ्गं न करोति । संयोग शृङ्गार का सुन्दर परिपाक करने का प्रयास कवि ने किया है ।

इस प्रकार नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार है । वह पूर्वराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है । रति भाव का आश्रय विद्याधरमल्ल है । मृगाङ्कावली आलम्बन विभाव है । वसन्तोत्सव, सन्ध्यावतार आदि सुन्दर दृश्य उद्दीपन हैं । राजा की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं । कई व्यभिचारी भाव भी हैं । इस प्रकार समस्त अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की चर्वणा हुई है ।

विप्रलम्भ शृङ्गार में मृगाङ्कावली और विद्याधर दोनों का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा । कवि विरह से व्याकुल मृगाङ्कावली के हृदय के सन्ताप का वर्णन करता है । मृगाङ्कावली तृतीय अङ्क में अपने हृदय को सम्बोधित करते हुये कहती है - मृगा० - हंहो हृदय ! नयनाभ्यां दृष्टः त्वमुन्माद्यसीत्यहो आश्चर्यमाश्चर्यम् । अथवा मूले वकुलयष्ट्याः सुरागण्डूषसेकः कुसुमेषु मदिरागन्धोद्गार इति ।

कवि राजशेखर नारी मनोविज्ञान के सूक्ष्मदर्शी प्रतीत होते हैं । जब मृगाङ्कावली के हृदय में राजा के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है तो विरह से व्याकुल होकर वह अपनी सखी विचक्षणा से कामदेव के प्रति कहती है - मृगा०- सखि ! सामान्यकुसुमबाणो भूत्वा कथमेतादृशदशं जनं करोति मदनः तन्नूनमस्य विषकुसुममया बाणाः ।

विदूषक की योजना द्वारा कवि ने हास्य रस की भी चर्वणा करने का प्रयास किया है । विदूषक की मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ हास्य का कारण होती हैं । द्वितीय अङ्क में राजा जब मृगाङ्कावली को देखने की बात करता है तो विदूषक उसकी हँसी उड़ाते हुये कहता है - विदूषकः - किं त्वमधुवैरबलीवर्द इव स्थाने

स्थाने आतो भवसि । तद् गुडूचीदण्ड इव भवानत्रैव प्ररोहतु । अहं पुनर्देवीसकाशं गच्छामि ।

इसी प्रकार वह जहाँ-तहाँ बिना-विचारे नृत्य करने लगता है । राजा के विवाहोत्सव के समय विचक्षणा आदि दासियों के मध्य वह भी नृत्य करने लगता है जो लोगों के हास्य का कारण बनता है - विदूषक: - भो एतासां मध्ये अहमपि गास्यामि नर्तिष्यामि च । किन्तु दृश्य नाटिका में हास्य रस को महत्वपूर्ण नहीं कहा जा सकता ।

यद्यपि केवल अन्त:पुर की प्रणय-लीलाओं का वर्णन करना ही इस नाटिका का उद्देश्य है किन्तु कवि ने अपनी प्रतिभा-प्रदर्शित करते हुये वीर आदि रसों के संचार का भी प्रयत्न किया है । नाटकीय कथानक के विकास की दृष्टि से यद्यपि इस प्रसङ्ग का कोई महत्व नहीं है । यदि इस घटना को निकाल भी दिया जाय तो रचना-सौष्ठव की चारुता में कोई कमी नहीं आयेगी । अत: ज्ञात होता है कि केवल वीर रस की सृष्टि के लिये इसे महत्व दिया गया है । चतुर्थ अङ्क के अन्त में श्रीवत्स नामक सेनापति के पास से कुरङ्गक नामक दूत आकर शत्रुओं के विनाश की सूचना राजा को देता है । मन्त्री भागुरायण कुरङ्गक के हाथ से लेख पढ़कर सुनाता है - भागु० (गृहीत्वा वाचयति)

स्वस्ति श्रीमन्नुपुर्यां तुहिनकरसुतावीचिवाचालितायां
देवं कर्पूरवर्षं विनयनतशिरा: सर्वसेनाधिनाथ: ।
श्रीवत्सो वत्सलत्वान्मुरलजनवधूलोचनैरर्च्यमाने
पादद्वन्द्वारविन्दे प्रणामभिरचयत्यञ्जलिं मूर्ध्नि भक्त्या ।।४-१८।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस नाटिका में शृंगार रस की प्रधानता होने पर भी वीर हास्य आदि रसों की योजना करने का भी प्रयास कवि ने किया है किन्तु रसात्मकता की दृष्टि से इस नाटिका को अधिक सफल नहीं कहा जा सकता ।

कर्णसुन्दरी –

कर्णसुन्दरी नाटिका में धीरललित नायक त्रिभुवनमल्ल की प्रणय लीलाओं का वर्णन हुआ है । नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार है । यह नाटिका राजा त्रिभुवन मल्ल और कर्णसुन्दरी के प्रणय पर आधारित है । प्रथम अङ्क में वसन्तावतार की योजना द्वारा शृङ्गार रस के उपयुक्त वातावरण की सृष्टि की गई है । शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों ही पक्षों का चित्रण हुआ है । कवि ने मान का अङ्कन करने का भी प्रयास किया है ।

प्रथम अङ्क में अमात्य प्रणिधि कर्णसुन्दरी को त्रिभुवन मल्ल के चक्रवर्तित्व की कामना से अन्त:पुर में देवी के संरक्षण में रख देते हैं । राजा सर्वप्रथम स्वप्न में कर्णसुन्दरी का दर्शन करते हैं और उनके हृदय में स्वप्न में देखी हुई सुन्दरी के प्रति प्रेम का बीज उत्पन्न हो जाता है वे उसके वियोग में कहते हैं – राजा-शृणु । निवेदयामि –

अद्योधाने मरकतमयीं वापिकामुपेरेण
स्वप्ने दृष्टा प्रकृतिमधुरा माधवीमण्डपान्त: ।
कार्ष्येणाक्षी रतिरिव मया विप्रमुक्ता स्मरेण
स्मारं स्मारं किमपि दधती दु:सहां मोहनिद्राम् ।।१।३५ ।

राजा नायिका के प्रति आकर्षित होकर प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं । कवि ने राजा के मुख से उनको वरहावस्था का सुन्दर चित्रण कराया है –

विरम रमणि प्राणत्यागे धृता किमिति स्पृहा
ननु भगवत: कंदर्पस्य त्वमुच्छ्वसितान्तरम् ।
इतिशशिमुखीमुक्त्वा यावद्भिमि पटांचले
चटुलरशना तूर्णं तावद्गता अर्चिचेव ।।१।३६

अनन्तरमिदम् जातम् । अस्ति च स्वप्नदृष्टजनस्य संवाद: । तन्न जाने किं भविष्यति ।

इसी प्रकार तरङ्गशाला में कर्णसुन्दरी का चित्र देखकर उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुये अपनी रसिकता का परिचय इस प्रकार देता है – राजा – ८

एतन्नदेव सितदेवल रु प्रसून-

सौभाग्यमङ्गलमनङ्गविलासवेश्म ।

जैत्र: स एव च विलोचनयोर्विलास:

सैवेन्दुसुन्दरमुखी ललितेयमास्ते ।।१।५२ ।।

शृङ्गार-रस में हाव-वर्णन महत्वपूर्ण होता है । हाव न केवल उद्दीपन का कार्य करते हैं अपितु नायिका के अन्त:करण की भावनाओं के भी व्यंजक होते हैं । परकीया एवं अभिसारिका नायिका के हावों का नायक के लिये विशेष महत्व होता है । यद्यपि नाटिका में अभिसरण के प्रत्यक्ष दृश्य का उपस्थित करके हावों का अभिनय नहीं कराया गया है फिर भी राजा के मुख से उसका वर्णन करा दिया है । राजा अभिसारिका की चेष्टाओं का वर्णन करते हुये कहता है - राजा -

इयं मदाद्लोकयति त्रपानता दृशा नवेन्दीवरदामदीर्घया ।

तदन्यदेवाभ्यधिकं रसायनादवैमि पुष्पायुधदेवदोहदम् ।।२।४० ।।

जब कर्णसुन्दरी के हृदय में त्रिभुवनमल्ल के प्रति प्रेम का उद्घाटन हो जाता है और वह प्रियतम के मिलन को दुर्लभ समझती है तब उसका मन निराशा और ग्लानि से भर जाता है । कवि ने उसका अत्यन्त सूक्ष्म, मार्मिक और स्वाभाविक चित्रण किया है -

नायिका - ईदृशानि मम भागधेयानि येर्मृत्युसंभावना । (इति संस्कृतमाश्रित्य।)

गुर्वी धुरं दुरभियोगनिधिर्मनोभू-

राब्धवानविषये मनसोऽनुबन्ध: ।

बन्धुर्नकश्चिदपि निघ्नतया स्थितिश्च

हा निश्चितं मरणमेव ममेह जातम् ।।२।३५ ।।

एक प्रेयसी के हृदय की ग्लानि, लज्जा, पीड़ा, पराधीनता आदि समस्त भावों का वर्णन कवि ने एक साथ कर दिया है ।

कर्णसुन्दरी नाटिका में यद्यपि वियोग श्रृङ्गार का प्राधान्य है किन्तु संयोग का भी अभाव नहीं है। द्वितीय अङ्क में लीलावन में दोनों का मिलन होता है, उस समय दोनों की प्रेममयी भावनायें संयोग श्रृङ्गार के अन्तर्गत आयेंगी। वहाँ पर राजा त्रिभुवनमल्ल आश्रय, कर्णसुन्दरी आलम्बन, कर्णसुन्दरी का सौन्दर्य उद्यान, लीलावन आदि उद्दीपन तथा राजा द्वारा नायिका का सौन्दर्य वर्णन अनुभाव तथा हर्ष आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार यहाँ पर संयोग श्रृङ्गार की पुष्टि होती है।

विप्रलम्भ श्रृङ्गार में त्रिभुवनमल्ल और कर्णसुन्दरी दोनों का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा। कवि विरह से व्याकुल कर्णसुन्दरी के हृदय की वेदना का वर्णन करता है - नायिका -

को जानाति कदा भविष्यति फलं चन्द्रार्धचूडामणि-
प्राणेशाचरणप्रसादतरोर्भक्त्या सिक्तस्यापि।
मुह्यन्ती मदनानलेन बहुलं सार्ह हताशा पुन-
रिदानीमेव तत्र मरामि परमंयदवस्थान्तरम् ।।२।२७।।

वियोगावस्था में सखी द्वारा किया गया आश्वासन भी व्यर्थ प्रतीत होता है। वह निराश होकर अपनी सखी से कहती है - नायिका-सखि, अलमाश्वासनशीलतया।

द्वितीय अङ्क में जैसे ही राजा कर्णसुन्दरी का आलिङ्गन करने की इच्छा करता है वैसे ही देवी के आगमन की सूचना पाकर कर्णसुन्दरी चली जाती है। राजा की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है। वह निर्वेदपूर्वक कहता है - राजा - (निश्वस्य)

कथमपि दिवः पुंजीभूयच्युतामिव कौमुदीं
कुमुदसुहृदः प्राप्यप्राणाधिकां विधिकारणात्।
अकृतविरहोप्राप्तं लीलारसोर्मिषु मज्जता
क्षणामपि मया न स्वातन्त्र्यं निमत्रविधीयताम् ।।२।४२।।

इस प्रकार नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार है। वह पूर्वानुराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है। रति भाव का आश्रय त्रिभुवनमल्ल है। कर्णसुन्दरी आलम्बन विभाव है। वसन्तोत्सव आदि के मनोरम दृश्य उद्दीपन विभाव हैं। नायक की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं। अनेक व्यभिचारी भाव भी हैं। इस प्रकार सभी अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की चर्वणा हुई है। कवि ने विदूषक की योजना द्वारा हास्य की सृष्टि करने का भी प्रयास किया है। वह राजा के प्रलाप को अरण्यरोदन कहकर हास्य की सृष्टि करता है - विदूषक भो: किमरण्यरोदनेन। किन्तु नाटिका का हास्य उदात्त कोटि का नहीं है।

कवि बिल्हण ने अपनी प्रतिभा-प्रदर्शन के हेतु वीर आदि रसों के संचार का भी प्रयास किया है। वीर सिंह द्वारा गर्जननगर की विजय का वर्णन कथानक के विकास की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है फिर भी वीर रस की सृष्टि के लिये उसे महत्व दिया गया है। कवि ने ओजपूर्ण शैली में युद्ध का वर्णन किया है --वीरसिंह : --

पांसूनां सूचिभेद्यैः सकलमपि कुलद्याभृतां छादनेच्छा-
बद्धोत्साहैः प्रवाहैरसुषिरमभवद्व्योमसीमान्तरालम्।
दारश्रेणीनिवेशश्रियमथधरणीमण्डलं वीर्ययाता
जातोर्वी ते नृवीर विरचितविवरास्तत्रवाहो मुहूर्तम् ।।४।१७

इस प्रकार शृङ्गार रस का प्राधान्य होने पर अन्य रसों की व्यंजना में भी कवि का प्रयत्न श्लाघनीय है।

--

पारिजातमंजरी --

पारिजातमंजरी नाटिका में धीरललित नायक अर्जुनवर्मा की प्रथम लीलाओं का चित्रण हुआ है। नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार है। यह नाटिका धार के ऐतिहासिक राजा अर्जुनवर्मा और चालुक्य नरेश की कन्या पारिजात मंजरी के प्रणय पर आधारित है। इसमें वियोग की अपेक्षा संयोग का चित्रण अधिक सुन्दर बन पड़ा है। कवि ने मान का अङ्कन करने का भी प्रयास किया है।

नाटिका के प्रथम अङ्क में राजा पारिजातमंजरी को वसन्तलीला के संरक्षण में रख देते हैं। द्वितीय अङ्क में राजा माधवी लता और सहकार वृक्ष के विवाहोत्सव हेतु धारागिरि के लीलाधान में जाते हैं उसी समय वसन्तलीला पारिजातमंजरी को लेकर वहाँ आ जाती है और उचित समय देखकर पारिजातमंजरी को प्रकट कर देती है। वहाँ राजा रानी के ताटङ्क में उसका प्रतिबिम्ब देखकर उस पर मोहित हो जाते हैं। दोनों के हृदय में प्रेम का बीज उत्पन्न हो जाता है। राजा उसके सौन्दर्य को देखकर कहता है - राजा -(राज्ञीताटङ्के प्रतिबिम्बितां नायिका अवलोक्य सहर्षविस्मयमात्मगतम् ।) अये, जितं मनोरथैः। यदियं बलधूलि-घोरान्धकारदुःसंचारसमरसंकेतनवगर्भसारिका मे प्राणेश्वरी प्रथमप्राणेश्वरी ताटङ्क-दर्पणे लोचनगोचरं गता ।

इसी प्रकार द्वितीय अङ्क में ही रानी के ताटङ्क में पारिजातमंजरी का प्रतिबिम्ब देखते हुये राजा के प्रति प्रेमाभिभूत नायिका कहती है --

नायिका -- अम्मो, किमेष राजा मे प्रतिबिम्ब प्रेक्षते, अथवा देव्यास्ताटङ्कमेव ।

रानी के ताटङ्क में पारिजात मंजरी का प्रतिबिम्ब देखने पर उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हुये राजा अपनी रसिकता का परिचय इस प्रकार देता है --

राजा --

उच्छ्वासि स्तनयोर्द्वयं तदपि यत्सीमाविवादोल्बणं
लीलोत्कलि गतं तदप्यनुगतं श्रोणिश्रियामन्थरम् ।
दीर्घं दृष्टियुगं तदप्यनुगतं लास्येन किंचिद्भ्रुवो -
रेतस्यास्तनु मध्यमं विजयते सौभाग्यबीजं वयः ।।२।५१

कवि मदनपाल सरस्वती नारी-मनोविज्ञान के भी ज्ञाता थे। जब पारि-जातमंजरी के हृदय में अर्जुनवर्मा के प्रति प्रेम का उद्घाटन हो जाता है। स्वतः को राजा की तुलना में हीन समझती है। यही कारण है कि जब वसन्तलीलाल उससे कहती है- वत्से, एष एव राजा तवोपाध्यायो भविष्यति। उस समय नायिका अपने अपने भक्त को उलाहना देते हुए कहती है -
कुतोऽस्माकं तादृशं भागधेयम्।

एक प्रेयसी के हृदय की क्रीड़ा, परवशता आदि का एक साथ चित्रण कवि ने कर दिया है।

पारिजात मंजरी नाटिका में वियोग के साथ साथ संयोग का भी चित्रण हुआ है। द्वितीय अङ्क में धारागिरि के लीलोद्यान में दोनों का मिलन होता है, उस समय दोनों की प्रेममयी भावनाओं में संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत आयेंगी। वहाँ पर राजा अर्जुन आश्रय, पारिजातमंजरी आलम्बन, उसका (पारि० का) सौन्दर्य, लीलोद्यान की शोभा आदि उद्दीपन तथा राजा द्वारा नायिका का सौन्दर्य वर्णन अनुभाव तथा हर्ष आदि संचारी भाव है। इस प्रकार वहाँ पर संयोग शृङ्गार की पुष्टि होती है।

विप्रलम्भ शृङ्गार में राजा अर्जुन और पारिजात मंजरी दोनों का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा। कवि विरह से व्याकुल पारिजात मंजरी के हृदय की वेदना का वर्णन करता है - नायिका - (स........... र्गं राजान-मवलोक्य।) हा धिक्, एष निर्दयः प्रत्यक्ष एव कुसुमायुधो मां मन्दभागिनीं प्रहरति।

द्वितीय अङ्क में जब नायिका यह कहकर, कि राजा अवश्य देवी को प्रसन्न करने के हेतु जायेंगे, चली जाती है उस समय राजा की दशा अत्यन्त दय-नीय हो जाती है। वह निर्वेदपूर्वक कहता है - राजा
सखे दृष्टं त्वया यत्ममापतितम्।

अपि सर्वकला देवा यदर्थे भूत्पराङ्मुखी ।
सापि जाता दृशोर्दूरे विजयश्रीः प्रिया मम ।। २।५५
तत्किमत्र कर्तव्यम् ।

इस प्रकार नाटिका का अङ्गी रस शृङ्गार है । वह पूर्वानुराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है । रतिभाव का आश्रय राजा अर्जुन है । पारिजात मंजरी आलम्बन विभाव है । लीलोद्यान आदि के मनोरम दृश्य उद्दीपन हैं । नायक की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं । अनेक व्यभिचारी भाव भी हैं । समस्त अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की चर्वणा हुई है ।

नाटिका में विदूषक की योजना अवश्य की गई है किन्तु हास्य रस का विशेष चित्रण नहीं हुआ है । साथ ही नाटिका के दो अङ्क अनुपलब्ध होने के कारण नाटिका का रसात्मकता की दृष्टि से सुन्दर विवेचन नहीं किया जा सकता ।

कुवलयावली —

नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार कुवलयावली में नायक की प्रणय-लीलाओं का चित्रण होने के कारण उसका अङ्गी रस शृङ्गार है । नाटिका राजा तथा कुवलयावली के प्रणय के आधार पर आधारित है । शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण किया गया है । कवि ने मान का चित्रण करने का भी सफल प्रयास किया है ।

नाटिका के प्रथम अङ्क में ही महर्षि नारद कुवलयावली को रुक्मिणी के प्रासाद में धरोहर रूप में रख देते हैं । वह अपनी सखी चन्द्रलेखा के साथ उपवन में जाती है । वहाँ पर कालयवन की विजययात्रा से लौटकर आये हुये राजा उपवन में सन्ध्या समय का आनन्द ले रहे थे । वहाँ राजा तथा कुवलयावली दोनों एक-दूसरे के प्रत्यक्ष सौन्दर्य को देखकर मोहित हो जाते हैं । दोनों के हृदय में प्रेम का

बीज उत्पन्न हो जाता है। राजा नायिका को देखकर उसे न केवल स्त्रीमात्र समझते हैं किन्तु --

> कुसुमायुधलक्ष्मीर्वा मोहनविद्याविलास रेखा वा।
> सौभाग्यकन्दलो वा
> किं बहुना - मम लोचन भाग्यदेवतैवेयम् ।। १-१४ ।।

इसी प्रकार कुवलयावली भी राजा को देखकर उनके सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहती है - कुव० (विलोक्य स्वगतम्) अहो सौन्दर्यविशेषो यद्देवस्य (सानुरागं निर्वर्ण्य) अतिमात्रसम्भोगक्षमत्वमाकृतिविशेषस्य ।(इत्यवलोकयति)

जब कुवलयावली अपनी सखी चन्द्रकला सहित राजा से प्रेमालाप करती रहती है, उसी नेपथ्य द्वारा देवी के कुपित होने की सूचना पाकर वह अपनी सखी के साथ प्रासाद में चली जाती है किन्तु, उसकी मणिमुद्रिका उपवन में गिर जाती है जिसे राजा प्राप्त कर लेता है और कुवलयावली को अपनी मुद्रिका गिराने का आभास भी नहीं होता।

राजा नायिका के प्रति आकर्षित होकर प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं। वे विलासोद्यान में अपने मित्र विदूषक के साथ बैठकर अपनी प्रिया के चिन्तन में लीन रहते हैं। कवि ने राजा की विरहावस्था का वर्णन उनके ही मुख से अत्यन्त सुन्दर ढङ्ग से कराया है --

> प्रत्यालोकनलालसैरपि सखे मन्दाक्ष मन्दाकृते:
> सव्याजं प्रविसारितैरपि वरं कातर्यपर्याकुले: ।
> संवादे परिवर्तितैरनुपदं गाम्भीर्यसम्प्रेरितै:
> विक्रीतोऽस्मि विलोकितैर्वरतनोराकुलकर्णोत्पलै: ।। २।६ ।।

जब राजा अपने मित्र विदूषक के साथ कुवलयावली के वियोग में उससे मिलने का उपाय सोचते हैं तभी कुवलयावली अपनी सखी चन्द्रलेखा के साथ मणि-मुद्रिका को ढूँढने के लिये पुन: उपवन में आती है। वह राजा के प्रति इतनी अधिक

आकर्षित हो गई है कि उपवन में आये हुये अपने उद्देश्य को भी भूल जाती है तभी तो जब चन्द्रकला कहती है कि मुद्रिका दिखाई नहीं पड़ रही है क्या किया जाये तो वह उस पर भी ध्यान नहीं देती और अपने चित्त को उलाहना देते हुये कहती है - कुवलयावली- (धृतिमभिनीय, आत्मगतम्) अयि चित्त ! त्वं सैरंध्या अशङ्कवक्त-मात्रेणैव किमित्यात्मानं कृतार्थं चिन्तयसि ।

कवि शिङ्गभूपाल को नारी-हृदय की भावनाओं का मूल ज्ञान था । जब उसके हृदय में राजा के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है किन्तु वह स्वतः को राजा की तुलना में हीन समझती है तब अपने भाग्य को ही दोष देने लगती है । कवि ने उसके हृदय की भावनाओं का कितना सूक्ष्म चित्रण किया है -
कुवलया० (आत्मगतम्) कुतस्तादृशं भागधेयं कुवलयावल्याः । येन स महानुभावो मणिमुद्रिकां पश्यति ।

जब सत्यभामा को राजा और कुवलयावली के अभिसरण की बात मालूम हो जाती है तो राजा नायिका की होने वाली दशा का अनुभव करते हुये कहता है -
नायकः - सखे ! महोत्सवप्रतिनिवृत्ता देवी प्रसङ्गमिममाकर्ण्य कियत् पीडयिष्यति तव प्रियसखीति पर्याकुलोऽस्मि ।

एक नायिका के हृदय की ग्लानि, निराशा, परतन्त्रता का कितना सुन्दर चित्रण हुआ है ।

कुवलयावली में वियोग शृङ्गार के साथ संयोग शृङ्गार का भी सुन्दर चित्रण हुआ है । नाटिका के प्रथम अङ्क में कालयवन की विजय से लौटे हुये उपवन में स्थित राजा का नायिका कुवलयावली से जब मिलन होता है उस समय संयोग शृङ्गार की सृष्टि होती है । वहाँ पर राजा आश्रय, कुवलयावली आल-म्बन, उसका अनिन्द्य-सौन्दर्य, उपवन आदि उद्दीपन तथा राजा द्वारा नायिका का सौन्दर्य वर्णन अनुभाव और हर्ष आदि संचारी भाव हैं । इसी प्रकार संयोग का दूसरा अवसर द्वितीय अङ्क में आता है जब कुवलयावली मणिमुद्रिका ढूंढने के हेतु पुनः उपवन में आती है । वहाँ पर प्रेम का उदय दोनों के हृदय में हुआ है । अतः

एक के अनुभाव दूसरे के लिये उद्दीपन का कार्य करते हैं।

प्रियतम से मिलन हो जाने पर सङ्कट की घड़ियाँ और भी सुखकर होती हैं। परकीया प्रेम में सङ्कट काल आने पर तो वह और भी अधिक वरदान रूप होता है क्योंकि उस समय एक दूसरे की सहायता के बहाने मिलन का अवसर मिलता है। राक्षस जब कुवलयावली को प्रासाद से उठा ले जाता है तो राजा उसकी रक्षा के लिये जाता है। कुवलयावली प्राणत्याग की इच्छा से दीर्घिका में प्रवेश करने जा रही थी। तभी राजा उसका हाथ पकड़ कर कहता है --

अयि। त्वमेवंव्यवसायिनी प्रिये।
किमायुषा मे भवताचिरादपि।
किमिन्दुना ध्वंसितचन्द्रिकाश्रिया
किमिन्द्रनीलेन विसृष्टकान्तिना ।। ४-१४ ।।

इस प्रकार कवि ने संयोग शृङ्गार का चित्रण सफलतापूर्वक किया है।

कवि ने विप्रलम्भ शृङ्गार का भी सुन्दर चित्रण किया है। विप्रलम्भ शृङ्गार में राजा और कुवलयावली का प्रेम पूर्वानुराग के हृदय के सन्ताप का वर्णन करता है - कुवल० - दहति मेहङ्गेषु जरठातपेन सन्तापः।

वियोगावस्था में शीतोपचार के साधन और भी दारुण प्रतीत होते हैं। इसी से चन्द्रलेखा द्वारा नवीन कदलीदलों से छादन किये जाने पर कुवलयावली निम्न उक्ति को कहते हुये उनको हटा देती है --
कुवलयावली- प्रथमं कर्पूरेण धूपितं मदनानलमिदानीं किमिति कदलीदलानिलैः प्रज्वलितं करोषि।

कवि ने विप्रलम्भ शृङ्गार में राजा की विरहावस्था का चित्रण भी कुशलता के साथ किया है। राजा अपनी कामावस्था का अभिनय करते हुये कहते है-- नायकः - (मदनावस्थां नाटयन्) कथमभिसन्धीयते मद्विधयापि मया धृतेरभिसन्धिपरिपन्थीमन्मथः। जयतितरां रतिजानेरनुभावो निखिलधीरपरिभावी।
यदसज्जितापि रणन्ती बाणानन्विष्य शिंजिनी भ्रमति ।।३-३।।

इस प्रकार कुवलयावली नाटिका का अङ्गीरस शृङ्गार है । वह पूर्वानुराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है । रति भाव का आश्रय राजा कृष्ण है । कुवलयावली आलम्बन है । उपवन, वसन्तोत्सव आदि के दृश्य उद्दीपन विभाव हैं । नायक की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं । अनेक व्यभिचारी भाव भी हैं । इस प्रकार सभी अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की व्यंजना हुई है ।

कवि ने विदूषक की योजना द्वारा हास्यरस की चर्वणा करने का भी प्रयास किया है । विदूषक की मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ एवं चेष्टायें हास्य का कारण होती हैं । जब कुवलयावली अपनी सखी चन्द्रलेखा के साथ उपवन में मणिमुद्रिका की खोज में आती हैं और परस्पर संल्लाप करती है तो उस समय श्रीवत्स की उक्ति हास्य की सृष्टि करती है - श्रीवत्स: - भो वयस्य ! तूष्णीं तिष्ठ एष खलु विश्रम्भगोष्ठीश्रितस्य दुष्टदासीपुत्रस्य सल्लाप इव श्रूयते ।

किन्तु नाटिका का हास्य उदात्तकोटि का नहीं है । यद्यपि नाटिका का उद्देश्य अन्त:पुर की प्रणयलीला का वर्णन करना है किन्तु शिङ्गभूपाल ने अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन हेतु नाटिका में वीर रस के संचार का भी प्रयास किया है । राक्षस जब कुवलयावली को प्रासाद के कक्ष से उठा ले जाता है तो राजा उसकी सुरक्षा के लिये जाता है । उस समय राक्षस अपनी वीरता का परिचय ओजपूर्ण शैली में देता है - (नेपथ्ये) भो भो द्वारवतीवासिभिर्वीरम्मन्यै: पुरुषपलालै: श्रूयतामयं कालयवनसोदरस्य में वीरस्यालाप: -

> अम्भोजिनीमिव कदावलदन्तलग्नां
> मद्बाहुपंजरगतां मदिरायताक्षीं ।
> यस्त्रातुमिच्छति मदेन यदो: प्रसूतौ
> सोऽयं समेतु यदि वा सकला: समेता: ।। ४-५ ।।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस नाटिका में शृङ्गार रस की प्रधानता होने पर भी शिङ्गभूपाल ने हास्य वीर आदि रसों की चर्वणा का भी प्रयास किया है किन्तु रस विवेचन की दृष्टि से इस नाटिका को अधिक सफल नहीं कहा

जा सकता ।

चन्द्रकला —

चन्द्रकला नाटिका में नाट्यशास्त्र के नियमानुसार नायक चित्ररथदेव की प्रणय-लीलाओं का चित्रण हुआ है और नायिका का अङ्गीरस शृङ्गार है । नाटिका का कथानक रसराज वसन्त के सरस वातावरण चित्रण के साथ प्रारम्भ होता है । ऋतुराज वसन्त एवं रसराज शृङ्गार का पारस्परिक सम्बन्ध अति समीचीन है । नाटिका का प्रारम्भ ही इस तथ्य का द्योतक है कि नाटिका शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति में सफल है । 'विरचित विरहि कर्णज्वरं वसन्त-समयम्' कहकर नाट्यकार ने नाटिका के कथानक, विषय, फल आदि का सङ्केत कर दिया है । और —

अमुंचन्नपि निजां तां कुन्दलतां सुचिरमुपभुक्ताम् ।
चुम्बति रसालवल्ली अभिनवमधुगन्धिका भ्रमरः ।।

कहकर विश्वनाथ ने नाटिका की सारी कथावस्तु को संक्षेप में कह डाला है — राजा चित्ररथदेव कुन्दलता रूपी अपनी महारानी वसन्तलेखा को बिना त्यागे ही अभिनव मधुगन्धिका रसालवल्ली रूपी नवानुरागा चन्द्रकला के प्रणय-पाश में भ्रमर की भाँति आबद्ध हुये । अर्थात् शृङ्गार की विनियोजना का आभास प्रारम्भ में ही पाठक के लिये स्पष्ट हो जाता है । वसन्तलेखा एवं चित्ररथदेव के प्रेम का सुन्दर चित्रण होने के अनन्तर चित्ररथदेव के प्रेम ~~का सुन्दर~~ तथा चन्द्रकला के प्रणय के आधार पर नाटिका आधारित है । शृङ्गार के संयोग एवं विप्रलम्भ दोनों पक्षों का चित्रण चन्द्रकला नाटिका में हुआ है । कवि ने मान का अङ्कन करने का भी प्रयास किया है ।

प्रत्यक्ष दर्शन गुण श्रवण, चित्र-दर्शन आदि के द्वारा प्रेम का उदय होता है । प्रथम अङ्क में कर्णाटक विजय के लिए प्रस्थित विक्रमाभरण ने कहीं मार्ग में इस युवती (चन्द्रकला) को प्राप्त किया । राज्य के मन्त्री सुबुद्धि ने राज-वंश की कन्या समझकर अन्तःपुर में महारानी के संरक्षण में रख दिया । महा-

देवी वासवदत्ता, इस शङ्का के कारण कि इसके दर्शनमात्र से ही महाराज इसके प्रति आसक्त हो जायेंगे, इसकी उपस्थिति अत्यन्त गोपनीय रखती थीं। तथापि अचानक देवी के पास जाते हुये महाराज की दृष्टि उस कन्या (चन्द्रकला) पर पड़ गई। उसी समय से राजा और नायिका दोनों के हृदय में प्रेम का बीज उत्पन्न हो जाता है - "ततः प्रभृति देवीभयात् बाह्यातिरोहितविकारोऽहर्निशंमदना-नलक्वाथितान्तरो वर्तते महाराजः।

वह चन्द्रकला के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये अपनी रसिकता का परिचय इस प्रकार देता है -

सा दृष्टिर्नवनीरनीरजमयी सृष्टिस्तदप्याननं
हेलामोहनमन्त्रयन्त्रजनिताकृष्टिर्जगच्चेतसः।
सा भ्रूवल्लिरनङ्गशाङ्गैधनुषो यष्टिस्तथास्यास्तनु-
लावण्यामृतपूरपूरणमयी सृष्टिः परा वेधसः ।।६।।

उदयन के द्वारा ही कवि ने वसन्तलेखा के सौन्दर्य का भी मनोरम वर्णन किया है। प्राकृतिक सौन्दर्य के सामंजस्य से इस वर्णन में और भी सुन्दरता आ गई है। द्वितीय अङ्क में राजा चित्ररथदेव वसन्तलेखा के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये कहता है - राजा-"तथाप्यलमस्येदानीं तव वदनाम्भोजविस्पर्धिनो दोषाकरस्य परिणयोत्सवोपादानेन।

शृङ्गार में हाव-वर्णन का विशेष महत्त्व है। हाव न केवल उद्दीपन का कार्य करते हैं अपितु नायिका के अन्तःकरण की भावनाओं के भी व्यंजक होते हैं। परकीया एवं अभिसारिका नायिका के हावों का नायक के लिये बहुत बड़ा मूल्य होता है। यद्यपि इस नाटिका में अभिसरण के प्रत्यक्ष दृश्य को उपस्थित करके अभिसारिका के हावों का अभिनय नहीं कराया गया क्योंकि यह रङ्गमंचीय नियमों के प्रतिकूल है तथापि राजा के मुख से उसका वर्णन करा दिया है। नाटिका के तृतीय अङ्क में विदूषक सुनन्दना के साथ मणिमण्डप में नायिका चन्द्रकला को लेकर राजा के साथ उसका मिलन कराता है उस समय राजा चित्ररथदेव अपनी

विलासप्रियता का परिचय देते हुये कहता है - राजा -

वैलक्ष्यस्य भवत्यसाववसरो नैतावस्तेऽधुना
किं नामाननचन्द्रमानमयसि प्राणाधिके प्रेयसि ।
एभिर्गाढमनङ्गमञ्जुल गृहैरालिङ्गय नामङ्गके-
रणप्रेक्षणि पंचबाणविशिखश्रेणीं विनिर्वापय ।।२-१८।।

कवि विश्वनाथ को नारी मनोविज्ञान का भी सूक्ष्म ज्ञान था । प्रेयसी के प्रेम का जब उद्घाटन हो जाता है तब वह प्रियतम के समान स्तर को न होने पर प्रेम में असम्भवता देखती है, उस समय लज्जा और ग्लानि के कारण उसकी जो दशा होती है उसका अत्यन्त सूक्ष्म तथा स्वाभाविक चित्रण कवि ने किया है ।

चन्द्रकला- दीर्घ निःश्वस्य यदि अहो निबन्धस्त्वया तादृशे दुर्लभे पि ।
तत्किं हृदय खिद्यसे पुङ्गव अविचारितस्य फलम् ।।२-१९ ।।

प्रेम की असफलता , अपनी पराधीन अवस्था आदि के अनुभव से जो ग्लानि, पीड़ा आदि भावनायें उत्पन्न होती हैं, उनकी व्यंजना कवि ने एक साथ की है ।

वियोग शृङ्गार के साथ चन्द्रकला नाटिका में संयोग शृङ्गार का भी वर्णन हुआ है । संयोग का अवसर सुनन्दना द्वारा चन्द्रकला को राजा चित्ररथदेव से मिलाने के समय आता है । वहाँ प्रेम का उदय दोनों के हृदय में हुआ है । अतएव एक के अनुभाव दूसरे के लिये उद्दीपन का कार्य करते हैं । राजा के प्रेम में डूबी हुई अननुभूत दुःखसागर में निमग्न चन्द्रकला का हाथ पकड़कर राजा उसे उठाता है और स्पर्शजनित सुख का अनुभव करता है । कवि ने किस कौशल के साथ राजा के प्रेम की व्यंजना की है --

करपल्लवसङ्गेन सममेव मृगीदृशः ।
निमग्नमिव मे स्वान्तमुदन्चति सुधामये ।।२-१६ ।।

इस प्रकार कवि ने संयोग शृङ्गार का परिपाक सफलता के साथ किया है ।

विप्रलम्भ शृङ्गार में चन्द्रकला और चित्ररथदेव का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा । वियोग की अग्नि से प्रज्वलित होती हुई चन्द्रकला द्वारा यह वर्णन उसके हृदय की वेदना को सूचित करता है । चन्द्रकला -

एकत्र प्रियविरहो न्यत्र एष समुदितश्चन्द्रः
घातस्योपरि घातो मध्येकत्र कृत विधिना ।। २-१२

वियोग के साथ शीतोपचार और भी दाहक प्रतीत होते हैं । इसी कारण सुनन्दना द्वारा लाये हुये कमलिनी पत्र और मृणाल आदि को अपने विरह को शान्ति के लिये व्यर्थ सिद्ध कर देती है ।

नाटिका के तृतीय अङ्क में राजा चित्ररथदेव की विरहावस्था का चित्रण कवि ने कुशलता के साथ किया है । उसको दशा चन्द्रकला के वियोग में अत्यन्त क्षीण हो जाती है । कामदेव के बाणों से आहत होकर भी वह उसे सम्बोधित करते हुये कहता है - राजा ---

शरस्ते दुर्वारःस्मरपुरहरस्यान्तकभिदुरः
फलं किं नामासादधिकमधिगन्तुं तुदति माम् ।
(विचिन्त्य)
अलं वा दैन्येन त्वयि यदखिलस्यापि जगतो ।
मनो मथ्नासीति प्रथितिरिह ते मन्मथ इति ।। ३-५ ।।

इस प्रकार चन्द्रकला नाटिका का रस शृङ्गार है । वह पूर्वराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्ति हुआ है । रतिभाव का आश्रय चित्ररथदेव है । चन्द्रकला आलम्बन विभाव है । वसन्तावतार, उपवन की शोभा आदि सुन्दर दृश्य उद्दीपन हैं । राजा की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं । कई व्यभिचारी भाव भी हैं । इस प्रकार समस्त अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की चर्वणा हुई है ।

कवि ने शृङ्गार के साथ विदूषक की योजना करके हास्य रस का संचार करने का भी प्रयास किया है । विदूषक की मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ हास्य रस का कारण होती हैं । नाटिका के प्रथम अङ्क में जब राजा चित्ररथदेव चन्द्रकला के

प्रति अपनी आसक्ति के विषय में विदूषक से बताता है उस समय विदूषक की उक्ति हास्य की सृष्टि करती है - राजा- सखे । किमन्यत् ? अनया खलु वध्वा निजगुणसंधिधिशैं समाकृष्टचेतस: प्रसभं हृदये दिवानिशं मे भवति मदनोऽनलो ज्वालित: ।
विदूषक: - आश्चर्यम्, तदविलम्बितं परिसृत्य दीर्घिकोद्धृतसलिलकुम्भेन निर्वाप्यतामेष वह्नि: । (किमाणाँईं, ता अविलम्बिदं परिसरिअ दिग्घिआरिचअसलिलकुम्भेण णिव्वाबअऊ एसो वह्नि: ।)

इसी प्रकार प्रथम अङ्क में ही चन्द्रकला बाहुओं को उठाकर ऊपर उठी हुई केशरशाखा के पुष्प को तोड़ने का प्रयास करती है । उस समय राजा जब कहता है-राजा- दरप्रकाशे कुचकुम्भमूले द्रुतं निपत्यद्रुतकर्बुरामे ।
लावण्यपूरे विनिमग्नमुच्चैर्नं मे कदाचित् वहिरेति चेत: ।।१-१५ ।।

तब विदूषक हास्य की सृष्टि करते हुये कहता है - विदूषक: -
`तदविलम्बितं कैवर्तं प्रेक्ष्य उत्तोलयतु ।` (ताता विलम्बिदं केवट्टप्येक्खिअ उत्तोलिअदु ।) किन्तु नाटिका का हास्य उदात्त कोटि का नहीं है ।

कवि ने अपनी प्रतिभा के परिचय हेतु यदा-कदा वीर रस का भी चित्रण किया है । मरहट्टा, कोशल, आन्ध्र, उत्कल, पंचगौड़, गुर्जर आदि नरेशों के पराजय की सूचना देते हुये बन्दीगण राजा की वीरता का चित्रण करते हैं -
बन्दिनौ -
अपर: - राज्यं मुञ्चति मरहट्ट: । कोष कोशलो न पृच्छति । आन्ध्रो विशति गिरिरन्ध्रम् । अङ्ग : अङ्गनमपि न पृच्छति । भङ्ग: पतति वाराङ्ग: । वङ्ग: सप्ताङ्ग न सज्जयति । पंचगौड: पंचतत्वं लभते । गुर्जरो न गर्जति । उत्कलकालकाल: परिपन्थिराजतहस्तात् स्खलति अरिराजमहगर्जासिंहजयिन्, पुण्यं भवतु क्ष्यवरम् आरोहतु ।

इस प्रकार चन्द्रकला नाटिका में शृङ्गार रस का प्राधान्य होने पर भी हास्य, वीर आदि रसों का भी कहीं कहीं संचार हुआ है ।

मृगाङ्कलेखा -

नाट्यशास्त्र के सिद्धान्तानुसार नाटिका धीरललित नायक की प्रणय-लीलाओं का चित्रण हुआ करता है अतएव उसका अङ्गीरस शृङ्गार होता है। मृगाङ्कलेखा नाटिका में भी शृङ्गार ही अङ्गीरस है। प्रथम अङ्क में मदन-महोत्सव की योजना शृङ्गार के उपयुक्त वातावरण की सृष्टि करती है। तद-नन्तर कर्पूरतिलक तथा मृगाङ्कलेखा के प्रणय के आधार पर नाटिका आधारित है। शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण करने का प्रयत्न कवि ने किया है।

प्रथम अङ्क के विष्कम्भक में ही रत्नचूड द्वारा यह सूचना मिलती है कि कलिङ्गेश्वर कर्पूरतिलक मृगया के लिये जाते हैं तो वहाँ पर कामरूपेश्वर की पुत्री मृगाङ्कलेखा को देखकर अतिशय विमुग्ध हो जाते हैं और उसी समय से उनके हृदय में मृगाङ्कलेखा के प्रति प्रेम का बीज उत्पन्न हो जाता है - रत्नचूड: -

अत एवास्मत्स्वामी कलिङ्गेश्वर: कामरूपेश्वरतनयां मृगाङ्क-लेखां मृगयाप्रसङ्गेनावलोक्य न तथा चिरपरिचितां विलासवतीं मन्यते।

राजा नायिका के प्रति आकर्षित होकर प्रेम से अभिभूत हो जाते हैं। वे उसके विरह में प्रमदवन में इधर-उधर भटकते रहते हैं। कवि ने राजा के मुख से उनकी विरहावस्था का सुन्दर चित्रण कराया है - राजा - (मदनाकुलम-भिनीय)

बाणान्संहर पंचबाण किमु रे निर्मासि ममैव्यथां
मा मा कोकिल काकलीकलकलै: कर्णस्य दाहं कुरु।
भो भो मारुत सिन्दुवारकलिकामादाय किं जृम्भसे
सा नो हन्त नवीननीरजमुखी कुत्रापि लभ्यामया ।।१-३४।

जब राजा अपने मित्र विदूषक के साथ प्रमदवन में मदनमहोत्सव को देखते हुये आत्मविनोद करते रहते हैं उस समय मृगाङ्कलेखा अपनी सखियों तथा परि-वारसमूह के साथ प्रमदवन में प्रवेश करती है। वहाँ पर रा जा को देखकर मृगाङ्क-लेखा के हृदय में भी प्रणय की ज्वाला प्रज्वलित हो उठती है। वह अपने हृदय

को आश्वासित करते हुये कहती है - मृगाङ्कलेखा-(राजानमवलोक्य) हृदय ! समाश्वि-सिहि २ ।

शृङ्गार रस में भाव वर्णन महत्वपूर्ण होता है । भाव-वर्णन नायिका की भावनाओं के व्यंजक होते हैं । नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार नाटिका के अभि-सरण के प्रयास दृश्य द्वारा भाव का अभिनय कराना अनुचित है । अत: इस नाटिका में प्रत्यक्ष दृश्य द्वारा भाव का अभिनय नहीं कराया गया है किन्तु कर्पूरतिलक के मुख से उसका वर्णन करा दिया गया है । राजा अभिसारिका की चेष्टाओं का वर्णन करते हुये कहते हैं - राजा-वयस्य !

एकालयेऽपि बहुबाढ्करं निशीथे
जीवाधिनाथमुदयन्मदनाग्नितापम् ।
तं दुर्लभं वितनुते तनुते च खेदं
व्रीडैव केवलमियं कुलकामिनीनाम् ।।२६।।

विश्वनाथ नारी मनोविज्ञान के सूक्ष्मदर्शी थे । जब मृगाङ्कलेखा के हृदय में राजा कर्पूरतिलक के प्रति प्रेम का उद्घाटन हो जाता है और वह प्रियतम के मिलन को दुर्लभ समझती है तो उसका मन निराशा और ग्लानि से भर जाता है । कवि ने उसका अत्यन्त सूक्ष्म और स्वाभाविक वर्णन किया है -

मृगा० - हला ! अभिलाषो महिलानां दुर्लभसङ्गमे दुस्सहो भवति ।
जानातु प्रियसखी तत् मरणं तासां कुलवधूनाम् ।।२८।।

एक प्रेयसी के हृदय की ग्लानि, लज्जा, पीड़ा, पराधीनता आदि समस्त भावों का वर्णन कवि ने एक साथ कर दिया है ।

मृगाङ्कलेखा नाटिका में यद्यपि वियोग शृङ्गार का प्राधान्य है किन्तु संयोग का भी अभाव नहीं है । नाटिका के द्वितीय अङ्क में माधवी-मण्डप में स्थित मृगाङ्कलेखा के पास जब राजा जाते हैं तो दोनों का मिलन होता है,

उस समय की दोनों की प्रेममयी भावनायें संयोग शृङ्गार के अन्तर्गत आयेंगी। वहाँ पर राजा कर्पूरतिलक आश्रय, मृगाङ्कलेखा आलम्बन, मृगाङ्कलेखा का सौन्दर्य लतामण्डप आदि उद्दीपन तथा राजा द्वारा नायिका का सौन्दर्य वर्णन अनुभाव तथा हर्ष आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार यहाँ पर संयोग शृङ्गार की पुष्टि होती है।

प्रेमी का मिलन होने पर सङ्कट की घड़ियाँ और भी सुखकर होती हैं। विशेषकर परकीया प्रेम में यह सङ्कट प्रेमी के लिये और भी सुखकर होता है क्योंकि उस समय एक-दूसरे की सहायता के व्याज से मिलन का अवसर प्राप्त होता है। प्रस्तुत नाटिका में जब शङ्खपाल मृगाङ्कलेखा को कालिकायतन में उठा ले जाता है तब राजा उसके वियोग में प्राण-त्याग की इच्छा से कालिकायतन जाता है। वहाँ पर वह शङ्खपाल से मृगाङ्कलेखा की सुरक्षा करके उसका आलिङ्गन करके आनन्द की अनुभूति करता है -

राजा -(सानन्दं मृगाङ्कलेखामालिङ्ग्य) यावदहमपि त्वामेकान्ते स्थापयामि।

इस प्रकार संयोग शृङ्गार का परिपाक कवि ने सफलतापूर्वक किया है।

विप्रलम्भ शृङ्गार में राजा और मृगाङ्कलेखा दोनों का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा। कवि विरह से व्याकुल मृगाङ्कलेखा के हृदय की वेदना का वर्णन करता है -

> चन्द्रश्चन्दनमुत्पलानि नलिनीपत्राणि मन्दानिलः
> कालः कोऽपि च चैत्रदन्तिवलप्रोत्फुल्लमल्लीलतः।
> लीलामज्जनमुज्ज्वलं च वसनं शय्या मृगाङ्कोज्ज्वला
> यद्यौत्सौख्यकरं जनस्य मम तच्चिन्ताज्वरोद्दीपनम्॥२६॥

वियोगावस्था में चन्द्रमा की किरणें भी मृगाङ्कलेखा के लिये बाधक सिद्ध होती हैं। उसकी सखी लवङ्गिका कहती है - लवं-भर्तः। एष कुमुदिनीनाथः किरणैर्मम प्रियसखीं अतिशयितं बाधते। तदनया सह न्यतोगमिष्यामि।

प्रथम अङ्क में राजा द्वारा आलिङ्गन किये जाने पर मृगाङ्कलेखा प्रेम

से आप्लावित हो जाती है । नेपथ्य द्वारा देवी के आगमन की सूचना से मृगाङ्कलेखा चली जाती है । राजा लतामण्डप को शून्य देखकर प्रेम की व्यंजना करते हुये कहता है —

> तस्याः पद्ममयी मृणालरचिता शय्या शिलायामियं
> कस्तूरीघनपङ्कलङ्गमलिनं क्रीडारविन्दं परम् ।
> हारो यं घनसारसङ्गतखाः खेदेन मुक्तस्तया
> तस्या एव पादारविन्दगलितो लाक्षारसोऽयं भुवि ।।१-४४ ।।

राजा कर्पूरतिलक की वियोगावस्था का भी कवि ने सुन्दर चित्रण किया है । मृगाङ्कलेखा के वियोग में उसकी दशा दयनीय हो जाती है । वह निर्वेदपूर्वक कहता है —

> वियोगवह्निर्मथिता न्तरात्मा
> तथाऽविरासीत्सरसी रुहाक्ष्याः ।
> धराकदम्बैरयमप्युदारः
> स्फारीभवत्यम्बुदकेलिकालः ।।६।।

इस प्रकार नाटिका का अङ्गीरस शृङ्गार है । वह पूर्वानुराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है । रति भाव का आश्रय कर्पूरतिलक है । मृगाङ्कलेखा आलम्बन विभाव है । वसन्तोत्सव, सन्ध्यावतार आदि के मनोरम दृश्य उद्दीपन विभाव है । नायक की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं । अनेक व्यभिचारी भाव भी हैं । इस प्रकार सभी अङ्गों से पुष्ट शृङ्गार रस की चर्वणा हुई है ।

विदूषक की योजना द्वारा कवि ने कहीं कहीं हास्य रस का संचार करने का भी प्रयत्न किया है । उसकी मूर्खतापूर्ण उक्तियाँ हास्य का कारण होती हैं । राजा की प्रियतमा मृगाङ्कलेखा को आते हुये देखकर वह उसको राक्षसी बताता है —

विदूषक: --(ससम्भ्रमं) परित्रायस्व-२ ।

राजा- केयमलीकशङ्का ।

विदू० - आत्मन: कृते न भणामि ।

राजा- तत्कस्य कृते ।

विदू०- ननु तव कृते । यदेषा राक्षसी उन्मीलितलोचना श्वतोमुखीत्कमेव निध्यायन्ती इत एवागच्छति । किन्तु इसमें हास्य उदात्त कोटि का नहीं है । राजा कालिकायतन में जाकर शङ्खपाल के द्वारा मृगाङ्कावली को दिये जाने वाले कष्टों को देखकर शंखपाल को धमकी देते हुये अपनी वीरता का परिचय ओजपूर्ण शैली में देता है --

> अद्रामो जनकात्मजा पहरणो भीमो पि यत्क्रोधन:
>
> पांचालीकचकर्षणो रचितवान् तत्किं न ते विश्रुतम् ।
>
> क्रोधोन्मालितकण्ठपीठरुधिरैरभ्यर्च्य शम्भो: प्रिया
>
> तत्तत्कर्म करोमि येन भवतो नामाऽपि न श्रूयते ।।२६ ।।

इस प्रकार कवि ने ओजपूर्ण शब्दावली द्वारा राजा की वीरता का परिचय देते हुये वीर रस की अभिव्यक्ति की है ।

कवि ने करीन्द्र के राजवीथी में प्रवेश करने का वर्णन करके भयानक रस का भी संचार किया है । चतुर्थ अङ्क में मृगाङ्कलेखा जब अपने पिता काम-रूपेश्वर, अमात्य नीतिवृद्ध आदि लोगों से मिलती है और सब लोग अपना अपना आसन ग्रहण करते हैं उसी समय नेपथ्य द्वारा करीन्द्र के राजवीथी में अपने यूथों-सहित प्रवेश करने की सूचना मिलती है । उस समय जो आतङ्क उपस्थित होता है उसका चित्रण हर्ष की तूलिका द्वारा अत्यन्त सुन्दर रूप से हुआ है --

> गर्जन् संवर्तकालप्रभितघनघटाचण्डगंभीरघोरं
>
> मार्गे पङ्कं वितन्वन् कटकटविलगद्दानधारासहस्रै: ।
>
> उद्यत्प्रौढासिधारास्फुरित निजकरै: पत्तिभि: प्रेर्यमाण:
>
> प्रभ्रष्टोऽयं करीन्द्र: प्रविशति सहसा राजवीथीं स्वयूथात् ।। ४-१५ ।।

इसी प्रकार कालिकायतन के दृश्यों को देखकर राजा को बहुत आश्चर्य होता है । अत: कवि ने अद्भुत रस की भी सृष्टि की है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्वनाथ जी ने नाट्यशास्त्रीय नियमानुसार इस नाटिका में शृङ्गार रस की प्रधानता होने पर भी अन्य रसों के चित्रण करने का भी सफल प्रयास किया है।

नवमालिका -

नाट्य-शास्त्र के नियमानुसार नवमालिका नाटिका में धीरललित नायक राजा विजयसेन की प्रणयलीलाओं का चित्रण हुआ है। नाटिका का अङ्गीरस शृङ्गार है। नाटिका का कथानक ऋतुराज वसन्त के सरस वातावरण चित्रण के साथ प्रारम्भ होता है। प्रथम अङ्क में अवन्तिदेश की वाटिका की वासन्ती और उद्दीपक आभा के चित्रण द्वारा शृङ्गार रस की सृष्टि की गई है। यह नाटिका नायिका नवमालिका एवं राजा विजयसेन के प्रणय पर आधारित है। कवि ने शृङ्गार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का चित्रण करने का प्रयास किया है।

प्रथम अङ्क में दिग्विजय के लिये राजा के मन्त्री नीतिनिधि ने दण्डकारण्य में इस युवती को प्राप्त किया और तीनों लोकों की सम्राज्ञी के लक्षणों से युक्त देखकर अन्तःपुर में महारानी के संरक्षण में रख दिया। देवी चन्द्रलेखा इस शङ्का के कारण कि कहीं राजा विजयसेन उसके सौन्दर्य को देखकर उस पर आसक्त न हो जायें उसकी उपस्थिति अत्यन्त गोपनीय रखती थीं किन्तु अचानक देवी के पास से जाते हुये देवी के नासिका रत्न में नवमालिका का प्रतिबिम्ब देख लेते हैं। उसी समय से राजा के हृदय में प्रेम का बीज उत्पन्न हो जाता है --
राजा- देव्या नायकरत्ने नायिकान्तरप्रतिबिम्बमवलोक्य (स्वगतम् साश्चर्यम्)

देव्या मया परिजने परिवीयमाने
नेयं न तावदियमन्यतमापि काचित्।
एतद्विभूषणमणिप्रतिबिम्बिताङ्गी
दिव्याङ्गना रतिरिव स्फुरतीतिचित्रम् ।।१।२६।।

वह नवमालिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये अपनी रसिकता का परिचय इस प्रकार देता है — .

विना बिम्बं तावत्प्रभवत्यनुबिम्बं न घटते
न चारोपः शक्यः प्रथममगृहीते विषयिणि ।
मनोजन्यं नेदं गतिमनुविवधे नयनयोः
परिच्छेत्तुं नैव प्रभवति मनः किंचिदपि(मे) ।।१।३०।।

विजयसेन के द्वारा ही कवि ने चन्द्रलेखा के सौन्दर्य का भी मनोरम चित्रण कराया है । प्रथम अङ्क में राजा विजयसेन चन्द्रलेखा के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये कहता है - राजा -

दृग्दूषिता कुसुमकेसरजै रजोभिः
पुष्पोच्चयानुगुणया क्रियया करौ मे ।
एते पदे अपि च संचरणश्रमेण
तद्युक्तमेणनयने क्षणमास्त्तु नः ।।१।२७।

यद्यपि इस नाटिका में अभिसरण के प्रत्यक्ष दृश्य को उपस्थित करके हावों का अभिनय नहीं कराया गया क्योंकि यह रङ्गमंचीय नियमों के प्रतिकूल है तथापि राजा के मुख से उसका वर्णन करा दिया है । नाटिका के तृतीय अङ्क में चन्द्रिका और सारसिका की सहायता से उपवन में नवमालिका के साथ राजा का मिलन होता है उस समय राजा अपनी विश्वासप्रियता का परिचय देते हुये कहता है —

राजा- दरक्वणितकङ्कणोऽन्यलरमात्रसम्बन्ध्यपि
भुजः....... वशादपरिनिष्ठितोत्पीडनः ।
मृणालहरिचन्दनद्रवमयीं वहन् शीततां
बहिर्विषयमोषकृन्नवनतभ्रूवोङ्कग्रहः ।।३।२० ।।

प्रेयसी के प्रेम का जब उद्घाटन हो जाता है, तब वह प्रियतम के समान स्तर की न होने पर प्रेम में असम्भवता देखती है उस समय उसे लज्जा और ग्लानि का अनुभव होता है । कवि ने उसका स्वाभाविक चित्रण किया है । नवमालिका राजा के प्रति कहती है- नवमालिका (स्वगतम्) कथमेतस्मिन् जने पि आत्मनः प्रभवामि ।

नवमालिका नाटिका में संयोग शृङ्गार का सुन्दर चित्रण हुआ है । संयोग का अवसर चन्द्रिका और सारसिका द्वारा नवमालिका को राजा विजय-सेन से मिलाने के समय आता है । वहाँ प्रेम का उदय दोनों के हृदय में हुआ है । अतएव एक के अनुभाव दूसरे के लिये उद्दीपन का कार्य करते हैं । राजा के प्रेम में डूबी हुई नवमालिका को देखकर राजा कहता है —

निजानुभरगोचरस्मरशरप्रहाराथथा
वितर्कितथाविधो बत मदीयहृद्भेदन ।
मृणालवलयास्तृतादपि घृणास्पर्द्धं कुर्वता
सुजातनयने सजाहरं भुजानुबन्धेन मे ।।३।१६ ।।

इस प्रकार कवि ने संयोग शृङ्गार का परिपाक सफलता के साथ किया है । विप्रलम्भ शृङ्गार में नवमालिका और विजयसेन का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा । वियोग की अग्नि से प्रज्वलित होती हुई नवमालिका का सारसिका द्वारा जो वर्णन कवि ने कराया है वह उसके हृदय की वेदना को सूचित करता है - सारसिका - ^ ^ ।

सा कामास्येण-पातान् कलयति विशिखाभ्यासपर्वालिकेव
स्वासोवेगानि (शीतता) निल इव कुचयोः कोकयोः श्रृङ्कारो ।
अन्तर्दाहो विवस्वानसमशरदवस्तुकेतकीम्लान हेतु-
मोहोऽप्याक्रत्य राहुग्रह इव सहसा चिरचन्द्रं दुनोति ।। ३।१६ ।।

नाटिका के तृतीय अङ्क में राजा की विरहावस्था का चित्रण कवि ने कुशलता के साथ किया है । वह नवमालिका के वियोग में अत्यन्त क्षीण होकर कहता है - राजा- ^ ^

इयं नवपल्लवोपकरणप्रहारावहा
कलेवरलता सुधानिधि.... .. ।
अयं ह्यसमसुप्तिमत्समयामारञ्जतप्रज्वल-
दिशृङ्खलदमूनसंविष दमूलयन्मन्मथः ।।३।११ ।

इस प्रकार नवमालिका नाटिका का अङ्गीरस शृङ्गार है। वह पूर्वराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है। रतिभाव का आश्रय विजयसेन है। नवमालिका आलम्बन विभाव है। उपवन की शोभा आदि सुन्दर दृश्य उद्दीपन हैं। विजयसेन की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं। कई व्यभिचारी भाव भी हैं। इस प्रकार समस्त अङ्गों से युक्त शृङ्गार रस की चर्वणा हुई है।

कवि विश्वेश्वर ने अपनी प्रतिभा द्वारा अद्भुत आदि रसों के संचार का भी प्रयास किया है। प्रभाकर नामक तपस्वी के चमत्कार से दिव्य-रत्न की योजना द्वारा अद्भुत रस की सृष्टि की गई है। नाटिका में विदूषक नामक पात्र की योजना अवश्य की गई है किन्तु उसके द्वारा उदात्त हास्य रस की सृष्टि कहीं नहीं हुई है।

इस प्रकार नवमालिका नाटिका में शृङ्गार रस का ही प्राधान्य है, अन्य रसों की विशेष योजना नहीं की गई है।

<u>मलयजाकल्याणम्</u>-

नाट्यशास्त्र के नियमानुसार मलयजा नाटिका में धीरललित नामक राजा देवराज की प्रणय-लीलाओं का चित्रण हुआ है जिससे इसका अङ्गीरस शृङ्गार है। प्रथम अङ्क में मलयदेश की वाटिका की वासन्ती एवं उद्दीपक आभा के द्वारा शृङ्गार रस के उपयुक्त वातावरण की योजना की गई है। यह नाटिका नायिका मलयजा एवं राजा देवराज के प्रणय पर आधारित है। कवि ने संयोग तथा वियोग नामक शृङ्गार के दोनों पक्षों का सफल चित्रण करने का प्रयास किया है।

प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा राजा के हृदय में नायिका के प्रति प्रेम हो जाता है। राजा विदूषक से अपनी आसक्ति के विषय में कहते हैं - देवराज: - (सारासिनम्)

स्फुरत्पाटङ्कश्री-तरलितकपोलाञ्चितकां

ललाटेनाश्लिष्टं हिमकरकिशोराकृतिमता।

मुखं मुग्धापाङ्गं मुहुरभिनवस्मेरं हसितं
चकोराक्ष्या चंचलत्पुलककलिकं मोहयतिमाम् ।।१-१४ ।।

राजा देवराज नायिका के सौन्दर्य से आकर्षित होकर उसके विरह में व्याकुल रहने लगते हैं। वे विदूषक से मलयजा के असीम सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहते हैं —

लावण्यं विधिरैन्दवांशुनिवयस्वच्छाम्भसा शोधयन्
यत्रोत्राग्रिमधुसरं समभवन्नोर्वशी निर्ममे ।
यत्वस्योदरवर्ति निर्मलतमं लावण्यमेतेन तां
चक्रे चन्द्रमुखीं कथन्वितरथा सा निस्तुला स्याद्भुवि ।।१-१७ ।।

इसीप्रकार द्वितीय अङ्क में मलयजा भी नाटिका में राजा देवराज के असीम सौन्दर्य को देखकर उनके सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुये कहती है —

मलयजा- हला केरलिके, अपि सत्यं स: महानुभावस्तथा नवधेया त्वं भणासि ।

राजा देवराज मलयजा के वियोग में प्रेम से अभिभूत हो उठते हैं। तृतीय अङ्क में राजा केरलिका और मलयजा के सम्मुख स्वत: अपनी विदग्धता का वर्णन करते हुये कहते हैं —

तावत्केरलिका प्रसादसु भि स्वच्छासनालोकनात्
आरभ्य प्रमदवनान्तरजुषो दिशा: क्षणा इव मे ।
एते ते दर-हासनीरज-परीहास-स्फुरल्लोचने
निस्तीर्णा: खलु कल्पकोट्य इव त्वद्दास्यस्तोर्मय ।। ३।७ ।।

तृतीय अङ्क में जब राजा देवराज विदूषक के साथ वाटिका में मलयजा की प्रतीक्षा करते रहते हैं उसी समय मलयजा मंजरिकावेषधारिणी महादेवी एवं सखी केरलिका के साथ नाटिका वाटिका में देवराज के सम्मुख उपस्थित हो जाती है। उस समय कवि ने राजा के मुख से नायिका के लिये जो उलाहना दी है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है । देवराज: —

अयि अनार्द्रहृदये, मन्ये त्वन्मुखोदरेऽपि भवती सौन्दर्यसारोच्चय
नाद्राक्षी: कथमन्यथा पुनरियं दृष्ट्वापि विस्वोत्तरम् ।

नैव व्याकुलताऽपि चन्द्रवदनं यया विलम्ब्याधुना
(प्राप्ता) तत्वदलाभमामक्रमशःदुःखानभिज्ञा (क्वसि) ।।३-९।।

विप्रलम्भ शृङ्गार में दोनों का प्रेम पूर्वानुराग की कोटि में आयेगा । मलयजा नाटिका में वियोग पक्ष के साथ संयोग पक्ष का भी सुन्दर वर्णन किया गया है । द्वितीय एवं तृतीय अङ्क में राजा का नायिका से मिलन दिखाया गया है । तृतीय अङ्क में दोनों की प्रेममयी भावनायें संयोग के अन्तर्गत आयेंगी । राजा देवराज आश्रय, मलयजा आलम्बन, उसका सौन्दर्य तथा वाटिका की शोभा आदि उद्दीपन तथा राजा द्वारा नायिका का सौन्दर्य-वर्णन अनुभाव तथा हर्ष आदि संचारी भाव है ।

संकट की घड़ियाँ प्रियतम के मिलन के बाद परकीया प्रेम में और भी सुखकर प्रतीत होती है । द्वितीय अङ्क में वीणावादन के व्याज से मलयजा के प्रत्यक्ष दर्शन के बाद तृतीय अङ्क में मिलन होने पर राजा अत्यधिक आनन्द की अनुभूति करते हैं किन्तु महादेवी के आगमन की सूचना से वे अत्यन्त दुःखी हो जाते हैं ।

इस प्रकार कवि ने नाटिका में संयोग शृङ्गार का परिपाक करने का भी प्रयास किया है । शास्त्रीय नियमानुसार अभिसरण का प्रत्यक्ष दृश्य नाटिका में उपस्थित नहीं किया जा सकता । अतः हाव-वर्णन में कवि ने देवराज के मुख से मलयजा के हाव का वर्णन करा दिया है - देवराजः - ( ) । अथ हि-

अथारण्यसुधांशुमाण्डलमयी नव्यां कलङ्कालिकां
विभ्राणामखिलानिलोदयपटानंतप्रपंचाणवि ।
ताराभिर्मुलिकाभिराश्रितदशां चन्द्र (प्र)भावागुरीं
निस्तार्य स्मरधीवरो विरहिणो मीनान् विमोनात्यहो ।।३-१०।।

यद्यपि श्रीवीरराघव नारी-मनोविज्ञान के सूक्ष्मदर्शी प्रतीत होते हैं किन्तु उन्होंने नायिका की विरह-वेदना का सुन्दर चित्रण नहीं किया है । नायिका में काम के प्रति उपालम्भ शीतोपचार का दाहक होना आदि भावनाओं का अभाव पाया गया है ।

इस प्रकार नाटिका का अङ्गीरस शृङ्गार है । वह पूर्वराग से प्रारम्भ होकर सम्भोग में विश्रान्त हुआ है । रति-भाव का आश्रय देवराज तथा मलयजा आलम्बन विभाव है । वृक्षवाटिका की उद्दीपक शोभा एवं प्रियाल वृक्ष का विकसित होना आदि सुन्दर दृश्य उद्दीपन हैं । देवराज की शृङ्गारिक चेष्टायें अनुभाव हैं । कई व्यभिचारी भाव भी हैं । इस प्रकार समस्त अङ्गों सहित शृङ्गार रस का परिपाक हुआ है ।

कवि ने शृङ्गार रस के साथ साथ विदूषक की योजना द्वारा हास्य-रस का संचार करने का भी प्रयास किया है । विदूषक अपनी मूर्खतापूर्ण उक्तियों के द्वारा हास्य की सृष्टि करता है । तृतीय अङ्क में राजा एवं मलयजा के प्रेमालाप की सूचना देवी को मिल जाने पर राजा भयभीत हो उठते हैं, उस समय विदूषक उनका परिहास करते हुये कहता है --

विदूषक :--([illegible]) वयस्य, न खलु मे स्ति भयम् । यत्त्वया पूर्वमेव देव्या अभयं पारितोषिकं दत्तम् ।

यद्यपि कवि ने हास्य रस की योजना अवश्य की है किन्तु, उसके चित्रण में कवि को सफल नहीं कहा जा सकता ।

हास्य रस के अतिरिक्त कवि ने वीर आदि रसों के चित्रण करने का भी प्रयास किया है । चतुर्थ अङ्क के अन्त में लेखवाह प्रतिपक्षियों के पराजय की सूचना देता है जिससे राजा एवं उसके सेनानुचरों की वीरता का आभास होता है । किन्तु नाटिका के कथानक के विकास की दृष्टि से इस प्रसंग का विशेष महत्त्व नहीं है । केवल वीर-रस की सृष्टि के लिये इसको महत्त्व दिया गया है । यदि इस प्रसंग को निकाल भी दिया जाय तो रचना सौष्ठव की चारुता में कुछ विशेष अन्तर नहीं आयेगा ।

शकुन्तलम् आदि नाटकों की भाँति इसमें विरह का गहराई से चित्रण नहीं हुआ । शृङ्गार के संयोग पक्ष का ही विशेष वर्णन है । समस्त नाटिकाओं में रस के अतिरिक्त भावादि की व्यंजना के विवेचन का अभाव है ।

अध्याय – ८

नाटिका साहित्य में नाटिका का विकसित रूप–

एवंविध पूर्वगत पृष्ठों के विवेचन से यह निष्कर्ष दृष्टिगोचर होता है कि नाटिका नाटक और प्रकरण का मिश्रण है, इसी से धनंजय आदि ने नाटिका के बाद इसका उल्लेख किया है। इसमें चार अङ्क होते हैं। कथानक कविकल्पित होता है। नायक धीरललित होता है। स्त्री-पात्रों की प्रधानता होती है। नायिका अन्तःपुर से सम्बद्ध राजकुलोत्पन्न, सङ्गीत-कला-निपुण होती है। नायक राजमहिषी के भय से युक्त होकर नायिका से प्रेम करता है। नायक-नायिका का मिलन राजमहिषी के अधीन रहता है। शृङ्गार रस की प्रधानता होती है। चार अङ्कों से युक्त कैशिकी वृत्ति चारों अङ्कों में होती है। मुख, प्रतिमुख, गर्भ, तथा निर्वहण सन्धियाँ होती हैं। विमर्श सन्धि या तो होती ही नहीं, यदि होती भी है तो बहुत अल्प। नाटिका बहुनृत्यगीतपाठ्या होती है। नाटिका नामकरण भी नाटिका की नायिका के नाम के आधार पर ही होती है। रत्नावली, प्रियदर्शिका, चन्द्रकला, कर्ण सुन्दरी, मृगाङ्कलेखा, विद्धशालभंजिका, कुवलयावली, मलयजाकल्याणम् आदि इसके उदाहरण हैं।

जहाँ तक नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से नाटिकाओं के कथा-विकास का सम्बन्ध है, संस्कृत नाटिकायें असफल नहीं कही जा सकतीं। नाटकीय वस्तु के सन्ध्यादि विभागों के निमित्त संस्कृताचार्यों ने अधिकांश उदाहरण रत्नावली आदि संस्कृत नाटिकाओं से ही चयन किये हैं। किन्तु फिर भी नाटिकाकारों ने कभी अपनी कला को नाट्य शास्त्रीय नियमों के जटिल बन्धनों में आबद्ध करके उसकी रमणीयता को हानि नहीं पहुँचाई है। उनकी तूलिका हल्के रङ्गों द्वारा चित्र को एक स्वाभा-

विक सी कमनीयता प्रदान करती है । उसे किसी प्रकार के शास्त्रीय सिद्धान्तों के बन्धन की अपेक्षा नहीं है । यही कारण है कि नाट्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में नाटिकाओं के जिस स्वरूप का विधान किया गया है, उसका यथावत् पालन नाटिकाओं में नहीं किया गया है ।

नाट्य-सिद्धान्तों के अनुसार मुखसन्धि के द्वादश सन्ध्यङ्गों में से एकादश सन्ध्यङ्ग करण (करणं पुन: प्रकृतार्थसमारम्भ:) है तथा द्वादश सन्ध्यङ्ग विलोभन (गुणानिर्वर्णनञ्चैव विलोभनमिति स्मृतम्) है । किन्तु रत्नावली में करण पहले आया है । यथा नमस्ते कुसुमायुध अमोघ दर्शनो में इदानीं त्वं भविष्यसि और विलोभन बाद में -

> 'अस्तापास्तसमस्तभासि नभस: पारं प्रयाते रवा-
> वास्थानीं समये समं नृपजन: सायंतने संपतन् ।
> संप्रत्येष सरोरुहद्युतिमुष: पादांस्तवासेवितुं
> प्रीत्युत्कर्षकृतो दृशानुदयनस्येन्दोरिवोद्वीक्षते ।।' १।२३।

यहाँ विलोभन के साथ उद्भेद (बीजार्थस्य प्ररोहो य: स उद्भेद इति स्मृत:) नामक सन्ध्यङ्ग भी है ।

इसी प्रकार मृगाङ्कलेखा नाटिका में तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में निर्वहण सन्धि के कुछ अङ्ग हैं और फिर अवमर्श सन्धि है, उसके बाद पुन: निर्वहण सन्धि के अङ्ग विद्यमान हैं । अन्य नाटिकाओं में भी इसी प्रकार के उदाहरण विद्यमान हैं ।

जहाँ तक नाटिकाओं में अर्थोपक्षेपकों का सम्बन्ध है, उनके लिये भी किसी प्रकार के सिद्धान्त की अपेक्षा नहीं की गई है । मृगाङ्कलेखा नाटिका के द्वितीय अङ्क के प्रवेशक में नीच प्राकृत बोलना चाहिये किन्तु सिद्धियोगिनी संस्कृत में बोलती है ।

नाटिकाओं के शास्त्रीय सिद्धान्त के विषय में अभिनवगुप्त का विवेचन भरत के नाट्यशास्त्र जैसा ही है । दशरूपककार के मतानुसार नाटिका का कथानक

प्रकरण जैसा और नायक नाटक के नृप के समान होना चाहिये । यद्यपि नाटक का नायक धीरोदात्त होता है और नाटिका का नायक धीरललित होता है और ऐसा प्रतीत होता है कि दशरूपककार का तात्पर्य यहाँ पर नायक के राजकुलोत्पन्न प्रख्यात होने से है । दशरूपककार ने यह भी कहा है कि नाटिका एक, दो या तीन अङ्कों की भी हो सकती है किन्तु उनका यह मत समीचीन नहीं प्रतीत होता, क्योंकि चार सन्धियों तथा रस की सिद्धि एक या दो अङ्कों की नाटिका में नहीं हो सकती । कैशिकी वृत्ति के चार अङ्ग भी कम से कम चार अङ्कों की अपेक्षा रखते हैं ।

नाट्यदर्पणकार ने नाटिका को स्त्री महाफला और अख्याति ख्यातितः कन्या देव्योर्नाटी चतुर्विधा अर्थात् इसमें कन्या और देवी दो नाटिकाएँ होती हैं । दोनों के प्रसिद्ध तथा अप्रसिद्ध भेद से दो दो प्रकार की होने से नाटिका को चार प्रकार का बताया है ।

आचार्य विश्वनाथ और शारदातनय ने भरत के नाट्य-शास्त्र तथा दशरूपककार का ही अनुगमन किया है । शारदातनय ने सट्टक को नाटिका का ही एक रूप बताया है ।

तात्पर्य यह है कि सभी परवर्ती आचार्यों ने आचार्य भरत के नाट्य शास्त्र का ही अनुसरण किया है । नाट्य-शास्त्र में नाटिका की इतनी स्पष्ट व्याख्या है कि परवर्ती आचार्यों के लिये नवीन तथ्यों का सङ्कलन करना सम्भव नहीं रहा ।

अन्ततः हम कह सकते हैं नृत्त, नृत्य और नाट्य एक ही रसमयी कला की भिन्नपथ धारायें हैं । इस कला के विकास की कड़ियाँ परस्पर सम्बद्ध हैं । यह कला नृत्यात्मक तथा भाव एवं रस की अभिव्यक्ति में सदैव समर्थ रही है । इस कला की प्राचीनता के विषय में शास्त्रीय तथा साहित्यिक प्रमाण भी उपलब्ध होते हैं । इसकी गौरवगाथायें सिन्धु की उपत्यकाओं, गुफाओं, स्तूपों, ताडपत्रों की अभि-लिपियों पर अङ्कित हैं ।

आधुनिक युग में इस कला को उपरूपक कहा जाता है । यह कला पण्डित वर्ग की अपेक्षा जनसाधारण के मध्य अधिक विकसित हुई । इसी से इसके उदाहरण अधिक नहीं मिलते किन्तु उदाहरणों की नगण्यता भी नहीं है । भास के बालचरित में हल्लीसक का वर्णन, भरहुत के स्तूप में सल्लक का उल्लेख, कालिदास का त्रोटक, भास की प्रकरणिका आदि उपरूपकों के इतिहास को रूपक से भी अधिक प्राचीन सिद्ध करते हैं ।

यह उपरूपक नृत्य, गीत, अभिनय और साहित्य की समष्टि है । आज की निर्जीव पाश्चात्य प्रेक्षा-पद्धति ने इस जीवित शरीरिणी नृत्य नाट्य कला को निष्ठुरता के साथ ठुकरा दिया है । संस्कृत रङ्गमंच के अभाव में भी नृत्य, वाद्य, गीत आदि से समन्वित नाटिका नामक उपरूपक ही एक ऐसा सम्बल है जो मानव का मनोरंजन आज के युग में भी कर सकता है, जिसको इस युग में पुन: प्रस्थापित किया जा सकता है । आधुनिक वैज्ञानिक युग में विशाल संस्कृत नाटकों की अपेक्षा उपरूपकों की दृश्यरूपता का अधिक महत्त्व है, जिसका प्रमाण संस्कृत नाटिकायें हैं, जो जनसमाज का मनोरंजन सफलतापूर्वक करती रही हैं । इस संस्कृत समाज में नाटिका साहित्य का गुरुतर महत्त्व है ।

प्रमुख सहायक-ग्रन्थ-सूची

(संस्कृत-ग्रन्थ)

अभिनवगुप्त : नाट्य-शास्त्र, प्रथम भाग, ४ अध्याय.
अभिनवभारती, पृ० १७१, १८३ जी०ओ०

अग्नि पुराण : सी० ।
३२८ अध्याय, अड्यार लाइब्रेरी मद्रास ।

इन्द्रपाल सिंह : संस्कृत नाटक समीक्षा, प्रकाशक साहित्य निकेतन, कानपुर
संस्कृत महाविद्यालय, ग्रन्थालय इन्दौर ।

इत्सिंग : 'ए रिकार्ड आफ दि बुद्धिस्टिक रिलीजन' तकाकुसु का अनुवाद, आक्सफोर्ड १८९६ ।

कीथ : संस्कृत नाटक, भाषान्तर डा० उदयभानु सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, बनारस ।

कृष्णमाचारी : ए हिस्ट्री आफ क्लेसिकल संस्कृत लिट्रेचर, मद्रास, १९३७ ।

दासगुप्ता : हिस्ट्री आफ संस्कृत लिट्रेचर, १९४७ ।

धनंजय : दशरूपक (समीक्षात्मक भूमिका, भाषानुवाद-व्याख्यात्मक टिप्पणी सहित) डा० श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ । प्रकाशक रतिराम शास्त्री । द्वितीय संस्करण ।

डा० नगेन्द्र : रामचन्द्र गुणचन्द्र विरचित नाट्यदर्पण की हिन्दी व्याख्या ।

बाणभट्ट : हर्षचरित, प्रारम्भ के पाँच उच्छ्वास, काणे संस्करण की भूमिका ।

बिल्हण : कर्णसुन्दरी, संस्करण पं० दुर्गाप्रसाद तथा पं० काशीनाथ पाण्डुरंग परब नि० सा० प्रे०,बम्बई, १६३२ ।

बलदेव उपाध्याय : संस्कृत साहित्य का इतिहास ।

भरत : नाट्यशास्त्र भाग २, १८।५८-६१ गायकवाड़, ओरियण्टल सीरीज़, बड़ौदा, १६३४ ।

मथुरादास : वृषभानुजा, संस्करण वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री, नि०सा०प्रे० बम्बई,१६२७ ।

रामचन्द्र : नाट्य-दर्पण, द्वितीय विवेक,दिल्ली विश्वविद्यालय, संस्करण,१६६१ ।

राजचूड़ामणि दीक्षित : कमलिनीकलहंस, संस्करण टी०एच० कृष्णस्वामी शास्त्री, वानीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम् १६१७ ।

विश्वनाथ : साहित्य दर्पण, सम्पादक डा० निरूपण विद्यालङ्कार, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार,मेरठ

विश्वनाथ कविराज : चन्द्रकला नाटिका, व्याख्याकार एवं सम्पादक श्रीबाबूलाल शुक्ल शास्त्री, चौखम्बा सीरीज आफिस वाराणसी ।

विन्टरनित्ज : ए हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर,भाग ३ ।

शारदातनय : भावप्रकाशन, जी०ओ०सी० बड़ौदा ।

श्री सागरनन्दी : नाटकलक्षणरत्नकोश, व्याख्याकार प्राध्यापक श्रीबाबूलाल शुक्ल शास्त्री चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस,वाराणसी-१ ।

सर्वेश्वर कवि : साहित्यसार ।

श्री हर्ष : रत्नावली नाटिका, सम्पादक डा० शिवराज शास्त्री प्रकाशक रतिराम शास्त्री साहित्य भण्डार,सुभाष बाजार मेरठ ।

हेमचन्द्र : काव्यानुशासन, प्रथम भाग, अध्याय ८ , आर०सी० पारिख,संस्करण ।

हरिदत्त शास्त्री : संस्कृत काव्यकार साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ ।

हजारीप्रसाद द्विवेदी : भारतीय नाट्यशास्त्र की परम्परा
पृथ्वीनाथ द्विवेदी और दशरूपक, राजकमल प्रकाशन ।

(पत्र-पत्रिकाएँ एवं शोध-प्रबन्ध)

सागरिका त्रैमासिकी एकादश वर्षे तृतीयो ङ्क: प्रकाशिका, संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर म०प्र० ।

सागरिका- त्रैमासिकी- चतुर्दशवर्षे तृतीयो ङ्क प्रकाशक सागरिका समिति सागर विश्वविद्यालय सागर, म०प्र० ।

संस्कृत-साहित्य में उपरूपक एक अध्ययन (उत्पत्ति, विकास, सिद्धान्त और प्रयोग की ऐतिहासिक एवं शास्त्रीय समीक्षा), आगरा विश्वविद्यालय, डी०लिट्०उपाधि के लिये प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध, शोधकर्त्ता डा० कृष्णाकान्त त्रिपाठी, एम०ए०(संस्कृत तथा दर्शनशास्त्र) पी०एच०डी०साहित्याचार्य, विक्रमाजीत सिंह सनातन धर्म कालेज कानपुर (उत्तर प्रदेश), १९६७ ई० ।

इंगलिश बुक्स –

Bhoja : Sringara Prakash

Bharat : Natya Sastra, Vol. II.

D. R. Mankad : The types of Sanskrit Drama

Jarsja : Ratnavali – V. Venkateswara Sastrulu, 826 H/239, Introduction.

Keith : The Sanskrit Drama, Oxford University Press.

Krishnamachariar	:	History of Classical Sanskrit Literature.
Ramachandra and Gunachandra	:	The Natya Darpana - Dr.K.H.Trivedi, Lalbhai Dalapatbhai series No. 9, L.D. Institute of Indology, Ahmedabad -9, 1966.
Raghavan	:	The Number of Rasas. The Adyar Library Series, second edition, 1967.
Sten konow	:	The Indian Drama, Translated from German by Dr.S.N.Ghosal.
Sushil Kumar D.E.	:	History of Sanskrit Literature.
Prof.S.N.Shastri	:	The Laws and Practice of Sanskrit Drama, Volume One, The Chowkhamba Sanskrit Studies vol : XIV, The Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi-1 (India) 1961.
Shingabhupal	:	Kuvalayavali, Edited by Vaidyasastra Nipurah , L.A. Ravi Varma, Trivandrum Sanskrit Series - Introduction.

A Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts of Orissa ,

Volume-II. Orissa Sahitya Akadami, Bhubaneswar.